cyan magenta yellow black

सी एच आर आई की सहस्त्राब्दि रिपोर्ट

मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन
राष्ट्रमंडल के लिए एक सूत्र

संपादन
माया दारूवाला

संशोधन एवं लेखन
वेंकटेश नायक
नवाज़ कोटवाल

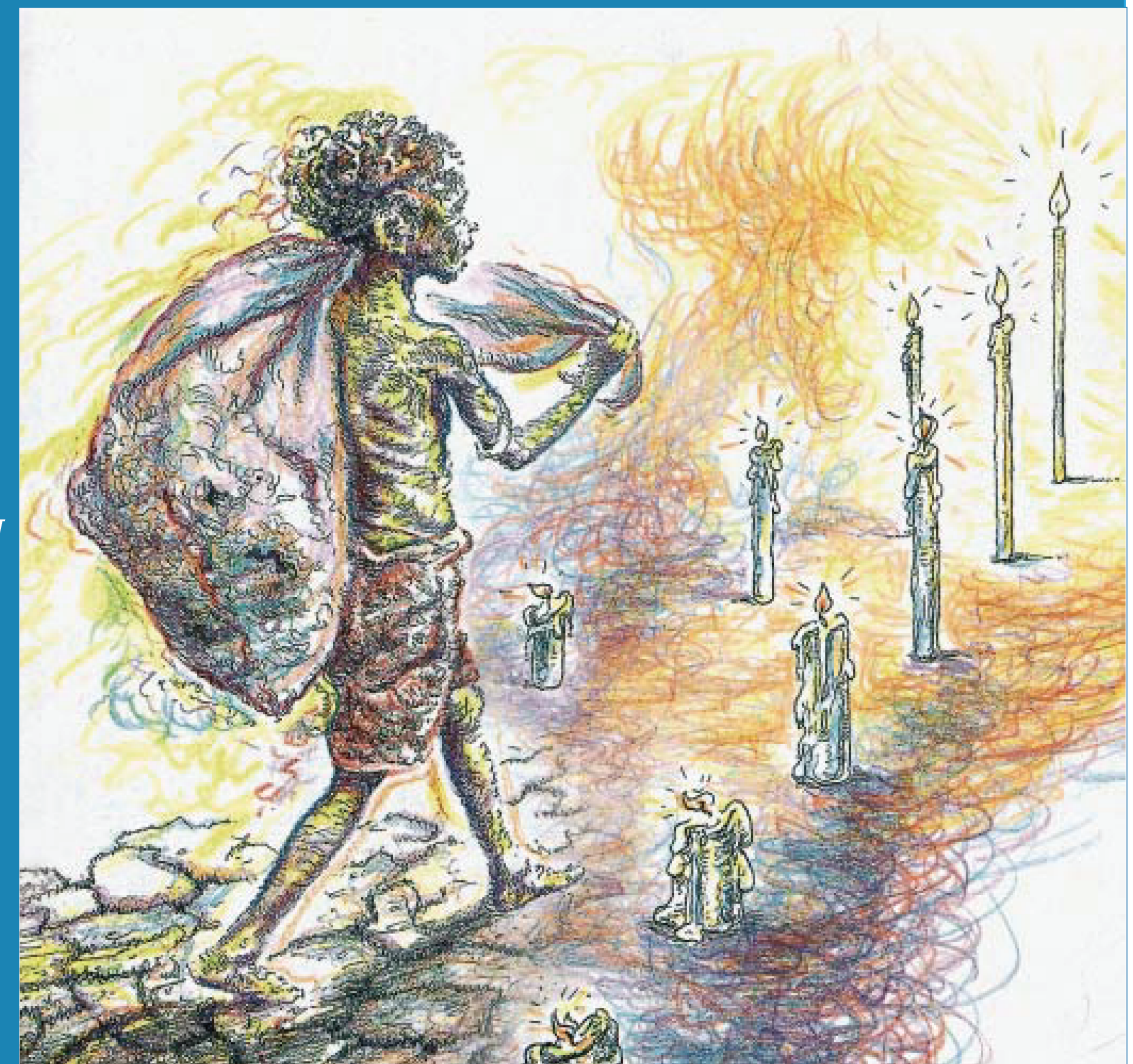

कॉमनवेल्थ ह्यूमन
राइट्स इनिशिएटिव

सी एच आर आई के अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार आयोग द्वारा तैयार की गयी एक रिपोर्ट

मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन : राष्ट्रमंडल के लिए एक सूत्र

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव

2004

Designed & Printed by : aptc@vsnl.com

राष्ट्रमंडल के बहुसंख्य लोग गरीब हैं। इस तथ्य को देखते हुए इस रिपोर्ट का लक्ष्य गरीबी, मानवाधिकारों और गरीबी दूर करने के लिए अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण पर लोगों का ध्यान केन्द्रित करना है। यह रिपोर्ट गरीबी के खिलाफ संघर्ष में सरकार और नागरिक समाज, दोनों के लिए एक उपयोगी उपकरण सिद्ध होगी। कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव (सी एच आर आई) शासनाध्यक्षों से अपील करता है कि वे तत्काल प्रभाव से इस रिपोर्ट की सिफारिशों पर अमल करते हुए उन करोड़ों लोगों के प्रति अपने दायित्व को पूरा करें जो आज 21 वीं सदी के राष्ट्रमंडल में भी गरीबी से जूझ रहे हैं।

BRITISH COUNCIL

ब्रिटिश काउन्सिल
ब्रिटिश हाई कमिशन
17, कस्तूरबा गाँधी मार्ग,
नई दिल्ली – 110 001
टेलि : 011–2371 1401
फैक्स : 011–2371 0717
http://www.britishcouncil.org.in

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव
बी–117, पहली मंज़िल,
सर्वोदय एन्क्लेव,
नयी दिल्ली–110017
टेली : 011–2685 0523
फैक्स : 011–2686 4688
http://www.humanrightsinitiative.org

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव (सी एच आर आई) एक स्वतंत्र, अंतर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठन है जिसे राष्ट्रमंडल देशों में व्यावहारिक रूप में मानवाधिकार सुनिश्चित करने का काम सौंपा गया है। करीब दस वर्ष पहले, कई राष्ट्रमंडल संघों ने सी एच आर आई की स्थापना की क्योंकि उनका मानना था कि सदस्य देश सर्व सामान्य मूल्यों और वैधानिक सिद्धान्तों के आधार पर काम करते हैं और एक ऐसा मंच भी उपलब्ध कराते हैं जिससे मानवाधिकारों को बढ़ावा दिया जा सके, लेकिन स्वयं राष्ट्रमंडल के भीतर मानवाधिकारों के मुद्दों पर ध्यान अधिकतर केन्द्रित नहीं किया जाता।

सी एच आर आई के लक्ष्यों में हरारे सिद्धान्तों, मानवाधिकारों संबंधी सार्वभौम घोषणा और अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त अन्य मानवाधिकार तंत्र तथा राष्ट्रमंडल के सदस्य देशों में मानवाधिकारों का समर्थन करने वाले घरेलू विधानों के बारे में जागरूकता बढ़ाना और उन पर अमल करना शामिल है।

द्विवार्षिक रिपोर्टों और समय–समय पर छानबीन के जरिए सी एच आर आई विभिन्न राष्ट्रमंडल देशों में मानवाधिकारों की प्रगति और उनके हनन के बारे में लगातार ध्यान आकर्षित करता है। मानवाधिकारों के हनन को रोकने संबंधी दृष्टिकोण और इस दिशा में किए गए उपायों का समर्थन करते हुए सी एच आर आई राष्ट्रमंडल सचिवालय, सदस्य देशों की सरकारों और समाजिक संगठनों को सचेत करता है। कार्यशालाओं के आयोजन और सम्पर्क विकसित करके सी एच आर आई निरन्तर ऐसे प्रेरक संगठन की भूमिका निभाता है जो अपने प्राथमिक मुद्दों के प्रति औरों को सक्रिय बना सके।

सी एच आर आई के घटक समूहों में पत्रकार, वकील, विधिवेत्ता, मज़दूर संघों के नेता, डाक्टर और सांसदों के संगठन शामिल हैं जिनके प्रत्येक राष्ट्र में मौजूद होने से स्थानीय नेटवर्क पक्के तौर पर उपलब्ध हो जाता है। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी समूहों का नीतिगत महत्व है जो मानवाधिकारों के पक्ष में कारगर सार्वजनिक नीति विकसित कर सकते हैं। खुद के कार्य में मानवाधिकारों को शामिल करके और मानवाधिकारों संबंधी सूचना, मानकों और पद्धतियों का प्रसार करके इनके सदस्य व्यक्तिगत रूप से और उनके संगठन सामूहिक रूप से व्यवस्थित परिवर्तन लाने में सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त ये समूह स्थानीय स्थितियों की जानकारी देते हैं, नीति निर्माताओं से सम्पर्क कर सकते हैं, मुद्दों को उजागर कर सकते हैं और एकजुट होकर मानवाधिकारों को प्रोत्साहित कर सकते हैं। सी एच आर आई के अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार आयोग में इन समूहों के वरिष्ठ सदस्यों की मौजूदगी, सी एच आर आई की विश्वसनीयता और राष्ट्रों के अधिकार क्षेत्र तक उसकी पहुंच सुनिश्चित करती है।

सी एच आर आई की स्थापना मूल रूप से ब्रिटेन में लंदन में की गयी थी। इसे 1993 में भारत में नयी दिल्ली लाया गया। लंदन में इस संगठन की ट्रस्टी कमेटी का कार्यालय है और इसका एक नया कार्यालय घाना में आकरा में है।

राष्ट्रमंडल पत्रकार संघ, राष्ट्रमंडल मजदूर संघ परिषद्, राष्ट्रमंडल अधिवक्ता संघ, राष्ट्रमंडल विधिशिक्षा संघ, राष्ट्रमंडल चिकित्सक संघ, राष्ट्रमंडल संसदीय संघ, राष्ट्रमंडल प्रेस यूनियन और राष्ट्रमंडल प्रसारण संघ।

BRITISH COUNCIL

ब्रिटिश काउन्सिल
ब्रिटिश हाई कमिशन,
17, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली – 110 001
टेलि : 011–2371 1401
फैक्स : 011–2371 0717
वेबसाईट : http://www.britishcouncil.org.in

© **कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव, 2004**

आई एस बी एन (ISBN) 81-88205-06-0

3,000 copies.

The British Council connects people worldwide with learning opportunities and creative ideas from the UK and builds lasting relationship between the UK and other countries.

This is the first Hindi edition of the original report - ***Human Rights and Poverty Eradication: A Talisman for the Commonwealth***, adapted, translated, printed and disseminated in partnership with the British Council, India.

सी एच आर आई नयी दिल्ली कार्यालय
बी–117, पहली मंज़िल
सर्वोदय एन्क्लेव
नयी दिल्ली–110017
टेली. : +91–11–2685 0523
फैक्स : +91–11–2686 4688
ईमेल : chriall@nda.vsnl.net.in

सी एच आर आई लंदन कार्यालय
इंस्टिट्यूट ऑफ कॉमनवेल्थ स्टडीज
28, रसेल स्क्वेअर
लंदन डब्ल्यू सी 1 बी 5 डी एस,यू के
टेली. :+44–020–7–862–8857
फैक्स : +44–020–7–862–8820
ईमेल : chri@sas.ac.uk

सी एच आर आई घाना कार्यालय
ब्रिटिश काउंसिल
पी ओ बॉक्स जी पी 771
आकरा, घाना, अफीका
टेली. : +233–21–244744, 663979
फैक्स : +233–21–240330
ईमेल : chri@britishcouncil.org.gh

वेबसाईट : http://www.humanrightsinitiative.org

अनुच्छेद–15 (1) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र–विशेष की नागरिकता का अधिकार है। (2) किसी को भी मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित न किया जाएगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जाएगा।

अनुच्छेद–16 (1) बालिग स्त्री–पुरूषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रूकावटों के आपस में विवाह करने और परिवार की स्थापना करने का अधिकार है। उन्हें विवाह के विषय में वैवाहिक जीवन में तथा विवाह–विच्छेद के बारे में समान अधिकार है। (2) विवाह का इरादा रखने वाले स्त्री–पुरूषों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा। (3) परिवार समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद–17 (1) प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर सम्पति रखने का अधिकार है। (2) किसी को भी मनमाने ढंग से अपनी सम्पति से वंचित न किया जाएगा।

अनुच्छेद–18 प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तरात्मा और धर्म की आज़ादी का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपना धर्म या विश्वास बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तौर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतंत्रता है।

अनुच्छेद–19 प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इसके अन्तर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए से तथा सीमाओं की परवाह न कर के किसी की सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान सम्मिलित है।

अनुच्छेद–20 (1) प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्ण सभा करने या समिति बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार है। (2) किसी को भी किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद–21 (1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतंत्र रूप से चुने गए प्रतिनिधियों के जरिए हिस्सा लेने का अधिकार है। (2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है। (3) सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। उस इच्छा का प्रकटन समय–समय पर और असली चुनावों द्वारा होगा। ये चुनाव सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या किसी अन्य समान स्वतंत्र मतदान पद्धति से कराये जाएंगे।

अनुच्छेद–22 समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतंत्र विकास तथा गौरव के लिए–जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अन्र्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों के अनुकूल हो–अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है।

अनुच्छेद–23 (1) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छानुसार रोज़गार के चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों को प्राप्त करने और बेकारी से संरक्षण पाने का हक है। (2) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान मजदूरी पाने का अधिकार है। (3) प्रत्येक व्यक्ति को जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतनी उचित और अनुकूल मजदूरी पाए, जिससे यह अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसी आजीविका का प्रबन्ध कर सके जो मानवीय गौरव के योग्य हो तथा आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक संरक्षणों द्वारा हो सके। (4) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी संघ बनाने और उनमें भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद–24 प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। इसके अन्तर्गत काम के घंटों की उचित हदबन्दी और समय–समय पर मज़दूरी सहित छुट्टियां सम्मिलित हैं।

अनुच्छेद–25 (1) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन–स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इसके अन्तर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा–सम्बन्धी सुविधाएं और आवश्यक सामाजिक सेवाएं सम्मिलित हैं। सभी को बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढ़ापे या अन्य किसी ऐसी परिस्थिति में आजाविका का साधन न होने पर जो उसके काबू के बाहर हो, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। (2) जच्चा और बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को चाहे वह विवाहिता माता से जन्मा हो या अविवाहिता से, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होगा।

अनुच्छेद–26 (1) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारम्भिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्कहोगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यांत्रिक और पेशों–संबंधी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी।
(2) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र के प्रयत्नों को आगे बढ़ाया जाएगा। (3) माता–पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि किस क़िस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जाएगी।

अनुच्छेद–27 (1) प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक समाजिक–सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनन्द लेने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का हक है। (2) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है जिसका रचियता वह स्वयं हो।

अनुच्छेद–28 प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद–29 (1) प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्तव्य है जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास संभव हो। (2) अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी सीमाओं द्वारा बद्ध होगा, जो कानून द्वारा निश्चित की जाएंगी और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा जिनकी आवश्यकता एक प्रजातन्त्रात्मक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। (3) इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विरूद्ध नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद–30 इस घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह, या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताये गए अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का भी विनाश करना हो।

cyan black

मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन : राष्ट्रमंडल के लिए एक सूत्र

''मैं आपको एक सूत्र देता हूँ........ किसी भी काम की रूपरेखा बनाते समय अपने द्वारा देखे गए सबसे गरीब और कमज़ोर इन्सान का चेहरा याद करें और सोचें कि क्या इससे उस इन्सान को कोई लाभ होगा। क्या इससे उसे कुछ हासिल होगा ? क्या इससे उस व्यक्ति को खुद की ज़िन्दगी और नियति पर नियंत्रण पाने में मदद मिलेगी? .... इसके बाद आपकी शंकाएं दूर हो जाएंगी और आप स्वार्थ से ऊपर उठकर सोचेंगे।'' [1]

महात्मा गांधी

संपादन

माया दारूवाला

संशोधन एवं लेखन

वेंकटेश नायक **नवाज़ कोटवाल**

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव के अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार आयोग की रिपोर्ट।

प्रकाशक :

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव

बी–117, पहली मंज़िल, सर्वोदय एन्क्लेव नयी दिल्ली–110017.

टेलि : 011-26850523/ 26528152/ 26864678

फैक्स : 011-26864688 ईमेल : chriall@nda.vsnl.net.in

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

सी एच आर आई के अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार आयोग के सदस्य

सुश्री एन्नी वाटसन सी.एच.आर.आइ. के न्यासी समिति के अध्यक्ष पद पर हैं। वे राष्ट्रमंडल मज़दूर संघ परिषद की निर्देशिका भी हैं। 1990–95 में वे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काउंसिल की अंतर्राष्ट्रीय अधिकारी थीं।

सैम ओकुडज़ेतो राष्ट्रमंडल विधिवक्ता संघ के सदस्य हैं। वे कानूनी मदद समिति के सदस्य, घाना बार एसोसियेशन के कोषाध्यक्ष और कैदी सेवा समिति के सदस्य हैं। वे लोक लेखा समिति तथा न्यायिक उप समिति के सदस्य रह चुके हैं।

मर्रे बर्ट राष्ट्रमंडल पत्रकार संगठन न्यास के अध्यक्ष हैं। वे टोरोंटो के *द ग्लोब एण्ड मेइल* अखबार के भूतपूर्व शहरी तथा राष्ट्रीय संपादक हैं। वे *विन्निपेग फ्री प्रेस* के प्रबंध संपादक भी रह चुके हैं। हाल में वे लेखन एवं संपादन के अलावा एक प्रसार माध्यम प्रौद्योगिकी कंपनी भी चलाते हैं।

सुश्री डा0 यूनिस ब्रूकमन अमिस्सा एम्. डी. घाना के भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री तथा नेदरलेंड्स के भूतपूर्व राजदूत हैं। वे घाना चिकित्सक संघ की उपाध्यक्षा होने के कारण राष्ट्रमंडल चिकित्सक संघ से जुडी हुई हैं। महिलाओं के अधिकारों के लिए कई सालों से कार्यरत डा0 यूनिस हाल में Ipas (महिला स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय संगठन) की अफ्रीकी उपाध्यक्षा हैं।

सुश्री जीन कॉर्स्टन *1992* से संयुक्त राज्य ब्रिटेन की सांसद हैं और कई प्रवर समितियों में सदस्या रह चुकी हैं। 2001 से वे संयुक्त मानवाधिकार समिति के अध्यक्ष पद पर हैं। 1999 से सुश्री कॉर्स्टन ब्रिटेन के राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की कार्यकारिणी की सदस्या हैं। 2000 में वे राष्ट्रमंडल महिला सांसद संघ की अध्यक्षा थीं।

सुश्री ज़ोहरा यूसुफ 1990 से पाकिस्तान में ह्यूमन राइट्स कमिशन नामक गैर सरकारी संगठन की परामर्शदात्री हैं। 1990–1993 में वे इस संस्था की सिंध प्रांत की शाखा की उपाध्यक्षा और 1993–1999 में संस्था के महासचिव थीं। वे शिरकतगाह विमेन्स रिसोर्स सेंटर तथा एन.जी.ओ. रिसोर्स सेंटर की विषय चयन समिति की सदस्या भी हैं।

ऑल्फ्रेड मुडेंडा ज़ाम्बिया कांग्रेस ऑफ ट्रेड यूनियन्स के उप महासचिव हैं। वे ज़ाम्बिया में मानवाधिकार हनन जांच समितियों के सदस्य थे और 2001 तथा 2002 में ज़िम्बाब्वे में चुनाव निरीक्षक थे।

सुश्री एलिस जेकब्स राष्ट्रमंडल विधिशिक्षा संघ के दक्षिण एशियाई शाखा की कार्यकारिणी की सदस्या हैं। वे भारतीय विधि संस्थान की निर्देशिका और भारतीय विधि आयोग की सदस्या रह चुकी हैं। सुश्री जेकब्स, महिला अधिकारों के मामलों में कानूनी सुधार की पक्षसमर्थक हैं।

बी. जी. वर्गीस सी.एच.आर.आई. कार्यकारिणी के अध्यक्ष हैं। *हिंदुस्तान टाइम्स* और *इंडियन एक्सप्रेस* के संपादक रह चुके श्री वर्गीस भारत के अग्रणी विकासात्मक पत्रकार माने जाते हैं। उन्हें 1975 में रेमन मेगसेसे सम्मान से पुरस्कृत किया गया और हाल में वे दिल्ली में स्थित सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च में वरिष्ठ अध्येता हैं।

सुश्री माया दारूवाला सी.एच.आर.आई. की निर्देशिका हैं और एक बैरिस्टर होते हुए मानवाधिकारों की पक्षसमर्थक हैं। वे माइनॉरिटी राइट्स ग्रूप इंटरनेशनल की परिषद के अध्यक्षपद पर हैं तथा इंटरनेशनल रिकार्डस मेनेजमेंट ट्रस्ट की न्यासी हैं। सुश्री दारूवाला कॉमनवेल्थ फाउन्डेशन की सिविल सोसाइटी एडवाइज़री कमेटी, ओपन सोसाइटी जस्टिस इनिशिएटिव के निर्देशक बोर्ड और इंटरनेशनल विमेन्स हेल्थ कोएलिशन की सदस्या हैं।

सीएचआरआई की कार्यकारिणी समिति के सदस्य

बी. जी. वर्गीज़ सीएचआरआई कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष व कॉमनवेल्थ जर्नलिस्ट एसोसिएशन के सदस्य। भारत के प्रधानमंत्री के पूर्व मीडिया सलाहकार। हिंदुस्तान टाइम्स और इंडियन एक्सप्रेस के पूर्व संपादक। प्रसार भारती बोर्ड व के. एस. सुब्रह्मण्यम् कमेटी (कारगिल कमेटी) के सदस्य। सेंटर फॉर पोलिसी रिसर्च, नई दिल्ली के सीनियर फैलो।

टी. अनन्ताचारी, भारतीय पुलिस सेवा (सेवानिवृत), पूर्व पुलिस महानिर्देशक। मानवाधिकारों पर यूएन हाई कमिशनर फार रेफ्यूजीस के परामर्शदाता। सेंटर फॉर पीस एण्ड कंफ्लिक्ट्स के बोर्ड के सदस्य।

डॉ. वसुधा धागम्वर मल्टीपल एक्शन रिसर्च ग्रुप (मार्ग) की निदेशक तथा सुप्रसिद्ध सामाजिक व विधि कार्यकर्ता।

डॉ. एन. आर. माधव मेनन कॉमनवेल्थ लीगल एजुकेशन एसोसिएशन का प्रतिनिधित्व करते हैं और वर्तमान में नेशनल ज्यूडिशियल अकादमी, भोपाल के निर्देशक। वैस्ट बंगाल नेशनल यूनिवर्सिटी ऑव ज्यूडिशियल साइंस के पूर्व कुलपति। नेशनल लॉ स्कूल ऑव इंडिया यूनिवर्सिटी के संस्थापक निर्देशक। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग समीक्षा समिति तथा विधि आयोग, भारत सरकार के सदस्य।

डॉ. आशीष नंदी विख्यात समाजविज्ञानी। सेंटर फॉर स्टडीज़ इन डेवलपिंग सोसायटीज़ के सीनियर फैलो। विकासशील देशों के सामाजिक–आर्थिक मुद्दों पर अनेकों पुस्तकों के लेखक।

पी. पी. राव भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता। वे भारतीय संविधान के विशेषज्ञ भी हैं ।

डॉ. जे. सी. सोबती कॉमनवेल्थ मेडिकल एसोसिएशन के मनोनीत प्रतिनिधि और इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के पूर्व महासचिव।

पी. एच. पारेख सीएचआरआई के कोषाध्यक्ष। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता। सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के अध्यक्ष। इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑव ह्यूमन राइट्स के महासचिव।

आर. वी. पिल्लै प्रथम सेक्रेट्री–जनरल के रूप में भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के संस्थापक। दक्षिण एशिया में विभिन्न मानवाधिकार मुद्दों को लेकर सक्रिय संलग्नता। संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशेष रपटकर्ता।

श्री के. एस. ढिल्लों, भारतीय पुलिस सेवा (सेवानिवृत) बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति। हाल में इस विश्वविद्यालय में अभ्यागत प्राचार्य तथा मध्यप्रदेश राज्य प्रशासन अकादमी के वरिष्ठ प्राचार्य। मध्यप्रदेश एवं पंजाब के पूर्व पुलिस महानिर्देशक।

सुश्री अनु आगा, ऊर्जा एवं पर्यावरण प्रबंधन क्षेत्र में प्रमुख नाम – थरमैक्स ग्रूप ऑव कम्पनीज़ की अध्यक्ष। कॉनफेडरेशन ऑव इंडियन इंडस्ट्रीज़ की पश्चिमी क्षेत्र की भूतपूर्व अध्यक्ष।

माया दारूवाला सीएचआरआई की कार्यकारी निर्देशिका। वे माइनोरिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल के अलावा पीपल्स वाच तमिलनाडु की अध्यक्षा भी रही हैं।

cyan black

हिन्दी संस्करण के लिए प्रस्तावना

सी एच आर आई द्वारा प्रस्तुत यह पुस्तक भारत और समूचे राष्ट्रमंडल में गरीबी और उसके कारणों का एक आशुचित्र है। सीएचआरआई राष्ट्रमंडल के देशों में मानवाधिकारों को व्यावहारिक धरातल पर वास्तविक रूप देने के लिए कार्यरत है। हमने 2001 में राष्ट्रमंडल देशों के शासनाध्यक्षों की बैठक के लिए एक रपट तैयार की थी। रपट इस तथ्य को प्रमुखता से सामने लाती थी कि गरीबी बुनियादी मानवाधिकारों के हनन से पैदा होने वाली एक स्थिति है जो उसी हनन के कारण आगे भी बनी रहती है। दुनिया के सर्वाधिक गरीब लोग राष्ट्रमंडल देशों में रहते हैं। गरीबी द्वारा पैदा की गई समस्याओं को दूर करने के लिए गहरे सामाजिक सरोकार रखने वाले नागरिक प्रायः बहुत परिश्रम से काम करते हैं, लेकिन अक्सर वे अलग–अलग सक्रिय रहते हैं – केवल भारत के विभिन्न राज्यों में ही नहीं, बल्कि अफ्रीकी, कैरीबियाई और प्रशांत एशियाई देशों में भी। हालांकि राष्ट्रमंडल के हिस्से गरीबी कुछ ज़्यादा ही आई है, लेकिन अपनी स्थिति में सुधार लाने में लोगों की प्रतिभा, प्रयासों और संघर्षों में भी राष्ट्रमंडल बहुत समृद्ध है। हम इन कहानियों को आप को यह सच याद दिलाने के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं कि संख्या में बल होता है और एक जीत एक और संघर्ष को प्रेरित करती है।

हमारा मंतव्य इस पुस्तक को उसी रपट के सीधे अनुवाद के रुप में प्रस्तुत करने का था। लेकिन अंततः यह पुस्तक एक स्वांतः सुखाय उद्यम का रुप ले बैठी। हमने इसे प्रासंगिक और पाठकों के लिए उपयोगी बनाने की खातिर काफी समय और मेहनत लगाई है। ब्रिटिश काउंसिल द्वारा इस प्रोजेक्ट के लिए उपलब्ध कराए गए सहयोग व समर्थन के लिए हम उनके आभारी हैं। खास तौर पर, सुश्री कमल सिंह के प्रति आभार प्रकट करना चाहते हैं जिनके परामर्श तथा धैर्य के कारण यह पुस्तक आज आपके सामने है। हम रेबेका ईप्पन तथा एमिली गुप्ता के भी आभारी हैं जिन्होंने विभिन्न चरणों में इस रपट पर काम किया। संपादन व टंकन में सहयोग देने के लिए हम अंशु तेजपाल और तनु पंत का धन्यवाद करते हैं। अनुवाद, फॉर्मेटिंग व प्रकाशन में APTC के अशोक भंडारी, गिरीश चंदोक, भारत भूषण, आशा ध्यानी और अश्वनी चौहान की संलग्नता के लिए हम उनका धन्यवाद करते हैं। इस रिपोर्ट को सरल तथा सुलभ बनाने के लिए हम श्री ललित कार्तिकेय के आभारी हैं।

जून, 2004
नई दिल्ली

माया दारूवाला

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

मूल संस्करण के लिए प्रस्तावना

मानवाधिकारों की पैरवी करने वाली इस समयोचित रिपोर्ट का हम स्वागत करते हैं। इसमें राष्ट्रमंडल देशों में बड़े पैमाने पर व्याप्त गरीबी के उन्मूलन के लिए अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया गया है। आज से दस वर्ष पहले 1991 में राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों के सम्मेलन [Commonwealth Heads of Government Meeting (CHOGM) - चोगम] ने हरारे घोषणा स्वीकार की थी। एक दशक की इस अवधि में यह मूल्यांकन करना बहुत ज़रूरी है कि कल्याणकारी शासन और मानवाधिकारों के प्रति वचनबद्धता के अपने मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर गरीबी दूर करने में राष्ट्रमंडल कितना सक्षम और प्रतिबद्ध रहा है। रिपोर्ट में उजागर किया गया है कि राष्ट्रमंडल की विज्ञप्तियों में पाए जाने वाली घोषणाओं और लोगों के जीवन की वास्तविकता के बीच बहुत ही चिन्ताजनक खाई है। इस रिपोर्ट में प्रस्तुत साक्ष्यों से पता चलता है कि समूचे राष्ट्रमंडल में मानवाधिकारों के स्तर की अनदेखी की जा रही है। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों और समझौतों पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रों द्वारा किये गये वायदों और राष्ट्रमंडल में उन्हें बार–बार दोहराये जाने के बावजूद उन पर अमल नहीं हो रहा या उनकी अनदेखी की जा रही है। हमारे समुदायों में ऐसे विशेष समूह मौजूद हैं जिनके शोषण की आशंका अधिक रहती है और वे अधिकतर गरीबी से जूझ रहे हैं। उनकी हालत में सुधार लाने के लिए पर्याप्त कार्य नहीं किया गया है। राष्ट्रमंडल देशों में रहने वाले ढेरों लोगों के लिए हिंसा और शोषण का खतरा बराबर बना हुआ है।

चोगम 2001 को इस रिपोर्ट में दिये गये दिल दहला देने वाले आंकड़ों पर अवश्य ध्यान देना होगा। सबसे पहले, राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों को यह मानना होगा कि गरीबी खुद ही मानवाधिकारों का हनन है। दूसरे, हरारे घोषणा के प्रति फिर से वचनबद्धता व्यक्त करनी होगी और एक ऐसी कार्य–योजना तैयार करनी होगी जिसमें आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को प्राथमिकता देने वाली नीतियां लागू करने पर बल दिया गया हो। राष्ट्रमंडल अपने सदस्यों के बीच विशेष संबंधों को महत्व देता है, लेकिन राष्ट्रमंडल के लिए उस समय यह सद्भाव बनाये रखना संभव नहीं है जबकि राष्ट्रों और उनके लोगों के बीच इतनी गम्भीर असमानताएं व्याप्त हों। वांछित सफलता और सम्मान हासिल करने के लिए राष्ट्रमंडल को निश्चित रूप से एक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में काम करना होगा जो गरीबों की आवाज़ बुलन्द कर सके और नागरिक समाज तथा इससे प्राप्त नये अनुभव का लाभ उठा सके।

सितंबर 2001 **अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार आयोग, सी एच आर आई**

आभार

अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार आयोग की इस वर्ष की रिपोर्ट सहयोग और समर्पित कर्म का नतीजा है। इस रिपोर्ट को तैयार करने में 26 विद्वानों, व्यावसायियों और कार्यकर्ताओं का योगदान रहा है जो अपने–अपने क्षेत्र में प्रखर विभूति हैं। हम इन विभूतियों के कार्य की सराहना करते हैं और उनके आभारी हैं। इनमें केथी अल्बर्टिन, किटी अरम्बुलो, केविन बेल्स, रिचर्ड बोर्न, जिल कॉट्रेल, एलिसन डक्सबरी, पेट्रिक अर्ल, सावित्री गुणसेकरा, जगदीश गुण्डारा, पॉल हंट, क्रिस जॉश्निक, पीटर लामोर, सॉंड्रा लीबनबर्ग, नेविल लिंटन, एरिन मेकेंडल्स, एलन मैक्वेस्नी, मालिनी मेहरा, अमिताव मुखर्जी, बिनाइफर नौरोजी, एन पेट्टिफोर, मार्गरेट रेनॉल्ड्स, लिंडसे रौस, सिराज सेठ, आमॉंडा शाह, डग्लस टिल्टन और दीपिका उदगामा शामिल हैं।

रिपोर्ट की विषयवस्तु का विकास एवं परिष्कार नई दिल्ली तथा जिनेवा में गैर सरकारी संगठनों, विशेषज्ञों और कार्यकर्ताओं के साथ की गई चर्चा और विल्टन पार्क, ब्रिटेन में "मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन" के विषय पर आयोजित सम्मेलन में हुए विचार विमर्श पर आधारित है। सम्मेलन में सभी राष्ट्रमंडल देशों से विशेषज्ञों और योगदान करने वाले अन्य भागीदारों ने मिलकर विचार किया। उनके मूल्यवान और सार्थक योगदान के लिए हम आभार व्यक्त करते हैं। हम रिचर्ड बोर्न, विंस्टन कॉक्स, मेघनाद देसाई, ऑरंटो डगलस, जुलिया हॉजन, पॉल हंट, रौशन जहां, ग्रैम जस्टिस, एलन मैक्वेस्नी, रोज म्वेबज़ा, केरॉल नार्सिस, वुसी न्हलापो, माइकल ओधिऐम्बो, बोनिफेस ओये–ऐडेनिरन, ऐंजेला पेंरोज, बर्ट्रेन्ड रामचरण, मार्गरेट रेनॉल्ड्स, एमिल शार्ट और सिराज सैट जैसे विद्वानों के विशेष रूप से आभारी हैं।

वास्तव में इस रिपोर्ट में इतने लोगों ने अलग–अलग तरह से योगदान दिया है कि उन सभी का आभार यहां व्यक्त करना संभव नहीं है। फिर भी कुछ लोग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें पहला नाम है श्री यश घई का जो हांगकांग विश्वविद्यालय में सर वाइ. के. पाओ नामांकित सार्वजनिक विधि प्राचार्य के पद पर काम कर रहे हैं और फिलहाल केन्या के संविधान समीक्षा आयोग के अध्यक्ष हैं। वे सी एच आर आई की ओर से पिछले एक दशक से और मानवाधिकारों के लिए उससे भी पहले से अथक प्रयास करते रहे हैं। मैं उनके प्रयासों की विशेष आभारी और प्रशंसक हूं। उनकी सहायता और योगदान के बिना यह रिपोर्ट तैयार करना बड़ा कठिन था।

मैं विशेष ऋणी हूं जिल कॉटरेल की कि उन्होंने हमें गहन विचार–विमर्श के लिए समय दिया और विभिन्न स्तरों पर टिप्पणियां और सामग्री प्रदान की; ए. के. शिवकुमार की जो न केवल साथ रहे, बल्कि अपने सद्भाव, परामर्श और व्यापक अनुभव से इस रिपोर्ट के प्रकाशन में बड़ी उदारतापूर्वक योगदान किया और दीपा ग्रोवर की, जिन्होंने कम समय में अधिक कार्य की योजना को मूर्त रूप दिया और हमें उपयोगी सुझाव प्रदान किए ।

अनुसंधान में सहायता के लिए फेडेरिका डोनाटी और डिज़ाइन तथा प्रकाशन के लिए रश्मि कलेका की सराहना करना चाहूंगी। राष्ट्रमंडल सचिवालय का स्टाफ भी प्रशंसा का पात्र है जिन्होंने समय–समय पर बहुमूल्य जानकारी हमें उपलब्ध कराई।

सामग्री उपलब्ध कराने, अनुसंधान, लेखन, सम्मेलनों और बैठकों के आयोजन और रिपोर्ट के लेखन तथा चोगम में परामर्श प्रयासों में समन्वय स्थापित करने के लिए मैं नयी दिल्ली और लंदन में कार्यरत टीमों की विशेष सराहना करना चाहूंगी। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग–अलग समयावधियों में समन्वय का इतना व्यापक कार्य मिशेल कगारी, अमान्डा शाह, कैरी ऐमन्डस, हसित थैंकी, क्लेयर मार्टिन, बिभु महापात्र और हाल ही में शार्लमेन गोमेज़, वेंकटेश नायक, अनुराधा के. और दीपिका मोगिलीशेट्टी के समर्पित प्रयासों और उद्यमशीलता तथा वचनबद्धता के अभाव में संभव नहीं हो पाता। राधा शर्मा और पी प्रसाद के स्वैच्छिक सहयोग और बिजली की कटौती और वाइरस जैसी संकट की स्थितियों में सैन्थिल कुमार के तकनीकी सहयोग के प्रति भी मैं आभारी हूं। बैंजमिन क्राफ्ट और फिलिप डफ्टी का योगदान विशेष रूप से सराहनीय है जिन्होंने घंटों अनुसंधान किया और विचार सामग्री उपलब्ध कराने और उसके परिष्कार में योगदान किया। उन्होंने काम के दबाव के तहत जिस समर्पण भाव से प्रयास किये, उनके अभाव में इस रिपोर्ट को प्रकाशित करना संभव नहीं था।

यह रिपोर्ट और इसे तैयार करने में किये गये अनुसंधान, परामर्श और नेटवर्किंग में एफ सी ओ चेलेन्ज फण्ड और मानवाधिकार परियोजना कोष द्वारा उदारतापूर्वक सहायता की गयी। सी एच आर आई इस सहायता के लिए अत्यंत आभारी है। हम वेस्ट मिन्स्टर फाउण्डेशन फार डेमोक्रेसी के भी आभारी हैं जिसने परियोजना के लिए अनुसंधानकर्ता उपलब्ध कराया और फोर्ड फाउण्डेशन के भी जिसने संस्थागत सहायता प्रदान की।

सी एच आर आई इस रिपोर्ट में व्यक्त किये गये विचारों की पूरी ज़िम्मेदारी लेता है।

माया दारूवाला
निर्देशिका, सी एच आर आई

सितम्बर, 2001

cyan black

राष्ट्रमंडल के सदस्य देश

एंटीगुआ और बारबुडा	1
आस्ट्रेलिया	2
बहामास	3
बांगलादेश	4
बार्बेडोस	5
बेलीज़	6
बोत्स्वाना	7
ब्रूनेई	8
कैमरून	9
कनाडा	10
साइप्रस	11
डोमिनिका	12
फीजी द्वीप समूह	13
गैम्बिया	14
घाना	15
ग्रेनाडा	16
गयाना	17
भारत	18
जमैका	19
केन्या	20
किरिबास	21
लेसोथो	22
मलावी	23
मलेशिया	24
मालदीव	25
माल्टा	26
मोरीशस	27
मोज़ाम्बिक	28
नामिबिया	29
नौरू	30
न्यूज़ीलैंड	31
नाइजीरिया	32
पाकिस्तान	33
पापुआ न्यूगिनी	34
संट किट्स और नेविस	35
संट लूसिया	36
सेंट विन्सेंट और ग्रेनाडीन्स	37
सामोआ	38
सेषॅल्स	39
सिएरा लियोन	40
सिंगापुर	41
सोलोमोन द्वीप	42
दक्षिण अफ्रीका	43
श्रीलंका	44
स्वाज़ीलैंड	45
तंज़ानिया	46
टोंगा	47
ट्रिनिडाड और टोबैगो	48
टुआलू	49
युगांडा	50
ब्रिटेन	51
वानुआतू	52
ज़ाम्बिया	53

(स्रोत : http://www.cyec.org.uk/commonwealthmap.asp)

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विषयवस्तु

भूमिका		1
अध्याय–1	राष्ट्रमंडल में गरीबी	3
अध्याय–2	गरीबी के कारण	21
अध्याय–3	गरीबी दूर करने के लिए अधिकार आधरित दृष्टिकोण	58
अध्याय–4	मानवाधिकारों का ढाँचा	64
	सहस्राब्दि विकास लक्ष्य	86
अध्याय–5	गरीबों के लिए अधिकारों का महत्व	90
अध्याय–6	राष्ट्रमंडल, मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन	122
प्रमुख मानवाधिकार संधियों की पुष्टि की स्थिति		133
संदर्भ टिप्पणियां		135
संदर्भ ग्रंथसूची		145
मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणा		160

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

भूमिका

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव (सी एच आर आई) राष्ट्रमंडल के अनेक हिस्सों में व्याप्त घोर गरीबी देखकर विचलित है। इतनी अधिक संख्या में और इतने बड़े पैमाने पर लोगों का गरीबी से त्रस्त होना असहनीय है। तीसरी सहस्राब्दि की दहलीज़ पर राष्ट्रमंडल के कुछ वर्ग अभूतपूर्व सम्पदा का आनन्द उठा रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय भलीभांति जानता है कि उसके पास गरीबी दूर करने के लिए निश्चित तौर पर ज्ञान, साधन, इच्छाशक्ति और वैधानिक दायित्व सब कुछ है, लेकिन गरीबी को तत्काल और सदा–सदा के लिए दूर करने की राजनीतिक इच्छा का होना भी आवश्यक है। यह वास्तव में इस संगठन, सदस्य देशों की सरकारों, वाणिज्यिक क्षेत्र और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए शर्म की बात है कि राष्ट्रमंडल में करोड़ों लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति कई तरह से बिगड़ती जा रही है और वे महज शब्दाडम्बर पर ही निर्भर रहते हैं। राष्ट्रमंडल में सर्वव्यापी गरीबी इस संगठन की एकता, सामाजिक न्याय और समानता जैसे आदर्शों का उपहास करती है।

अभिजात वर्ग द्वारा संचालित वैश्वीकरण की तेज़ गति, भ्रष्ट सरकारों और नौकरशाहों द्वारा राष्ट्रमंडल के लोगों के मानवाधिकारों को तिलांजलि दी जा रही है। वे सभी न केवल गरीबी को रोकने में विफल रहे हैं, बल्कि पर्यावरण क्षति, एच आई वी/एड्स, दमनकारी सामाजिक ढांचों और सशस्त्र संघर्षों से उत्पन्न गरीबी को बढ़ावा दे रहे हैं। राष्ट्रमंडल और इसके सदस्य देशों को लगातार हो रहे गरीबों के मानवाधिकारों के हनन की ज़िम्मेदारी लेकर इस स्थिति में बदलाव लाने के लिए अवश्य कुछ करना होगा। इसके लिए न केवल उन्हें अपने जिम्मेदारियों को जानना आवश्यक है, बल्कि सतत गरीबी के लिए अंतर्राष्ट्रीय कर्ताधर्ताओं को जवाबदेह बनाना भी ज़रूरी है।

अनुभव से पता चलता है कि विकास की जो नीतियां और पद्धतियां मानवाधिकारों के मानदण्डों और प्रक्रियाओं पर आधारित नहीं हैं, उनसे गरीबी दूर करना या न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करना संभव नहीं है, जबकि जनकेन्द्रित विकास का यह बुनियादी मूल्य है। अकेले यह सिद्धान्त भर राष्ट्रमंडल सचिवालय और राष्ट्रीय सरकारों के ढांचे, कार्य और प्रक्रियाओं का मार्गदर्शन करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इस दृष्टिकोण को नैतिक सहमति और वैधानिक दायित्व, दोनों का समर्थन प्राप्त है। इस के आधार पर गरीबी उन्मूलन से संबंधित दायित्वों की पहचान हो जाती है। यह नज़रिया नीति तय करने, नीति निर्माताओं को सर्वाधिक उपयुक्त प्रक्रियाओं का चयन करने; सार्वजनिक ढांचों को नया रूप देने; कार्यान्वयन के लोकतांत्रिक तरीके अपनाने; उपयुक्त लक्ष्य और लाभार्थियों का निर्धारण करने और लोगों की गरिमा के संदर्भ में प्रयासों के प्रभाव का मूल्यांकन करने का व्यावहारिक साधन है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि मानव विकास और मानवाधिकार की अवधारणाओं पर एक साथ अथक प्रयास करने, और विकास तथा मानवाधिकारों के बीच आवश्यक सामंजस्य कायम करने की आवश्यकता है।

गरीबी दूर करने के इस दृष्टिकोण पर अमल के लिए राष्ट्रमंडल में अधिकतर ढाँचा पहले से ही मौजूद है। राष्ट्रमंडल को नये सिरे से कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय समझौतों, उन्हें लागू करने और उन पर निगरानी रखने की पद्धतियों के रूप में राष्ट्रमंडल के नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा की व्यवस्था पहले से ही अस्तित्व में है। राष्ट्रमंडल में आधिकारिक और गैर–आधिकारिक दोनों ही स्तरों पर इस ढाँचे को मज़बूत बनाने, उसका इस्तेमाल करने और उसमें सुधार करने की आवश्यकता है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अर्थ में काफी विस्तार हुआ है लेकिन ये अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की तुलना में कम परिचित हैं और कम अमल में लाये गये हैं। राष्ट्रमंडल को इन अधिकारों के लिए मौजूदा कानूनी ढाँचे में सुधार का प्रमुख समर्थक होना होगा और उन पर अमल की स्थिति में सुधार लाने के तरीके विकसित करने होंगे। उसे इस बात की पक्की व्यवस्था करनी होगी कि इन सुधारों के तहत संगठनों और सदस्य देशों की सरकारों की कार्यपद्धति में मानवाधिकारों पर मुख्य रूप से बल दिया जाए और उन्हें केन्द्र में रखकर ही नीति निर्धारण किया जाए।

राष्ट्रमंडल ने जिस तरह गरीबी के बारे में नियमित रूप से चिंता व्यक्त की है, उसी तरह इसने अपने सभी वक्तव्यों और घोषणाओं में मानवाधिकारों के प्रति भी लगातार वचनबद्धता प्रकट की है। लेकिन, यह कोरा शब्दाडम्बर ही रहा है। अब राष्ट्रमंडल को सब के लिए

cyan black

खुशहाली और मानवीय गरिमा हासिल करने की प्रक्रिया तेज़ करने के लिए तत्काल और व्यापक कार्रवाई करनी होगी। इस सिलसिले में उसे इस बात की स्पष्ट पहचान करनी होगी कि राष्ट्रमंडल में कहीं भी गरीबी का बना रहना मानवाधिकारों का गम्भीर हनन है और इसका कारगर और शीघ्र समाधान यही है कि अधिकारों पर आधारित उचित दृष्टिकोण अपनाया जाए।

इस दिशा में सी एच आर आई ने राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों की ब्रिसबेन बैठक से अपील की है कि संगठन और इसके सदस्य राष्ट्रों को तत्काल गरीबी दूर करने के प्रति कृतसंकल्प बनाने के लिए राष्ट्रमंडल की कार्यप्रणाली को पूरी तरह नया रूप दिया जाए। इसके लिए राष्ट्रमंडल को अपने लोगों और नागरिक समाज की भागीदारी से मानवाधिकारों के दायरे के भीतर घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर आर्थिक असमानता दूर करने में सक्षम एक खास, व्यावहारिक, समयबद्ध कार्ययोजना लागू करनी होगी। इसे केवल उन नीतिगत उपायों पर ध्यान केन्द्रित करने का संकल्प लेना होगा जिसमें राष्ट्रमंडल एक ऐसे प्रतिबद्ध संगठन के रूप में एकजुट हो सके जहां सदस्य राष्ट्र एक दूसरे के साथ मिलकर गरीबी समाप्त करने और मानवाधिकारों को लागू करने के विश्वव्यापी संघर्ष में अग्रणी और अंतर्राष्ट्रीय प्रवक्ता की भूमिका निभा सकें। ऐसा न होने की स्थिति में संभव है राष्ट्रमंडल अपने अधिसंख्य नागरिकों के लिए अप्रासंगिक हो जाए।

राष्ट्रमंडल आज एक महत्वपूर्ण मोड़ पर पहुंच गया है। ब्रिसबेन में राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों की बैठक (चोगम) से पहले बुलाई गयी उच्च स्तरीय समीक्षा मंडल (High Level Review Group- एच एल आर जी) की बैठक में संगठन को नया रूप देने की इस आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित किया गया। उपनिवेशवाद पर विजय से जन्मे संगठन की भूमिका दमन के खिलाफ और नागरिकों को व्यावहारिक रूप में अधिकार दिलाने के संघर्ष के रूप में जारी रहनी चाहिए। गरीब लोगों का संगठन होने के कारण राष्ट्रमंडल को यह अवश्य सुनिश्चित करना चाहिए कि उसकी नीति लोगों के माध्यम से उन्हीं का हित करने के लिए तैयार की जाए। सी.एच.आर.आई. का विश्वास है कि राष्ट्रमंडल के लिए अब समय आ गया है कि वह नई आगामी सदी के लिए अपने को नयी प्रासंगिकता से जोड देते हुए गरीबी दूर करने और सभी को मानवाधिकार दिलाने वाले ताकतवर और असरदार संगठन के रूप में जाना जाए।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

अध्याय –1

राष्ट्रमंडल में गरीबी

राष्ट्रमंडल में रहने वाले अधिकतर लोग गरीब हैं। इनमें से बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो घोर गरीबी में जी रहे हैं। राष्ट्रमंडल की करीब 200 करोड़ की आबादी का एक तिहाई–यानी करीब 70 करोड़ लोग ऐसे हैं जो प्रतिदिन 1 अमेरिकी डॉलर से भी कम आय में गुज़ारा करते हैं।[2] यह इस बात का प्रमाण है कि दुनिया की कुल आबादी में नगण्य आय के साथ अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वालों में से आधे लोग राष्ट्रमंडल में रहते हैं।[3] राष्ट्रमंडल के निर्धनों में दो–तिहाई से अधिक (53 करोड़) लोग दक्षिण एशिया में हैं, जो प्रतिदिन 1 अमेरिकी डॉलर से कम आय में गुज़र–बसर कर रहे हैं। जहाँ तक भारत का सवाल है, इसके गरीबों में करीब 35 प्रतिशत ऐसे हैं जिनकी दैनिक आय 1 अमेरिकी डॉलर से भी कम है। राष्ट्रमंडल के नागरिकों का अधिसंख्य हिस्सा (64 प्रतिशत) यानी 128 करोड़ लोग–प्रतिदिन 2 अमेरिकी डॉलर से कम आय में जीवन–यापन करते हैं। इनमें से 100 करोड़ दक्षिण एशिया में हैं। बांगलादेश में यह संख्या 78% है। इसका अर्थ है कि वहाँ 10 करोड़ नागरिक गरीबी की दलदल में फंसे हैं। राष्ट्रमंडल के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश, भारत में 86% या करीब 86 करोड़ लोग संसाधनों की इस गरीबी से जूझ रहे हैं[4] दक्षिण एशिया में सबसे गरीब 20% लोग अपने–अपने देश की राष्ट्रीय आय का 10% से कम हिस्से का अर्जन और उपभोग करते हैं, जबकि सबसे अमीर 10% लोग 25% से अधिक आय का अर्जन और उपभोग करते हैं।[5] यह स्पष्ट असमानता इस क्षेत्र में गरीबी का कारण और परिणाम दोनों है।

गरीबी की वजह से होने वाले अधिकारों के हनन पर अगर एक निगाह डालें, तो बड़ी घृणित तस्वीर सामने आती है। गरीबी महिलाओं और पुरुषों, दोनों को ही दयनीय आर्थिक और सामाजिक जीवन जीने के लिए मजबूर करती है, जिससे उन्हें भूख और बीमारियों का सामना करना पड़ता है। भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका में गरीबों के पांचवें हिस्से से अधिक लोगों को समुचित मात्रा में बुनियादी पोषण नहीं मिल पा रहा है जबकि बांगलादेश में 38 प्रतिशत निर्धन कुपोषण का शिकार हैं। विश्वभर में खून की कमी से ग्रस्त महिलाओं में आधी महिलाएं दक्षिण एशिया में रहती हैं।[6] एचआईवी/एड्स, मलेरिया और क्षयरोग (इनमें अंतिम दो साध्य रोग हैं) से करोड़ों लोगों की जानें जाती हैं। इसी तरह बड़ी संख्या में शिशु मृत्यु और प्रसव के समय महिलाओं की मौत होती है। हर वर्ष करीब 20 लाख लोग

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

क्षयरोग का शिकार होते हैं और इस तरह विश्वभर में किसी भी संक्रामक रोग के मुकाबले क्षयरोग से सर्वाधिक मौतें होती हैं। सन् 2020 तक करीब 100 करोड़ लोगों के इस बीमारी से ग्रस्त होने की आशंका है, जिसमें से अधिकतर नए मामले दक्षिण एशिया में सामने आ रहे हैं। भारत में प्रति 1,00,000 लोगों में से 94–107 लोग क्षयरोग से संक्रमित हैं और क्षयरोग संक्रमण की दृष्टि से अफ्रीकी उप–सहारा क्षेत्र के बाद भारत का दूसरा स्थान है।[7] मलेरिया से मरने वाले 30 करोड़ लोगों में से 90 प्रतिशत मौतें अफ्रीका में होती हैं और उनमें से 20 प्रतिशत मृतक 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे होते हैं।[8] विश्व के कुल कुष्ठ रोगियों में से 70% भारत में हैं।[9]

विश्वभर में एच आई वी से ग्रस्त 60 प्रतिशत मामले राष्ट्रमंडल देशों में पाए गए हैं और इस विषाणु से सर्वाधिक संक्रमित देशों में से 9 देश राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं।[10] ज़ाम्बिया में 1998 में 1300 शिक्षकों की मौत एड्स के कारण हुई। यह संख्या उस वर्ष के प्रशिक्षार्थी शिक्षकों के दो–तिहाई से अधिक थी। ज़िम्बाब्वे में 2001 में कृषि–उत्पादन में 50 प्रतिशत की कमी आयी क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में एच आई वी/एड्स से सम्बद्ध मौतों की संख्या में तीव्र बढ़ोतरी हुई थी।[11] करीब 40 लाख भारतीय आज इस विषाणु से संक्रमित हैं और एच आई वी से ग्रस्त लोगों की वास्तविक संख्या की दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका के बाद भारत का दूसरा स्थान है। राष्ट्रमंडल में करीब 60 प्रतिशत लोगों को अनिवार्य औषधियां और समुचित स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।

भारत में एक–तिहाई से भी कम आबादी को उन्नत स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध हैं– जो दक्षिण एशिया में निम्नतम है।[12] राष्ट्रमंडल में करीब 27 करोड़ लोगों को स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति उपलब्ध नहीं है[13]। शायद एच.आई.वी/एड्स से भी ज्यादा खतरा लोगों को पेयजल स्रोतों के आर्सेनिक ज़हर से ग्रस्त होने के कारण पैदा हो गया है।[14] आर्सेनिक ज़हर के असर संबंधी ताजा अध्ययन से पता चला है कि अकेले भारत और बांगलादेश में इसके दुष्प्रभाव का खतरा दोगुना हो गया है। करीब 33 करोड़ इस खतरे का शिकार बन रहे हैं।[15]

अनेक लोगों को गरीबी के कारण गंभीर बीमारी का सामना करना पड़ता है। गरीबों को अक्सर ऐसा रोज़गार मिलता है जिसमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता अधिक पड़ती है किन्तु कुपोषण बीमारी से लड़ने की उनकी शक्ति और क्षमता को कम कर देती है। बांगलादेश में एक–तिहाई से अधिक और भारत में एक चौथाई नागरिक कुपोषण से ग्रस्त हैं और बीमारी का खतरा झेल रहे हैं। बीमारी के कारण लोग काम पर नहीं पहुंच पाते जिस के कारण आमदनी में कमी आती है, किन्तु स्वास्थ्य देखभाल पर खर्च बढ़ जाता है। गरीब अपनी तंगहाली के लिए अधिकतर बीमारी को कारण बताते हैं।[16]

शिक्षा के अभाव के कारण गरीबों का शोषण अधिक होता है। विश्व के कुल निरक्षर लोगों (39 करोड़) में से 45% अकेले बांगलादेश, पाकिस्तान और भारत में हैं। इनमें 60% से अधिक महिलाएं हैं। पिछली सहस्राब्दि के अंत में भारत के 29 करोड़ लोग ऐसे थे जो लिख–पढ़ नहीं सकते थे। इनमें से 70% लोग केवल 10 राज्यों में केन्द्रित हैं–उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारखंड, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश और महाराष्ट्र। दक्षिण एशिया में श्रीलंका एक मात्र ऐसा देश है जहाँ साक्षरता की दर 90% से अधिक है।[17]

इस बात के पुख़्ता संकेत हैं कि गरीबी गहन होती जा रही है। 1997 में बोत्सवाना, केन्या, सिएरालियोन, वानूवातू, कैमरून, ज़िम्बाब्वे और जाम्बिया के मानव विकास सूचकांक में पिछले दशक की तुलना में इस दशक में बहुत अधिक कमी दर्ज हुई। यह सूचकांक आय, प्रत्याशित आयु और साक्षरता पर आधारित है। केन्या में प्रत्येक 2 में से एक व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे या 33 शीलिंग्स–प्रतिदिन एक डॉलर से भी कम आय पर गुज़र–बसर करता है। 1980 के दशक के मुकाबले यह स्थिति काफी बदतर है।[18]

वास्तव में असमानता की खाई बड़ी चिन्ताजनक ढंग से बढ़ रही है। विश्व की आय में दुनिया के सबसे गरीब बीस प्रतिशत लोगों की हिस्सेदारी मात्र 1.11 प्रतिशत है, जो 1960 के 2.3 प्रतिशत से भी नीचे चली गयी है। आज सबसे अमीर बीस प्रतिशत लोग सबसे गरीब बीस प्रतिशत लोगों के मुकाबले 78 गुणा अधिक अर्जित कर रहे हैं। 1960 में यह असमानता 30 गुणा थी। यहां तक कि धनवान राष्ट्रमंडल देशों में भी ऐसे आबादी–क्षेत्र हैं जिनमें गरीबी गहरी होती जा रही है। यह अल्पसंख्यकों के खिलाफ भेदभाव का नतीजा है।

हालांकि राष्ट्रमंडल के विकसित देश, उत्कृष्ट रिकार्ड वाले देशों में आते हैं, लेकिन उनमें आंतरिक असमानताएं मौजूद हैं। ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया में 13 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करती है।[19] कनाडा में गरीबों का अनुपात 17.6 प्रतिशत है[20] और राष्ट्रीय आय का 64 प्रतिशत हिस्सा जनसंख्या के सबसे अमीर 30 प्रतिशत लोगों के हाथ में है।[21] श्रीलंका अपने दक्षिण

एशियाई पड़ोसी देशों से अधिक समृद्ध समझा जाता है, परंतु इस देश की कुल वार्षिक आमदनी के 40 प्रतिशत से अधिक हिस्से पर केवल 20 प्रतिशत सर्वाधिक अमीरों का कब्ज़ा है।[22]

समाज के सर्वाधिक कमज़ोर लोगों पर निगाह डालने पर गरीबी की विकटता और भी उजागर हो उठती है।

महिलाएं

राष्ट्रमंडल में गरीबी का अधिकतर बोझ महिलाएं और बच्चे सहते हैं। दुनिया भर में गरीबों में 70% महिलाएं हैं। निरक्षर लोगों में दो–तिहाई महिलाएं हैं।[23] अफ्रीका और एशिया में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की प्रत्याशित आयु कम है। यह तथ्य अन्य स्थानों की सामान्य प्रत्याशित आयु के संदर्भ में सामने आने वाले रूझान के ठीक उलट है। विकसित देशों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं के 5 वर्ष अधिक जीवित रहने की संभावना रहती है, जबकि दक्षिण एशिया में महिलाओं की जीवित रहने की संभावना पुरुषों की तुलना में

सारणी 1 दक्षिण एशिया में लिंग समानता– एक नमूना[24]

देश (वर्ष 2000)	प्रत्याशित आयु (वर्षों में)		शिशु मृत्युदर (प्रति 1000)		कुपोषित या कम भार वाले बच्चे[d]		बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर (प्राथमिक)[e]		बीच में स्कूल छोडने वाले बच्चों की दर (माध्यमिक)[e]		प्रौढ़ निरक्षरता (आयु 15+)	
	पु	म	पु	म	पु	म	पु	म	पु	म	पु	म
बांगलादेश	61	62	28[a]	38[a]	45.9%	49.8%	20%	30%	70%	85%	47.7%	70.1%
भारत	62	63	25	37	45.3%	48.9%	17%	29%	29%	52%	31.6%	54.6%
पाकिस्तान	62	64	उ.न.	उ.न.	38%	38.4%	उ.न.	75%	उ.न.	उ.न.	42.5%	72.1%
श्रीलंका	71	76	उ.न[b]	उ.न[b]	32%	33%	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.	5.6%	11%
दक्षिण एशिया	36.7	24.8	62[c]	63[c]	44%	47%	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.	33.9%	57.3%

पु : पुरुष म : महिला उ.न : आंकड़े उपलब्ध नहीं a b c d e के लिए कृपया अंतिम टिप्पणी # 24 देखें

मात्र एक साल या कुछ अधिक है। स्कूल न जाने वाले बच्चों में 70 प्रतिशत लड़कियां हैं। कुपोषण और मृत्यु की दर लड़कों के मुकाबले लड़कियों में ऊंची है। (सारणी–1 देखें)

दक्षिण एशिया में गर्भवती महिलाओं (15 वर्ष से 49 वर्ष के बीच की आयु की) में 80 प्रतिशत खून की कमी से ग्रस्त हैं जिसके कारण शिशु–मृत्यु दर बढ़ जाती है और कम भार वाले बच्चों का जन्म होता है। बांगलादेश में केवल 14 प्रतिशत महिलाओं को प्रसव के समय औपचारिक रूप से प्रशिक्षित दाइयों की सहायता मिल पाती है। (सारणी–2 देखें)

महिलाओं को अपने कौशल का विकास करने के अवसर बहुत कम मिल पाते हैं। देखभाल करने और घर चलाने में उनके योगदान का कोई मूल्य अदा नहीं किया जाता और उसे राष्ट्रीय सम्पदा में किए गए योगदान की मान्यता नहीं मिलती। घर से बाहर, महिलाओं को आमतौर पर समान कार्य के लिए कम पारिश्रमिक मिलता है; वे मुख्य रूप से निचले व्यवसायों/कार्यों तक ही अपने को सीमित पाती हैं। उन्हें घटिया या भय के माहौल में घंटों काम करना पड़ता है और अक्सर यूनियनों में उनकी संख्या न के बराबर होती है। उन्हें कोई कानूनी सुरक्षा नहीं मिल पाती। भेदभावपूर्ण कार्मिक कानूनों और रूढ़िवादी प्रथाओं के कारण गरीबी से छुटकारा पाने की महिलाओं की क्षमता में और भी बाधाएं पैदा होती हैं। अन्य बातों के अलावा, कई राष्ट्रमंडल देशों में आज भी ऐसी व्यवस्थाएं बरकरार है, जिनकी वजह से महिलाएं अपने को अक्षम पाती हैं, जैसे विरासत में समान भागीदारी न होना और महिलाओं के ऋण लेने पर रोक। कैमरून में,

cyan black

सारणी 2 दक्षिण एशिया में महिलाओं की स्थिति[25]

देश	प्रत्याशित आयु	प्रौढ़ निरक्षरता (15+)	श्रमिकों की भागीदारी	माता मृत्यु –दर (प्रति एक लाख जीवित जन्मों पर)	प्रशिक्षित स्वास्थ्य–कर्मियों द्वारा कराए गए प्रसव	खून की कमी से ग्रस्त महिलाएं	करीबी साथी द्वारा महिलाओं के प्रति हिंसा
बांगलादेश	62 वर्ष	70.1%	42%	600[1]	14%	53%	47%[2]
भारत	63 वर्ष	54.6%	32%	440[1]	49%[1]	88% (गर्भवती महिलाएं)	उ.न.
पाकिस्तान	64 वर्ष	72.1%	29%	200[1]	40%[2]	37%	उ.न.
श्रीलंका	76 वर्ष	11%	37%	60[1]	95%[1]	उ.न.	उ.न.
दक्षिण एशिया	63 वर्ष	57.3%	33%	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न

अन्यथा निर्दिष्ट को छोड़कर सभी आंकड़े सहस्राब्दि के अंत से सम्बद्ध हैं।

1. 1995 के आंकड़े 2. 1990 के आंकड़े उ.न. : आंकड़े उपलब्ध नहीं

नियोक्ता किसी महिला को काम पर रखने से पहले उसके पति की सहमति की मांग करता है, क्योंकि वहां पति को वाणिज्यिक गतिविधियों में हिस्सा लेने से पत्नी को रोकने या पारिवारिक हित के आधार पर पत्नी को किसी अलग व्यवसाय में काम करने से इन्कार करने का अधिकार है।[26] गरीबी की वजह से महिलाएं और बालिकाएं वेश्यावृत्ति के लिए खरीद–फरोख्त का शिकार बनती हैं। हर महीने अकेले बांगलादेश से व्यावसायिक यौनकर्मी अथवा घरेलू नौकरानी के रूप में काम करने तथा सस्ती मज़दूरी के लिए 200 से 400 के बीच महिलाओं को भारत, पाकिस्तान और खाड़ी देशों में अवैध रूप से पहुंचाया जाता है।[27]

अनेक देशों में महिलाओं पर व्यापक हिंसा जारी है। किन्तु, सार्वजनिक नीति निर्माताओं का पर्याप्त ध्यान इस ओर नहीं जाता। महिलाओं के सक्रिय राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर इसके अनेक दुष्प्रभाव पड़ते हैं जिसका व्यापक रूप से अध्ययन हुआ है। दक्षिण एशिया में महिलाओं के प्रति हिंसा की शुरुआत स्त्री–भ्रूण हत्या या फिर रूढिवादी परिवारों में बेटे की चाहत के कारण जन्म के तत्काल बाद स्त्री–शिशु की हत्या से होती है। विश्व भर में महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज़्यादा है (प्रति 100 पुरुषों के मुकाबले 106 महिलाएं), किन्तु लिंग–अनुपात दक्षिण एशिया में गिर गया है, जहाँ 100 पुरुषों के मुकाबले 94 महिलाएं हैं, नतीजतन कुल मिलाकर 7.4 करोड़ ''लापता महिलाएं'' हैं (missing women)।[28] भारत में हर चार मिनट पर एक महिला अपराध का शिकार बनती है। इन अपराधों में 80% मामले बलात्कार, यौन शोषण, उत्पीड़न या दहेज संबंधी हत्याओं के होते हैं।[29] दक्षिण एशिया में हर साल कम से कम 5,000 महिलाओं की हत्या उनके परिवार के सदस्यों द्वारा कर दी जाती है, जिनमें से ज्यादातर हत्याएं बलात्कार से होने वाली बदनामी से बचने के लिए की जाती हैं (जो कई मामलों में किसी रिश्तेदार द्वारा किया जाता है।) अकेले पाकिस्तान में 1999 में 1000 महिलाओं को ''बदनामी के डर'' से मार दिया गया।[30] वचिंत परिवारों की महिलाओं के अपने स्वास्थ्य के बारे में निर्णय करने पर ज़बरदस्त पाबंदी है। मामला चाहे सामान्य बीमारी के उपचार का हो या प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित, जैसे विवाह या बच्चों के बीच अन्तर रखने का, सभी मामलों में महिलाओं पर अंकुश लगाए गए हैं। अपने शरीर से संबंधित मामलों पर कम नियंत्रण होने के कारण, महिलाओं को एच.आई.वी. संक्रमण की आशंका अधिक होती है अथवा गरीबी उन्हें ऐसी स्थितियों में धकेल देती है जहाँ एच आइ वी/एड्स का जोखिम बहुत अधिक होता है। अफ्रीका में एच.आई.वी. संक्रमित लोगों में आधे से अधिक महिलाएं हैं। इस संबंध में दक्षिण एशिया का दूसरा स्थान है जहाँ इस विषाणु से संक्रमित लोगों में 36 प्रतिशत महिलाएं हैं।[31]

बच्चे

बच्चों की आवश्यकताओं के स्वरूप और विस्तार के मद्देनज़र उनके अधिकारों के हनन की संभावना बहुत ज़्यादा होती है। दुनिया के उन 120 करोड़ लोगों में बच्चों की संख्या आधे से अधिक है जिन्हें 1 अमेरिकी डॉलर से भी कम आमदनी में गुज़ारा करना पड़ता है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

केवल जब असहनीय हो जाये

नामीबिया में हर घंटे एक महिला के साथ बलात्कार होता है और वह एच आई वी/एड्स के मामलों में सर्वाधिक वृद्धि दर वाले देशों में से एक है। वहां बलात्कार के खिलाफ सबसे प्रगतिशील और व्यापक कानून पारित किया गया। लेकिन यह बिना संघर्ष के संभव नहीं हुआ। पति द्वारा किए गए बलात्कार के मुद्‌दे पर आपत्ति करते हुए साउथ वेस्ट अफ्रीकन पीपल्स आर्गेनाइज़ेशन (स्वापो) के महासचिव ने कहा कि पीड़ित महिला को पुलिस में शिकायत तभी दर्ज करानी चाहिए जब दुर्व्यवहार असहनीय हो जाये।'' नए 'कम्बैटिन्ग ऑव रेप ऐक्ट' यानी बलात्कार रोकथाम अधिनियम के तहत ऐसा व्यक्ति बलात्कार का दोषी माना जायेगा जो ''ज़ोर–ज़बरदस्ती की परिस्थितियों'' में किसी अन्य व्यक्ति के साथ यौन दुष्कर्म करेगा या ऐसा दुष्कर्म करने के लिए किसी को मदद पहुंचायेगा। बलात्कार की इस व्यापक परिभाषा में ''ज़ोर–ज़बरदस्ती की परिस्थितियों '' की बात की गई है जिनमें शारीरिक बल प्रयोग, धमकी, पीड़ित व्यक्ति का शारीरिक दृष्टि से अपंग या असहाय होना और मादक द्रव्यों के कारण मानसिक रूप से अक्षम होना जैसी स्थितियां शामिल हैं। यदि अपराधकर्ता की आयु 3 वर्ष से अधिक हो और पीड़ित व्यक्ति की आयु 14 वर्ष से कम हो, तो ''ज़ोर–ज़बरदस्ती की परिस्थितियां'' समझी जायेंगी और ऐसे में अधिक दंड दिया जायेगा। लगातार किए गए अपराधों के लिए दंड बढ़ता जायेगा। दंड की कठोरता निम्नांकित बातों पर निर्भर करेगी : पीड़ित व्यक्ति की आयु; संरक्षक द्वारा बलात्कार, अधिकारी या आश्रयदाता द्वारा बलात्कार, सामुहिक बलात्कार करना; अथवा बलात्कार करने वाले को इस बात का ज्ञान होना कि उसे यौन संबंध से संचारित होने वाली कोई बीमारी है। केवल नाबालिक अथवा ''अत्यंत बाध्यकारी परिस्थितियां'' होने की स्थिति में ही सजा कुछ कम हो सकती है। बेजोड़ बात यह है कि विवाह अथवा कोई अन्य संबंध होने पर भी बलात्कारी को किसी प्रकार की छूट नहीं दी जा सकती। उसे बलात्कार का दोषी ठहराया जा सकता है। पीड़ित व्यक्ति के पक्ष में इस अधिनियम में मानसिक आघात को साक्ष्य मानने और जमानत संबंधी सुनवायी के समय हस्तक्षेप करने के अधिकार की अनुमति प्रदान की गई है। इसमें आरोप के संबंध में सावधानी बरतने संबंधी वैधानिक चेतावनी (केविऐट) हटा दी गई है; शिकायतकर्ता की यौन प्रतिष्ठा को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है, और सुनवाई के समय लोगों तथा मीडिया की पहुंच पर रोक लगा दी गई है।[32]

दक्षिण एशिया में 80% बच्चे कुपोषण से पीड़ित हैं और भारत में तीन–चौथाई बच्चे खून की कमी का शिकार हैं।[33] गरीब परिवारों में पैदा होने वाले बच्चों के कुपोषण और अवरुद्ध–विकास का शिकार होने का जोखिम अधिक रहता है, जबकि समाज के समृद्ध वर्गों में 5 वर्ष से कम आयु में गिने–चुने बच्चे ही मौत का शिकार होते हैं (सारणी–3 देखें)। विश्वभर में 30 लाख से अधिक बच्चों की मृत्यु पानी से होने वाली बीमारियों के कारण हो जाती है जबकि भारत में दस्त लगने से प्रति पांच बच्चों में से एक की मौत हो जाती है।[34]

सारणी–3 दक्षिण एशिया में बच्चों की स्थिति– अभाव और समृद्धि का असर[35]

देश	प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मी द्वारा प्रसव कराना		शिशु मृत्यु (प्रति हज़ार जन्म पर)		5 वर्ष से कम आयु वर्ग में मृत्युदर (प्रति हज़ार जन्म)		बाल कुपोषण (5 वर्ष से कम आयु)		अवरूद्ध विकास से ग्रस्त बच्चे	
	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%
बांगलादेश (1996–97)	14.3%	58.6%	96.3	56.3	141.1	76.0	60%	28%	50.5%	23.5%
भारत (1992–93)	24.5%	88.6%	109.2	44	154.7	54.3	60%	34%	55.6%	30.9%
पाकिस्तान (1990–91)	4.6%	55.2%	88.7	62.5	124.5	73.8	26%	54%	61.1%	32.9%
श्रीलंका (1996)	उ.न.	उ.न.	19 (समग्र)		उ.न	उ.न	33%(समग्र)		उ.न.	उ.न.

cyan black

दियासलाई से खेलना

भारत में तमिलनाडु में सिवकासी शायद बाल मज़दूरी का ऐसा गढ़ है जिसके बारे में सर्वाधिक फिल्माया जा चुका है, लिखा जा चुका है और काफी अनुसंधान किया जा चुका है। सब जानते हैं कि दियासलाई और पठाखे के बनाने का व्यवसाय कितना जोखिम भरा है और वहां कितना शोषण है। यह 45,000 ऐसे बच्चों के कंधों पर चल रहा है जिन्हें एजेंटों और फैक्टरी मालिकों द्वारा उनके माता–पिता को दिए गए पूर्व ऋणों के बदले बंधक रखा गया है।

हर रोज़ साढ़े तीन साल से लेकर 15 वर्ष तक की आयु के बच्चों को गांवों से तड़के 3 बजे फैक्टरी बसों में भरकर लाया जाता है। यूनिसेफ (United Nations Children's Fund) द्वारा किए गए एक अध्ययन में 33 बसों का सर्वेक्षण करने के बाद यह पाया गया कि एक बस में 150 से 200 बच्चे तक भरे गए थे। इन बच्चों को अगले 12 घंटे तक फैक्टरी के अंधेरे और दूषित वातावरण में काम करना होता है और शाम को 7.00 बजे के बाद ही गांवों में उनकी वापसी होती है। दीपावली त्यौहार की तैयारी के दौरान फैक्टरियां में देर रात तक और सप्ताह में सातों दिन काम बच्चे करते हैं। बच्चे भारी मात्रा में पटाखों को रोल और पैक करते हैं। बारूद क्षयकारक होता है और कुछ समय के अंतराल के बाद बच्चे की उंगलियों की त्वचा गला देता है। छाले पड़ जाते हैं और बच्चा काम नहीं कर पाता क्योंकि उसके घावों पर रसायन पड़ने से तेजी से जलन होती है। फफोले 5 या 6 दिन में ठीक होते हैं, लेकिन इतने दिन तक गैरहाजिरी का अर्थ है काम से छुट्टी। इसलिए, आमतौर पर गर्म कोयला या जलती सिगरेट का सिरा लगाकर फफोले को फोड़ा जाता है और घाव को जलाया जाता है। कुछ समय बाद बच्चों की उंगलियों पर अनेक दाग बन जाते हैं। पोटेशियम क्लोरेट, फास्फोरस और जिंक ऑक्साइड का चूर्ण उनके फेफड़ों में भर जाता है, जिससे उन्हें सांस की बीमारियां होती हैं। बच्चे जब तक इतने बीमार नहीं हो जाते कि काम न कर सकें, तब तक उन्हें काम पर रखा जाता है। परिवार और उसी का एक और बच्चा ऋण चुकाने के लिए उसी काम पर लगाया जाता है।

विश्वभर में 13 करोड़ बच्चों की पहुंच प्राथमिक स्कूल तक नहीं है और इनमें से करीब आधे बच्चे राष्ट्रमंडल देशों में रहते हैं।[36] दक्षिण एशिया में प्राथमिक विद्यालयों में दाखिला लेने वाले 45% से अधिक बच्चे पाँचवीं कक्षा तक नहीं पहुंच पाते। पाकिस्तान में दो–तिहाई से अधिक लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षा के लिए दाखिला लेती हैं, किन्तु उनमें से केवल 40% स्कूली शिक्षा जारी रख पाती हैं। पाकिस्तान में महिला साक्षरता की दर 32.6% है जो इस क्षेत्र में सबसे कम है।[37] सामान्य सामाजिक और नैतिक उपेक्षा की वजह से बच्चे अक्सर शोषण और गरीबी का शिकार होते हैं। दक्षिण एशियाई राष्ट्रमंडल देशों में श्रमिकों में बड़ी संख्या बाल मजदूरों की है। इस क्षेत्र में और साथ ही अफ्रीकी उप–सहारा क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियाँ भी सबसे अधिक हैं। हालांकि सही–सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु अनुमान है कि भारत, बांगलादेश और पाकिस्तान में 10–14 वर्ष के आयु–समूह के 12–28% बच्चों का बचपन बाल–मज़दूरी में व्यतीत होता है।[38]

गरीबी और असमानता मनुष्य की, विशेषकर महिलाओं और बच्चों की, तस्करी के मूल कारण हैं। इनके अवैध व्यापार की आशंका देश के भीतर और सीमा पार, दोनों ही स्थानों पर अधिक रहती है। दक्षिण एशिया इस दृष्टि से प्रमुख क्षेत्र है जहाँ से सबसे अधिक तस्करी होती है। बांगलादेश, भारत, मोज़ाम्बीक, नामीबिया, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका, नाइजीरिया और ज़ाम्बिया में मज़दूरी और यौन–व्यापार के लिए बच्चों की निरन्तर तस्करी होती है। बालिकाएँ तस्करी का शिकार सबसे अधिक बनती हैं। दक्षिण एशिया में देह–व्यापार में लगी औरतों में करीब 60% नाबालिग लड़कियाँ हैं। भारत, पाकिस्तान और संयुक्त अरब अमीरात में 1990 के दशक में करीब 6 लाख बांगलादेशी महिलाओं और बच्चों का अवैध व्यापार किया गया। तस्करी महिलाओं की हो या बच्चों की – गुलामी का संकेत है क्योंकि यह बंधुआ मज़दूरी का संकेत है और अनेक बच्चे तथा वयस्क बंधुआ बनाए जाते हैं। एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रमंडल देशों में यह उत्पीड़न सबसे अधिक है। अनुमान है कि 2.7 करोड़ बंधुआ मज़दूरों में से 1.5 से 2.0 करोड़ के बीच भारत, पाकिस्तान और नेपाल में हैं।

दक्षिण एशिया में गरीबी अनेक बच्चों को स्कूल से बाहर रखने में कामयाब रही है और उन्हें परिवार के गुज़र–बसर के लिए पैसे कमाने पर मजबूर कर देती है। सभी दक्षिण एशियाई देशों ने बच्चों के अधिकारों से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की पुष्टि की है, किन्तु इससे इस क्षेत्र में शोषित बच्चों की हालत में कोई बदलाव नहीं आया है। श्रीलंका में 5 से 17 वर्ष की आयु के करीब 10 लाख अथवा 21% बच्चे मज़दूरों में शामिल हैं। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि श्रीलंका मज़दूर की न्यूनतम आयु के बारे में आई एल ओ समझौते (1973) की पुष्टि कर चुका है। भारत में केन्द्र और राज्यों द्वारा बाल मज़दूरी समाप्त करने या कम से कम बाल मज़दूरी को नियंत्रित करने के लिए 250 से अधिक कानून बनाए जा चुके हैं। किन्तु इनके बावजूद पिछली सहस्राब्दि के अंत तक भारत में 2 करोड़ बाल मज़दूर थे। इस तथ्य को स्वयं सरकार ने स्वीकार किया था।[39] अन्य अनुमानों के अनुसार यह संख्या 7–8 करोड़ की है, जो

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

उन बच्चों की संख्या से मेल खाती है, जिन्होंने स्कूल छोड़कर असंगठित क्षेत्र में मज़दूरी करना आरम्भ कर दिया है।[40] भारत को अभी बाल मज़दूरी के सबसे बुरे रूपों को समाप्त करने के लिए निषेध एवं तत्काल कार्रवाई से संबंधित 1999 के आई.एल.ओ. समझौते की पुष्टि करनी है। बांगलादेश में कपड़ा और चमड़ा उद्योग में 60 लाख से अधिक बाल मज़दूर काम कर रहे हैं। चर्मशोधक कारखानों में लगे कुल श्रमिकों में एक चौथाई 10–15 वर्ष की आयु के बताए गए हैं।[41] पाकिस्तान में 33 लाख बाल मज़दूर हैं जिनमें से अधिकतर खेतों, खानों और व्यापार तथा परिवहन सेवाओं में लगे हुए हैं। इन बच्चों में से एक तिहाई ऐसे हैं जो वयस्कों से अधिक समय तक काम करते हैं। उनमें से 25% बाल मज़दूरी सप्ताह में 8 घंटे प्रतिदिन से ज़्यादा काम करते हैं (वयस्क श्रमिक सप्ताह में औसतन 35 घंटे काम करते हैं, जबकि बच्चों को 56 घंटे से अधिक काम करना पड़ता है।)[42] अत्याधिक कठोर श्रम और उससे उपजी बीमारियाँ इन बाल श्रमिकों की शक्ति को उनके जवान होने से पहले ही निचोड देती हैं। इससे वे जीवनभर के लिए गरीबी के गर्त में गहरे धंसे जाते हैं। इन तीनों देशों में से किसी भी देश ने बाल मज़दूरी को गैर–कानूनी घोषित करने वाले आई.एल.ओ. के न्यूनतम आयु समझौते (1973) पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

दासता को बढ़ावा देने और उसे बरकरार रखने वाली ताकतें इतनी मजबूत हैं कि बहुत कम राष्ट्र या अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां ही उनका मुकाबला कर सकती हैं। भारत और पाकिस्तान में ऋण–गुलामी के खिलाफ ज़ोरदार कानून हैं। पाकिस्तान में स्वयंसेवी संगठनों द्वारा हालांकि सैकड़ों मामले प्रकाश में लाए गए, लेकिन किसी को भी दोषी नहीं ठहराया गया। अगर बंधुआ मज़दूरों को मुक्त करा भी लिया

दौड़ का मनोरंजन[43]

पाकिस्तान, भारत और बांगलादेश से खाड़ी के अमीर देशों में मनोरंजन के लिए बच्चे भेजे जाते हैं जो ऊंट–दौड़ में जॉकी यानी सवार का काम करते हैं। अधिकतर मामलों में सम्बद्ध श्रम कानून लागू नहीं किये जाते क्योंकि, बच्चों का इस्तेमाल करने वाले और दौड़ में हिस्सा लेने वाले ऊंटों के मालिक स्थानीय प्रभावशाली परिवारों से होते हैं और इसलिए दरअसल कानून से ऊपर भी।[44] पुलिस जांच करती है, लेकिन स्पष्ट सुबूत के बावजूद कभी किसी के खिलाफ कोई आरोप दर्ज नहीं किया जाता।

संगठित गिरोहों द्वारा छोटे बच्चों की तस्करी की जाती है। बहुत छोटे बच्चे, यहां तक कि 5 या 6 साल के बच्चों को वरीयता दी जाती है क्योंकि वे बहुत हल्के होते हैं। छोटे बच्चों का कभी–कभी अपहरण किया जाता है, लेकिन अक्सर उन्हें माता–पिता या संबंधियों द्वारा बेच दिया जाता है अथवा बेहतर घर या घरेलू कार्य दिलाने के बहाने उन्हें फुसलाया जाता है। परिवार से अलग, एक ऐसे देश में जहां लोग, संस्कृति और भाषा सब कुछ अनजान हो, अधिकतर बच्चे यातना और शोषण की घटनाओं की रिपोर्ट करने की स्थिति में नहीं होते। बचाये गये कुछ गिने–चुने बच्चों की आपबीती से बड़ा क्रूर दृश्य उभरता है। बच्चों का वजन कम से कम रखने के लिए दौड़ से पहले उन्हें भूखा रखा जाता है या बहुत कम भोजन दिया जाता है। उन्होंने बताया कि दौड़ प्रतियोगिताओं के दौरान हर रोज़ पिटाई और गम्भीर रूप से घायल होना आम बात है। भयभीत बच्चों को ऊंट की कमर पर बांध दिया जाता है और उनकी चीखों से दर्शक रोमांचित होते हैं। अगस्त 1999 में बांगलादेश से एक 4 वर्षीय ऊंट सवार संयुक्त अरब अमिरात के रेगिस्तान में पड़ा मिला। वह मौत से जूझ रहा था। मई 2000 में एक मालिक ने दौड़ में अच्छा प्रदर्शन न करने के लिए बांगलादेश के चार वर्षीय ऊंट सवार की टांगे जला डाली थीं। बच्चों को बेचे जाने, उनके दुरूपयोग, उनसे संबंधित अश्लील टिप्पणियों के बारे में संयुक्त राष्ट्र की विशेष रिपोर्ट में कहा गया है कि अल्पायु के बच्चों को ऊंट दौड़ में जॉकी के रूप में इस्तेमाल करने पर रोक लगाने की दिशा में कुछ भी नहीं किया गया है। इससे संकेत मिलता है कि ''नियमों की निर्ममता से अनदेखी की जाती है।''

ऊंट–दौड़ जैसी चीजों के लिए बच्चों के इस्तेमाल पर '' बाल अधिकारों से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र समझौते '' और '' बाल मज़दूरी के सबसे बुरे रूपों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन समझौते '' के तहत रोक लगाई गयी है। दासता, बंधुआ मज़दूरी, दुरूपयोग, अश्लील कार्यों, सशस्त्र संघर्ष में बच्चों के जबरन इस्तेमाल, मादक पदार्थों की तस्करी और अन्य अवैध गतिविधियों में बच्चों को लगाने तथा 18 वर्ष से कम आयु के लड़के–लड़कियों को उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा या नैतिकता की दृष्टि से हानिकारक किसी भी कार्य में इस्तेमाल करने पर रोक लगाने के लिए यह समझौता तत्काल और कारगर ढंग से लागू करने की आवश्यकता है।

भले ही अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सदस्य देशों ने अभी तक 182वें समझौते की पुष्टि न की हो, भले ही वे इसके प्रत्येक प्रावधान के पालन के प्रति वे बाध्य न हों, तब भी उन्हें बाल मज़दूरी को प्रभावी रूप से समाप्त करने की दिशा में नीतियां बनानी चाहिए। अगस्त 2001 तक भारत और पाकिस्तान ने ''बाल मज़दूरी के सबसे बुरे रूपों से संबंधित समझौते'' की पुष्टि नहीं की थी।[45]

cyan black

जाये तो इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि वे मुक्त रह पायेंगे। 1998 में सिंध में एक ज़मींदार ने 150 हथियारबंद लोगों की मदद से महिलाओं और बच्चों सहित उन 87 बंधुआ मजदूरों को फिर से अपने कब्ज़े में ले लिया जिन्हें हाल ही में आंदोलनकारियों ने मुक्त कराया था। वह उन मज़दूरों को लेकर तीन ज़िलों और कई पुलिस चौकियों को पार करने में सफल रहा और अधिकारियों ने उसे नहीं रोका।[46] अनुमान है कि पाकिस्तान में 10 लाख से अधिक बंधुआ मज़दूर अकेले कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं।[47]

भारत में केन्द्र सरकार की वचनबद्धता राज्य स्तर पर कार्यरूप न ले पाने के कारण विफल हो जाती है। मज़दूरों को बंधक रखने वाले लोगों को पुलिस छापा पड़ने की सूचना पहले ही मिल जाती है और बंधुआ मज़दूरी से मुक्त कराए गए मज़दूरों के लिए जारी पुनर्वास अनुदान तत्काल उन तक नहीं पहुंचता या उन्हें कभी नहीं दिया जाता जिससे वे फिर से गुलामी कुबूल कर लेते हैं। महिलाओं को ऋण–बंधक होने के दबाव में शादी करनी पड़ती है और ऋण दो–तीन पीढ़ी तक चलता रहता है क्योंकि ऋणदाता क़र्ज के हिसाब में गड़बड़ियां करता है। वह कर्ज़ वसूल करने के लिए कर्ज़दारों के बच्चों कों भी बंधक बना लेता है और उन्हें बेच भी देता है।

लम्बी अवधि के सशस्त्र संघर्ष में बाल–सैनिकों का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। युद्ध में बच्चे बड़े सस्ते और सहज सुलभ होते हैं। उनकी अकल्पनीय वफादारी के साथ उन्हें ''कारगर संहारकों'' के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। लड़के और लड़कियों दोनों की भर्ती की जाती है। लड़कियां अक्सर युद्ध शिविरों में रुकती हैं और यौनदासियों के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं। कभी–कभी उन्हें भी ''पीठ पर शिशुओं को बांधे'' जबरन लड़ाई में भेजा जाता है।[48]

'कोआलिशॅन टू स्टॉप द यूज़ ऑव चाइल्ड सोल्जर्स' नामक संगठन के अनुसार कई देशों में सरकारों द्वारा बच्चों की अनिवार्य सैन्य भर्ती होती है या फिर विद्रोहियों द्वारा सरकार के खिलाफ लडने के लिए उनका अपहरण किया जाता है। संगठन का निष्कर्ष है कि 41 देशों में करीब 3,00,000 बच्चे, जिनमें कुछ तो मात्र 7 वर्ष की आयु के हैं, सक्रिय रूप से युद्ध में लगे हैं, जबकि करीब 5,00,000 बच्चों को अर्धसैनिक संगठनों, गुरिल्ला समूहों और सिविल मिलिशिया द्वारा भर्ती किया गया है। श्रीलंका में बाल सैनिकों की सही–सही संख्या ज्ञात नहीं है, किन्तु अनुमानों के अनुसार विद्रोही समूहों की कुल संख्या में करीब 20 प्रतिशत बच्चे शामिल हैं। कुछ विद्रोही समूह तो 12 वर्ष तक की अल्पायु के बच्चों को सुरक्षा बलों के खिलाफ युद्ध में इस्तेमाल करते हैं, हालांकि इन समूहों द्वारा बच्चों और सशस्त्र संघर्ष से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र महासचिव के विशेष प्रतिनिधि को यह आश्वासन दिया गया था कि वे ऐसा नहीं करेंगे।[49]

श्रीलंका में जातीय संघर्ष के शिकार बने बच्चे[50]

- सहस्राब्दि के अन्त में 2,70,000 से अधिक बच्चे विस्थापित हो चुके थे।
- हर 12 महीनों में अनाथालयों में आने वाले बच्चों की संख्या दोगुनी हो जाती है।
- अनुमान है कि श्रीलंका के उत्तरी और पूर्वी हिस्सों में 20–50% विद्यार्थियों को स्कूल छोड़ने और विद्रोही बलों में शामिल होने के लिए मजबूर किया जाता है।

मूलनिवासी (जनजातीय लोग)

दुनिया के 25 करोड़ जनजातीय या मूलनिवासी लोगों में से करीब 10 करोड़ राष्ट्रमंडल देशों में हैं। 1984 में संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन की रिपोर्ट में जनजातीय लोगों के प्रति वर्तमान भेदभाव और उनकी दयनीय स्थिति को दर्शाया गया था। इसमें सार रूप में कहा गया था कि जनजातीय लोगों के प्रति जारी भेदभाव से उनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।[51]

चाहे वे कहीं के भी हों, आस्ट्रेलिया में अबोरिजिन्स से लेकर बेलिज़ में अमेरिन्डियन्स तक, बांगलादेश में जुम्मों से लेकर कनाड़ा में इन्नू तक, भारत में आदिवासियों से लेकर मलेशिया में ओरांग अस्ली तक और दक्षिण अफ्रीका में बुशमैन से लेकर युगांडा में इक तक, सभी इन्डिजिनॅस लोगों को भेदभाव, असहिष्णुता और द्वेष का सामना करना पड़ता है। उन्हें अपना अस्तित्व और पहचान बनाए रखने के लिए मजबूरन संघर्ष करना पड़ रहा है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

दुनिया भर में जनजातीय लोगों को गरीबी, अस्वस्थता, शिक्षा के अभाव, आवास की कमी, प्राकृतिक संसाधनों पर अपर्याप्त नियंत्रण, राजनीति में निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व के अभाव और जीविका के अनेक पहलुओं के लिए सरकारी संस्थानों पर भारी निर्भरता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आस्ट्रेलिया में जनजातीय लोगों में अन्य लोगों के मुकाबले शिशु–मृत्युदर 2 से 4 गुणा और वयस्क मृत्युदर 3 से 4 गुणा अधिक है। अनेक देशों में इन लोगों को सर्वाधिक निचले पदों पर रखा जाता है जहां तरक्की की संभावनाएं नहीं होती, या अधिक सम्मानित और अधिक वेतन वाले पद उन्हें नहीं सौंपे जाते। भारत में बंधुआ श्रम उन्मूलन अधिनियम, 1976 के बावजूद बड़ी संख्या में आदिवासियों/जनजातीय समुदायों के लोग बंधुआ मज़दूरी के लिए अभिशप्त हैं। उदाहरण के तौर पर, आस्ट्रेलिया में अबोरिजिनॅस में 23 प्रतिशत बेरोज़गारी है, जबकि बेरोज़गारी की राष्ट्रीय औसत 7 प्रतिशत है।[52]

सारणी 4 गरीबी का तुलनात्मक स्तर : आदिवासी और अन्य ग्रामीण क्षेत्र

(प्रतिमाह रुपये 225 से कम में गुज़र–बसर करने वाले व्यक्ति)[53]

राज्य	आदिवासी	अन्य *	राज्य	आदिवासी	अन्य *
आन्ध्रप्रदेश	20.3%	3.6%	मध्यप्रदेश + छत्तीसगढ़	24%	4.9%
असम	4%	6.8%	महाराष्ट्र	19.2%	4.1%
बिहार+ झारखंड	22%	6.5%	उड़ीसा	34%	5.2%
गुज़रात	8.7%	1.2%	राजस्थान	2.9%	0.4%
कर्नाटक	14.3%	4.2%	तमिलनाडु	19.2%	2.9%
केरल	12%	0.7%	उत्तरप्रदेश + उत्तरांचल	3.4%	3.7%
			पश्चिम बंगाल	10%	8.6%

* इस श्रेणी के अर्न्तगत अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्ग शामिल नहीं हैं, लेकिन ऊंची जातियाँ, मुसलमान, ईसाई, सिख, और अन्य धार्मिक समूह शामिल हैं।

विश्व के अधिकतर आदिवासी लोग भारत में बसे हुए हैं (8 करोड से अधिक)। भारत इन्डिजिनॅस पीपल्स की धारणा को मान्यता नहीं देता क्योंकि जनजातीय समूह देश के भीतर ही हैं। किन्तु, संविधान में उनकी ऐतिहासिक उपेक्षा को मान्यता दी गई है और उनकी भूमि, संस्कृति और भाषा की सुरक्षा करने और उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के प्रावधान किए गए हैं। इसके अलावा, उनके अधिकारों और उन पर अमल; विकास योजनााओं, वित्तीय आवंटनों, शिक्षा और रोज़गार की रचनात्मक कार्यनीति तथा उनकी भाषा के विकास और संस्कृति की सुरक्षा पर निगाह रखने के लिए निगरानी तंत्र भी कायम किया गया है। इस सबके बावजूद जनजातीय समूह समाज के सबसे पिछड़े तबकों में शामिल हैं (सारणी–4 और 5 देखें)। कल्याण योजनाओं पर अमल में अत्याधिक गिरावट आई है और जनजातीय लोगों के लाभ अक्सर बीच में ही हड़प लिए जाते हैं। खरीदे गए नेता, कमज़ोर राजनीतिक इच्छाशक्ति, अज्ञानता और भ्रष्टाचार, गरीबी और अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुटता के अभाव के कारण कानूनी और संवैधानिक ढांचा विफल हो जाता है।

शिक्षा में मौजूद असमानता से पता चलता है कि जनजातीय लोगों को कम अवसर उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, भारत में 1991 के आंकड़ों के अनुसार 23.03 प्रतिशत जनजातीय/आदिवासी साक्षर थे, जो राष्ट्रीय साक्षरता औसत – 52.21% – से बहुत कम है। आदिवासी महिलाओं में तो साक्षरता और भी कम, मात्र 14.5% ही है, जो महिलाओं की राष्ट्रीय साक्षरता औसत (39.29 प्रतिशत) का करीब एक–तिहाई है। आधे से भी कम (46%) आदिवासी बस्तियों में प्राथमिक विद्यालय है। अधिकतर राष्ट्रीय शैक्षणिक कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों से जनजातीय लोगों की सांस्कृतिक पहचान के लिए खतरा

सारणी 5

भारत में सामाजिक असमानता का प्रभाव[54]

	अनुसूचित जनजातियां	भारत(समग्र)
शिशु–मृत्युदर (प्रति 1000)	84.2	70
बाल–मृत्युदर (प्रति 1000)	126.6	94.9
कम वज़न के बच्चे	55%	47%

cyan black

प्रगति– एक नमूना

- जनजातीय विकास कार्यक्रमों के पांच दशक पूरे होने के बाद भी मध्यप्रदेश और राजस्थान में सहरिया जनजाति के 2 लाख के समुदाय में 1% से भी कम लोग साक्षर हैं।
- झारखंड और बिहार तथा उड़ीसा के निकटवर्ती जिलों में 92% आदिवासी आधिकारिक तौर पर गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।
- उत्तरपूर्व भारत में विभिन्न जातीय समूहों के 1.5 लाख लोगों को सरकार और उग्रवादी संगठनों के बीच संघर्ष के कारण अपने घरों से विस्थापित होने और शरणार्थियों के रूप में रहने के लिए मजबूर होना पड़ा है।
- भारत सरकार ने एक करोड़ से अधिक आदिवासियों को वनभूमि पर अवैध 'कब्ज़ाधारी' करार कर उन्हें उनके परंपरागत आवास से हटाने की योजना बना रही है।
- श्रीलंका में वन्नियाला –ऐत्तो (वेड्डा), जिन्हें मदुरा ओया नेशनल पार्क बनाने के लिए उनके परंपरागत आवास से सुरक्षित स्थानों पर बसाया गया था, अब धीरे–धीरे अपनी सांस्कृतिक पहचान खो रहे हैं।
- गयाना में अमेरइंडियन्स को अपनी परंपरागत भूमि के बीच बनायी जा रही सड़क के निर्माण को रुकवाने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है।
- बेलिज़ में माया जनजाति के लोग लक्कड़ कम्पनियों की लूटमार से बरसाती वनों को बचाने और अपने भू–अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
- बोत्स्वाना में बसर्वा/बुशमैन और बाक्गालागादी लोगों को संरक्षण, पर्यटन और हीरों के खनन के लिए सैंट्रल कालाहारी गेम रिजर्व से बेदखल किया गया और अब उन्हें भेदभाव, तकलीफों और यातनाओं का सामना करना पड़ रहा है। क्योंकि वे अपनी पुश्तैनी भूमि पर बने रहने के अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
- आस्ट्रेलिया के उत्तरी भू–भाग में मिरर लोग काकाडू नेशनल पार्क में जाबिलुका में यूरेनियम के खनन का कड़ा विरोध कर रहे हैं।

बढ़ता जा रहा हैं, क्योंकि उनमें उनकी विशेष जरूरतों का ध्यान नहीं रखा जाता। बोत्स्वाना में बासर्वा/बुशमैन बच्चों को उनकी भाषाओं में शिक्षा नहीं दी जाती। कनाड़ा में इन्नू बच्चों की शिक्षा में मुख्य धारा के इतिहास की जो व्याख्या शामिल है वह उनके अपने इतिहास से काफी अलग है। मानक स्कूली पाठ्यपुस्तकों में जनजातीय लोगों के सांस्कृतिक तौर–तरीकों के बारे में ज्ञान अथवा संवेदना का अभाव है। इन लोगों की भाषा और सांस्कृतिक इतिहास का ज्ञान रखने वाले शिक्षकों का अभाव होने से समस्या और भी जटिल हो जाती है।

समकालीनयुग में, वैश्वीकरण की प्रक्रिया से खतरा और भी बढ़ गया है, जिसमें वनों, खनिजों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तलाश के लिए बाज़ार की सीमाओं का विस्तार हो रहा है। जिस वातावरण में मूलनिवासी लोग और जनजातीय समूह रहते हैं, उसका ह्रास हो रहा है और वनों की कटाई, खनिजों के दोहन, बांधों के निर्माण, हथियार परीक्षण रेंजों और ऐसे ही अन्य कारणों से उसमें व्यवधान पैदा हो रहे हैं। हालांकि वे संसाधन–संपन्न क्षेत्रों में रह रहे हैं, लेकिन इन संसाधनों के दोहन से जनजातीय लोगों को कुछ भी प्राप्त नहीं होता–समूचा लाभ घरेलू अभिजात वर्ग और अंतर्राष्ट्रीय निगमों (trans-national corporations) के हिस्से में चला आता है। अनेक राष्ट्र और उनके अभिजात वर्ग,

उपेक्षा से बढ़ता जोखिम[55]

निराशा के वातावरण में हानिकारक बर्ताव बढ़ता है। आस्ट्रेलिया में लम्पट पुरूषों और वेश्याओं में यौन संचारित संक्रमणों (इन्फेक्शन्स) का खतरा जहां कुल मिलाकर कम हुआ है, वहीं जनजातीय आबादी में इस खतरे में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है,'' 100 में से 10 व्यक्तियों में यह संक्रमण पाया गया है। इसके बावजूद आस्ट्रेलिया में सरकार प्रत्येक अबोरिजिनल यानी जनजातीय व्यक्ति के स्वास्थ्य पर गैर जनजातीय व्यक्ति की तुलना में बहुत कम धन खर्च करती है। 1998 में जनजातीय लोगों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं पर लगभग 63 सेंट्स प्रति व्यक्ति खर्च किए गए, जबकि अन्य आस्ट्रेलियाई लोगों के लिए 1 डॉलर प्रति व्यक्ति खर्च किया गया और जनजातीय लोगों के लिए सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकार्य और कारगर सेवाओं पर 63 सेंट्स का मात्र एक हिस्सा खर्च किया गया।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विशेषकर दक्षिणपूर्वी एशिया में, इस बात पर आश्रित हैं कि सीमांत समुदायों को हाशिए में रखा जाये ताकि उनके संसाधनों का शोषण किया जा सके।[56] भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से बड़े बांध बनाने के लिए करीब 2 से 3 करोड़ लोगों को घर छोडने पर मजबूर किया गया। 1994 में सरकार ने स्वीकार किया था कि देश में 1 करोड़ आन्तरिक विस्थापित लोग हैं जिनका अभी तक पुर्नवास नहीं किया गया है। इन आन्तरिक विस्थापित लोगों में 40–50% आदिवासी शामिल हैं।[57] उनका पुनर्वास और पुनःस्थापना एक विभाजनकारी और विवादास्पद मुद्दा है। भारत में बने बांध हालांकि अधिकतर आदिवासी/जनजातीय इलाकों में हैं, लेकिन इन बांधों से राष्ट्रीय औसत की तुलना में आदिवासियों के खेतों का बहुत छोटा हिस्सा सिंचित हो पाता है। 5% से कम आदिवासियों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है।[58]

जनजातीय समूहों को ''प्रगति'' की असंगत कीमत चुकानी पड़ती है। उन्हें अपनी जमीन और अन्य सामान्य संपत्ति संसाधनों के स्वामित्व, अधिकार और उपयोग से वंचित होना पड़ता है। जमीन के साथ गहरा संबंध सभी जनजातीय लोगों की साझी विशेषता है। उदाहरण के लिए, भारत के अंडमान निकोबार द्वीप समूहों की लगभग 400 की आबादी वाली जारवा जनजाति का प्रस्तावित पुनर्वास, इस बात का संकेत है कि यह जनजाति शीघ्र समाप्त हो जायेगी।

मज़दूर

अतीत की तुलना में मज़दूरों की हालत में आम तौर पर निश्चय ही सुधार हुआ है। किन्तु, यह व्यावहारिक विडम्बना है कि अधिकारों के लिए सदियों के संघर्ष के बाद भी वैश्वीकृत दुनिया में श्रमिकों को आमदनी में असमानता, कार्यावधि की अनिश्चितता, कार्यस्थल में घटते सुरक्षा के स्तर और काम के घंटों के संदर्भ में सुरक्षा में कमी और आर्थिक व्यवस्थाओं की शोषित श्रमिकों, प्रवासियों, बाल मज़दूरों

कार्रवाई की दुविधा

ढाका और चिटगांग में निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों (Export Promotion Zone - ईपीज़ेड) में 253 से अधिक कारखानों में करीब 88,238 मज़दूर काम करते है, जिनमें अधिकतर महिलाएं हैं। बांगलादेश में एक निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्र प्राधिकरण उनके अधिकारों की देखरेख करता है। हालांकि निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों पर सामान्य कानून लागू होते हैं और कुछ कानूनों में उन्हें छूट भी मिलती है, लेकिन निगरानी के ऐसे कारगार प्राधिकरण के अभाव में जिस पर मज़दूर भरोसा करते हों ऐसा लगता है कि ये क्षेत्र सभी मज़दूर कानूनों से मुक्त हैं। ईपीजैड नियोक्ता असल में कर्मचारियों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी से मुक्त हैं। प्रबंध समिति कर्मचारियों के वर्गीकरण, काम के घंटे, अवकाश के समय, वेतन के भुगतान और प्रसूति लाभ के बारे में एकतरफा फैसले करती है। मज़दूर संघ बनाने या संचालित करने की अनुमति नहीं है।

बहुत पहले 1991 में अमरीका के सबसे बड़े मज़दूर महासंघ, (American Federation of Labour - Congress of Industrial Organizations - एएफएल–सीआईओ) ने बांगलादेश के जनरल सिस्टम ऑव प्रीफ्रेन्सेज (जीएसपी–टैरिफ कन्सेशन्स) को समाप्त करने की याचिका दायर की। उस पर आरोप था कि इसमें संघ बनाने की आजादी के हनन सहित श्रमिक अधिकारों का हनन किया गया है। बांगलादेश सरकार द्वारा निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में मज़दूरी संघ बनाने की अनुमति देने के आश्वासन के बाद अमेरिकी सरकार ने बांगलादेश के विशेषाधिकारों को जारी रखा। जून 1999 में एएफएल–सीआईओ ने बांगलादेश के खिलाफ इस आधार पर पुनः याचिका दायर की कि बांगलादेश सरकार ने अपने आश्वासन को मूर्त रूप नहीं दिया। तब से लेकर आज तक बांगलादेश ने जीएसपी विशेषाधिकार के हटाए जाने की धमकियों का बार–बार सामना किया है। दूसरी ओर, जापान के राजदूत ने स्पष्ट कर दिया कि '' जापान वर्तमान में निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में ट्रेड यूनियनों के पक्ष में नहीं है'' और उसने वहां ''सुचारू वातावरण'' होने पर संतोष प्रकट किया। अन्य निवेशकों का आग्रह है कि मज़दूर संघ की अनुमति देना बांगलादेश सरकार द्वारा उस अनुबंध का उल्लंघन होगा, जिस में इन क्षेत्रों में शान्तिपूर्ण माहौल बनाए रखने का वायदा किया था। दुविधा की इस स्थिति में आखिर बांगलादेश सरकार को यह आश्वासन देना पड़ा कि वह मज़दूरों और निवेशकों दोनों के हितों की रक्षा के लिए कुछ उपाय करेगी। सरकार की ओर से साफतौर से कहा गया कि '' सरकार का प्राथमिक उद्देश्य निवेश में बढ़ोतरी के जरिये रोज़गार के अवसर बढ़ाना है।'' इस बीच, अक्टूबर 1993 के बाद से संशोधित न की गयी वेतन दरों पर मज़दूरों की भर्ती जारी रही।

ये दरें 22 अमेरिकी डॉलर से अधिकतम 63 अमेरिकी डॉलर प्रतिमाह हैं। इन दरों के कारण अधिकतर मामलों में प्रतिदिन एक अमेरिकी डॉलर से भी कम वेतन मिल पाता हैं। अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार एक अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन की आय को गरीबी की रेखा से नीचे माना जाता है।[59]

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

और बंधुआ मज़दूरों पर निर्भरता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये सभी समस्याएं अटल बनी हुई हैं। अमीर देशों और ''हाई टैक'' (उच्च प्रौद्योगिकी) उद्योगों में भी रोज़गार संबंधों में आए बदलाव कई तरह से मज़दूरों के लिए हानिकारक सिद्ध हुए हैं। अल्पावधि के संविदा (कांट्रक्ट) होने, हर समय रोज़गार उपलब्ध न रहने, बेरोजगारी, अनिश्चितता और असुरक्षा बढ़ने की समस्याएं पैदा हुई हैं। यही वजह है कि श्रमिक अपने अधिकारों के बारे में आग्रह करने के इच्छुक नहीं रहे हैं। आधुनिक रोज़गार का ढांचा मज़दूर संगठनों को हतोत्साहित करता है, जबकि अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में बहुत गरीब और सबसे कमज़ोर श्रमिकों को संगठित होने में अतिरिक्त रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है।

अनौपचारिक क्षेत्र में पुरूषों के मुकाबले महिलाएं अधिक संख्या में पाई जाती हैं। गाँव में गरीब परिवारों की महिलाएं हर रोज़ 12–16 घंटे काम करती हैं।[60] दक्षिण एशिया में महिला श्रमिकों के एक बड़े हिस्से को वास्तव में बेगार करनी पड़ रही है या कठिन श्रम के बावजूद उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक नहीं मिलता। महिलाओं के काम को घरेलू कार्य समझ कर उसके लिए पारिश्रमिक न देने की सांस्कृतिक प्रवृत्ति के चलते बांगलादेश में तीन–चौथाई महिला मजदूरों को और भारत में 50% महिला श्रमिकों को बेगार करने के लिए विवश होना पड़ता है।[61] भारतीय राज्यों में हरित क्रांति से खुशहाल हुए हरियाणा में, सर्वाधिक बेगार (85.99%) महिला मज़दूर हैं। दक्षिण एशिया में साक्षरता और कौशल प्राप्त करने के स्तर में धीमी किन्तु स्थिर गति से प्रगति हुई है, जिससे अधिक संख्या में पुरुष श्रमिक खेती की बजाय विनिर्माण, व्यापार और सेवाओं जैसे अधिक आमदनी वाले क्षेत्रों में जाने लगे हैं। इससे अधिकाधिक अकुशल और अर्ध–कुशल महिलाएं, जिनके पास मोल–भाव करने की सामर्थ्य नहीं है, खेती कार्यों में लगायी जा रही हैं, वहाँ उन्हें और कम दिहाड़ी पर काम करने पर मजबूर होना पड़ता है। पाकिस्तान में आधे से ज़्यादा महिला मज़दूरों को 1500/–रुपये से भी कम वेतन दिया जाता है, जबकि दो–तिहाई पुरुष श्रमिक 1500–4000 रुपये प्रतिमाह के उच्चतर आय समूह में आते हैं। शहरी भारत में भी ऐसी ही प्रवृत्ति देखने को मिलती है, जहाँ 27.5% महिलाएं कैजुअल या अनियमित मज़दूर बन कर काम करती हैं, जबकि पुरुषों में मात्र 16% मज़दूर इस श्रेणी में आते हैं।[62] भारत ने पुरुष और महिला श्रमिकों के बीच दिहाड़ी और रोज़गार की शर्तों में भेदभाव समाप्त करने के लिए 1976 में *समान पारिश्रमिक अधिनियम* (*Equal Remuneration Act*) पारित किया था। उसके बाद एक चौथाई सदी बीत जाने पर भी महिला श्रमिकों को एक ही कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में औसतन (राष्ट्रीय स्तर पर) 35–45% कम दिहाड़ी मिलती है (सारणी–5 देखें)। श्रीलंका में महिलाओं की स्थिति बेहतर कही जा सकती है, जहाँ 50% से अधिक महिला श्रमिक विनिर्माण, व्यापार और सेवा–क्षेत्र जैसे अधिक आमदनी वाले व्यवसायों में लगी हैं।[63]

राष्ट्रमंडल के गरीब देशों में मज़दूरों के द्वारा अपनी हितरक्षा के लिए संगठित होने की प्रक्रिया हमेशा कमज़ोर रही है। भारत में कुल श्रमिकों के केवल 9 प्रतिशत और मलावी तथा लेसोथो में संगठित क्षेत्र के 14 प्रतिशत श्रमिकों द्वारा ही संघ बनाए गए हैं। किन्तु हाल में सभी देशों में मज़दूर संगठनों के गठन में कमी आयी है। असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में बड़ी संख्या में मज़दूर किसी संघ या यूनियन से बाहर रहते हैं और उन्हें श्रम कानूनों के तहत कोई संरक्षण प्राप्त नहीं होता।

सारणी 5 भारत में मज़दूरी में लिंग भेद[64]

कार्य का स्वरूप	वेतन–राष्ट्रीय औसत	
	पुरुष	महिला
खेती कार्य	23.40 रुपये	16.40 रुपये
गैर–कृषि कार्य	30.50 रुपये	18.70 रुपये

राष्ट्रमंडल के श्रमिकों के लिए भविष्य भी शुभसूचक नहीं नज़र आता। उन्हें अपनी आकांक्षाओं को कतरना पड़ेगा और खर्च नियंत्रित करना होगा। काम कम और उसे करने वाले हाथ अधिक होने के कारण अधिकारों को नज़रअंदाज़ किया जाएगा और पूरी आबादी के शोषण की आशंकाएं बढ़ जाएंगी। विकासशील देशों में 11 करोड़ बेरोज़गार श्रमिक पहले से मौजूद हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आंकड़ों के अनुसार ''इसके अतिरिक्त, 50 करोड़ श्रमिक ऐसे हैं जो अपने परिवार को गरीबी की रेखा से ऊपर रखने के लिए पर्याप्त, 1 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन, अर्जित करने में भी नाकामयाब हैं। ऐसे लगभग सभी श्रमिक विकासशील देशों में ही हैं। और जो श्रमिक फिलहाल गरीब नहीं हैं, उनमें से अनेकों को नौकरी और आमदनी की बुनियादी सुरक्षा का अभाव है। इस बात के पुख्ता संकेत हैं कि विश्व के अनेक भागों में इस श्रेणी के मज़दूरों की संख्या बढ़ती जा रही

है। ''अगले 10 वर्ष में काम की तलाश करने वाले नए लोगों का दो–तिहाई हिस्सा एशिया में होगा, किन्तु ''अफ्रीका में उनकी संख़्या अनुमान से कम होगी क्योंकि एच आई वी/एड्स महामारी का अर्थव्यवस्था और श्रम बाज़ार पर घातक असर पड़ रहा है।'' सभी स्थानों पर युवा श्रमिकों में बेरोजगारी की दर औसत से लगभग दुगनी हो गई है। इस प्रवृत्ति का सामजिक स्थिरता पर असर पड़ेगा।

गरीब देश जैसे बांगलादेश, लेसोथो और अन्य जगहों में बढ़ती हुई हताशा की स्थिति अधिकारों को कमज़ोर बना देती है। निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में यह बात खासतौर पर लागू होती है, जहां विश्वभर में 2.7 करोड़ लोग कार्यरत हैं। इनमें 90 प्रतिशत महिलाएं हैं। वास्तव में सरकारों ने इन क्षेत्रों में विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए मज़दूरों के हकों के संरक्षण –उपायों को लागू करना बंद कर दिया है। ऐसे क्षेत्रों में कार्यरत मज़दूर परिभाषा की दृष्टि से सबसे गरीब की श्रेणी में नहीं आते, लेकिन वे देश के भीतर गरीबी के सामान्य स्तर और अधिकारों के संरक्षण के अभाव के सूचक हैं। भारत में 4 निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में 1 लाख श्रमिकों में अधिकतर महिलाएं हैं। ओवर टाइम (समयोपरि) कार्य अनिवार्य है, लेकिन इसके लिए उन्हें अतिरिक्त वेतन अदा नहीं किया जाता। महिलाओं को रात्रि–पारियों में काम करना पड़ता है, किन्तु नियोक्ताओं द्वारा उनके निवास तक समुचित वाहन की व्यवस्था नहीं की जाती। उन्हें प्रसूति अवकाश नहीं दिया जाता। यहाँ तक कि शौचालयों के इस्तेमाल को भी टोकन जारी करके नियंत्रित किया जाता है। सिद्धान्त रूप में निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में श्रम कानून लागू होते हैं, किन्तु व्यवहार में उनका उल्लंघन किया जाता है। संघ बनाने की गतिविधियों को हतोत्साहित किया जाता है और संघ बनाने में सक्रिय पाए जाने वाले मज़दूरों को अक्सर नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है।[65]

प्रवासी मज़दूरों के वर्ग को भी श्रम कानूनों का कारगर संरक्षण प्राप्त नहीं होता। उनकी भर्ती अधिकतर अकुशल, कम वेतन वाले और अरूचिकर कार्यों के लिए की जाती है। उनका काम के लिए दूसरी जगह आना उनके अपने समाज में गरीबी के होने का सूचक है। इसलिए, वे मज़बूरी में कम वेतन पर काम करनें को तैयार हो जाते हैं। अपने समाज की तुलना में उन्हें यह वेतन ज़्यादा लगता है, लेकिन होता कम है। उनका प्रवासी दर्ज़ा, भले ही 'वैध' हो, उन्हें खास तरह के कामों से ही जोड़कर रखता है और इस तरह उनकी मोल–तोल करने की सामर्थ्य कम हो जाती है। बल्कि व्यवस्था से अनजान और संभवतः स्थानीय भाषा की जानकारी न होने के कारण, उनकी स्थिति और भी खराब हो जाती है। उदाहरण के लिए, भारत में आंध्रप्रदेश के महबूबनगर में ज़्यादातर काम करने वाले श्रमिक बिहार और उड़ीसा से आते हैं जबकि अधिकतर स्थानीय सक्षम पुरुष और महिलाएं काम की तलाश में दूर–दराज स्थित मुंबई शहर के लिए प्रवास करते हैं। सभी विकास परियोजनाओं से सम्बद्ध स्थानीय ठेकेदार राज्य से बाहर के मज़दूरों को वरीयता देते हैं क्योंकि उनके संगठित होने की आशंका नहीं होती, वे स्थानीय भाषा से अनभिज्ञ होते हैं और कम मज़दूरी पर काम करने के लिए राज़ी हो जाते हैं।[66]

अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठन समझौतों का समर्थन करने वाले देशों में उनके अनुपालन की स्थिति का मूल्यांकन करता है। एक अध्ययन से पता चलता है कि शिकायत के प्रति अनुपालन और जवाबदेही के मामले में सबसे खराब रिकार्ड वाले 37 देशों में राष्ट्रमंडल के निम्नांकित देश भी शामिल (उल्लंघन के आरोही क्रम में) थे : घाना, पाकिस्तान, बांगलादेश, सिएरा लियोन, ब्रिटेन, मलेशिया, जमैका/सिंगापुर/ तंज़ानिया (तिरछी रेखा से पृथक किए गए राष्ट्रों का स्तर समान है), पाकिस्तान और तंज़ानिया, जो सर्वाधिक बार दोषी पाऐ गए हैं।[67] भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विश्व समुदाय के लिए बुनियादी श्रम मानक निर्धारित करने वाले आठ मूलभूत समझौतों में से चार की पुष्टि नहीं की है (सारणी–6 देखें)।

अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में ''सामाजिक शर्त'' शामिल किए जाने के मुद्दे पर विश्व व्यापार और विकास संबंधी विचार–विमर्श में काफी जोर दिया गया है। इस तरह की धारा या शर्त का लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में श्रम संबंधी न्यूनतम मानदंड सुनिश्चित करना है। किन्तु, व्यापार वार्ताओं में इस विषय को शामिल करने और इसे निवेश से जोड़ने का ज़ोरदार विरोध हुआ है। मलेशिया सहित अनेक विकासशील राष्ट्रमंडल देशों ने इस धारा का कड़ा विरोध किया है। कुछ राष्ट्र इसका विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि इसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सौदेबाज़ी की अतिरिक्त शर्तों का आधार बनने की संभावना है; अन्य राष्ट्रों के विरोध की वजह यह है कि इसका समर्थन करने का अर्थ है विश्व व्यापार संस्था के रूप में मूर्तिमान 'वैश्वीकरण द्वारा विकास' सिद्धांत को वैधता देना। कुछ राष्ट्रों की दलील हैं कि 'सामाजिक शर्तों' का लक्ष्य भले ही वैश्वीकरण के प्रतिकूल प्रभाव को कम करना हो, लेकिन उन्हें लागू करना बड़ा कठिन होगा। यह कहा जा सकता है कि अनेक राष्ट्रमंडल देश चूंकि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के समझौतों का अनुसमर्थन कर चुके हैं, इसलिए वे सामाजिक मानकों के प्रति पहले से वचनबद्ध हैं और ये मानक सेवारत गरीबों के कष्ट कम करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

सारणी 6 आई एल ओ के मूलभूत समझौते –दक्षिण एशिया में पुष्टि की स्थिति[68]

समझौता	बांगलादेश	भारत	पाकिस्तान	श्रीलंका
# 29 जबरन मज़दूरी समझौता (1930)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 87 संघ बनाने की स्वतंत्रता और संगठित होने के अधिकार की सुरक्षा का समझौता (1948)	पुष्टीकृत	–	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 98 संगठित होने और सामूहिक मोल–तोल करने के अधिकार का समझौता (1949)	पुष्टीकृत	–	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 100 समान पारिश्रमिक समझौता (1951)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 105 बेगार उन्मूलन समझौता (1957)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 111 भेदभाव (रोज़गार एवं व्यवसाय समझौता (1958)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 138 न्यूनतम आयु समझौता, (1973)	–	–	–	पुष्टीकृत
# 182 बाल मज़दूरी के सबसे बुरे रूपों को समाप्त करने के लिए निषेध एवं तत्काल कार्रवाई करने संबंधी समझौता (1999)	पुष्टीकृत	–	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत

किन्तु ग्राहक–प्रधान बाज़ार में प्रतियोगी बनने की उतावली में अनेक राष्ट्रमंडल देश मज़दूरों के संगठित होने के अधिकारों को संकुचित कर रहे हैं। स्वाज़िलैंड और कैमरून इसके उदाहरण हैं। राष्ट्रमंडल लोकतंत्र के प्रति संकल्पबद्ध है और लोकतंत्र संगठन खड़ा करने के अधिकार की रक्षा करता है, न कि उसे समाप्त करता है, पर ऐसा कई सदस्य देशों में हो रहा है। भारत जैसे देश श्रम कानूनों में संशोधन कर रहे हैं ताकि अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के नाम पर श्रमिक अधिकारों को – जिन्हें कडे संघर्षों द्वारा अर्जित किया गया था – सीमित किया जा सके। सरकार *औद्योगिक विवाद अधिनियम* 1947 (*The Industrial Disputes Act*, 1947) में संशोधन करने पर गंभीरता से विचार कर रही है ताकि नियोक्ताओं को सरकार की अनुमति के बिना ही मजदूरों की छँटनी का अधिकार दे दिया जाये। अगर संसद ने इस संशोधन को मंजूरी दे दी तो संगठित क्षेत्र में 3.5 करोड़ से अधिक कर्मचारी अपने नियोक्ताओं की अनुकम्पा पर निर्भर हो जायेंगे, जो आर्थिक ज़रुरत की आड़ में कभी भी उनकी छँटनी कर सकेंगे या तालाबंदी लागू कर सकेंगे।[69] राष्ट्रमंडल को मज़दूरों के अधिकारों की निगरानी करने और इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि आर्थिक मजबूरियों के कारण मज़दूरों की समानता के अधिकार को बंधक न रखा जाये। उसे संगठित और असंगठित दोनों ही क्षेत्रों के मज़दूरों की सहायता के लिए आगे आना होगा।

वयोवृद्ध

नई सहस्राब्दि के आने वाले वर्षों में राष्ट्रमंडल देशों को समाज के एक अन्य कमज़ोर वर्ग यानि वृद्धों पर भी ध्यान देना होगा और उनकी खुशहाली तथा अधिकारों की रक्षा के प्रावधान करने होंगे। वर्तमान में, 60 वर्ष से अधिक आयु के 60 प्रतिशत लोग विकासशील देशों में रह रहे हैं। इस सदी के तीसरे दशक तक यह संख्या 70 प्रतिशत पर पहुंच जायेगी। कुछ विकासशील देशों में, जहां स्वास्थ्य देखभाल पर विशेष ध्यान दिया गया है, इस सदी के तीसरे दशक तक 65 वर्ष से अधिक आयु के लोगों का अनुपात कुछ विकसित देशों के वर्तमान अनुपात से अधिक हो जायेगा। वयोवृद्धों में महिलाओं की संख्या अधिक है।[70]

60 वर्ष या उससे अधिक आयु के 7.5 करोड़ से अधिक नागरिकों के होने के कारण भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है जहाँ सर्वाधिक वयोवृद्ध लोग रहते हैं। वर्ष 2025 तक दक्षिण एशिया की आबादी में 10% से अधिक संख्या 60 या उससे अधिक आयु के लोगों

cyan black

की होगी, और इन में श्रीलंका पहले स्थान पर होगा (सारणी 7 देखें)। भारत में वृद्ध और वयोवृद्ध, यानी 70 वर्ष और उससे अधिक आयु के लोगों की संख्या इसी अवधि के दौरान 6.3 करोड़ हो जाने की संभावना है। इस आयु–समूह को रूग्णता और अक्षमता का अधिक सामना करना पड़ेगा, जिससे स्वास्थ्य देखभाल और वृद्धों की देखभाल करने वाले संस्थानों पर अधिक निवेश करना होगा। भारत की आबादी का तीन–चौथाई हिस्सा चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, अतः वयोवृद्ध लोगों की संख्या गाँवों में अधिक है। ग्रामीण भारत में रहने वाली वयोवृद्ध महिलाओं में 90% से अधिक निरक्षर हैं।[71] इन वृद्ध महिलाओं में से तीन–चौथाई, अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने बच्चों, पोते–पोतियों अथवा वृद्धावस्था आश्रमों पर निर्भर हैं। 60% से अधिक वृद्ध महिलाओं के पास न तो स्वयं की संपत्ति है न ही स्वयं का भरण–पोषण करने के लिए वित्तीय परिसंपत्ति और वे अक्सर एक शोषक पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के रहमो–करम पर हैं।

सारणी 7 दक्षिण एशिया में वयोवृद्धता–मौजूदा स्थिति और भविष्य के लिए अनुमान[72]

देश	वर्ष 2000 में कुल जनसंख्या (करोड़ में)	2000 में 60+ आयु के लोग	2025 में 60+ आयु के लोग	2050 में 60+ आयु के लोग
बांगलादेश	13.74	4.9%	8.4%	16%
भारत	100.89	7.6%	12.5%	20.6%
पकिस्तान	14.12	5.8%	7.3%	12.4%
श्रीलंका	1.89	9.3%	18%	27.6%

दवाओं और उन्नत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली से आयु दीर्घ तो हुई है, लेकिन उनसे सामान्य बेहतर स्वास्थ्य और पोषण की गारंटी नहीं दी जा रही है। निःसंदेह, विकसित राष्ट्र बेहतर स्वास्थ्य देखभाल, पोषण स्तर, और सामाजिक सुरक्षाजाल के माध्यम से वृद्धों की देखरेख करने में सफल रहे हैं। वे अपनी वयोवृद्ध आबादी के लिए योजनाएं बनाने और उनके लिए आर्थिक उपाय विकसित करने में भी सफल रहे हैं ताकि भविष्य में भी अधिकारों की बेहतर रक्षा की जा सके। लेकिन यहां उनकी पेंशनों में कटौती हो रही है। जहां तक विकासशील देशों का सवाल है, उनके पास आर्थिक शक्ति नहीं है और न ही वे तात्कालिक चिंताओं से इतने मुक्त हैं कि वयोवृद्ध आबादी के लिए योजनाएं बना सकें, खासकर इसलिए कि उन्हें आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी समझा जाता है। वृद्धों की देखभाल अधिकतर समाज के निजी क्षेत्र और पारिवारिक संबंधों पर निर्भर है। बदलते माहौल के दबाव के चलते सामुदायिक और पारिवारिक सहायता का ताना–बाना टूटता जा रहा है। समाज के दिल में एक तरह के जातीय अल्पसंख्यक समूह की तरह वयोवृद्धों को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से दर–किनार कर दिया गया है, वे स्टिरिओटाइप हो गए हैं, अक्सर उन्हें कम करके आंका जाता है, और उनकी उपेक्षा की जाती है। वयोवृद्धों के साथ शारीरिक और मानसिक दुर्व्यवहार की समस्याएं अधिकाधिक सामने आने लगीं हैं। 'वृद्ध माता–पिताओं के परित्याग' पर उतना ध्यान नहीं जाता, जितना पत्नी पर मारपीट किए जाने या बच्चों के साथ दुर्व्यवहार की ओर जाता है। गरीब, कम आमदनी में या बिना किसी आय के स्रोत के वृद्धावस्था में प्रवेश करते हैं। जीवन भर बार–बार होने वाली बीमारियों, कुपोषण और रहने की निम्नस्तरीय स्थितियों से वे खोखले हो चुके होते हैं। महिलाओं के मामले में, बार–बार बच्चे पैदा करने और बच्चों से भी अधिक कुपोषण की शिकार रहने के कारण, वे शीघ्र वृद्धावस्था में प्रवेश करती हैं। भारत और तंज़ानिया, राष्ट्रमंडल के दो ऐसे देश हैं, जहां ऐसी स्थिति पाई गई है।[73]

फिर भी, वृद्ध परिवार की खुशहाली और आर्थिक स्थिति में योगदान करते हैं। जहां माता–पिता दोनों को परिवार का खर्च पूरा करने के लिए काम करना पड़ता है और वे बच्चों की देखभाल के लिए समय नहीं निकाल पाते, वहां दादा–दादी यह दायित्व निभाते हैं। इस योगदान की खास मिसालें अफ्रीका के एच आई वी–संक्रमित उप–सहारा क्षेत्र में मिलती हैं, जहां अनेक परिवारों में माता–पिता नहीं रहे हैं और दादा–दादी या नाना–नानी बच्चों की परवरिश के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इनमें दादी और नानी का खास योगदान देखने को मिलता है। वे बच्चों के लिए भरण–पोषण, वस्त्र और संभव हो तो शिक्षा की भी व्यवस्था कर रही हैं। मानव विकास और अन्य अनुसंधानों के सूचकाँकों में विश्व की आबादी के इस बड़े और बढ़ते हुए हिस्से की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। उन समुदायों में, जहां आबादी में वयोवृद्ध लोगों की बड़ी संख्या हो, भविष्य में गरीबी उन्मूलन की योजना बनाते समय उनकी स्थिति को ध्यान में रखकर कुछ ठोस उपाय करने होंगे।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विकलांग

अनुमान है कि विश्व की आबादी में कम से कम 10% (60 करोड़) लोग ऐसे हैं जो किसी न किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक अक्षमता से ग्रस्त हैं। यह स्थिति उनकी खुशहाली पर असर डालती है। इनमें से दो तिहाई लोग विकासशील देशों से हैं और करीब 40 करोड़ एशिया प्रशांत (Asia Pacific) में हैं।[74] मात्र 2% विकलांग बच्चों को शिक्षा और/या पुर्नवास सुविधाएं मिल पाती हैं। करीब 2 करोड़ भारतीय किसी न किसी प्रकार की अक्षमता से ग्रस्त हैं, चाहे वह सुनने, देखने, बोलने, चलने या मानसिक क्षमताओं से सम्बद्ध हो। इनमें से ज़्यादातर लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं, जिनकी पहुंच चिकित्सा–उपचार और पुर्नवास सुविधाओं तक नहीं है। परंतु गैर–सरकारी आंकडों के मुताबिक यह संख्या 7–8 करोड़ से अधिक है। इन में से अधिकतर लोग गाँवों में बसते हैं जहाँ इन्हें चिकित्सा और पुनर्वास की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पातीं। मोतियाबिंद और वृद्धावस्था, दृष्टि विकलांगता के मुख्य कारण हैं, जबकि चलने–फिरने संबंधी विकलांगता का मुख्य कारण पोलियो है, जो बच्चों को प्रभावित करता है।[75] बांगलादेश में विकलांगता के बारे में अधिकारियों के अनुमान सही नहीं हैं क्योंकि वहाँ आबादी का 1.6 प्रतिशत लोग अक्षम बताए गए हैं। किन्तु, स्वयंसेवी संगठनों का अनुमान है कि विकलांगों की वास्तविक संख्या इससे 7–8 गुना अधिक है।[76] पाकिस्तान में विकलांग व्यक्ति सर्वाधिक उपेक्षित नागरिक हैं–उनसे नज़रें फेर ली जाती हैं, उनकी बात को अनसुना कर दिया जाता है। प्रामाणिक सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अनुमान है कि आबादी में 2–3% लोग किसी न किसी तरह की अक्षमता से पीडित हैं।[77]

विकलांग महिलाओं के साथ ज़्यादा भेदभाव होता है और उन्हें सामाजिक लांछन का सामना करना पड़ता है। व्यावसायिक प्रशिक्षण और मार्गदर्शन कार्यक्रमों के लाभार्थियों में उनकी संख्या एक–तिहाई से भी कम है।[78] ज़्यादातर गरीब परिवार की महिलाएं तनाव से सम्बद्ध मानसिक असंतुलन का शिकार बनती हैं जिससे उनकी और भी उपेक्षा एवं शोषण होता है।[79] इस तथ्य को देखते हुए कि गरीब परिवारों में महिलाओं के स्वास्थ्य पर पर्याप्त धन खर्च नहीं किया जाता, मानसिक–स्वास्थ्य देखभाल और परामर्श सुविधाओं तक उनकी पहुँच की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

विकलांगता से भी अधिक रूकावटें शिक्षा, रोज़गार, परिवहन, स्वास्थ्य और सामाजिक संरचना की दृष्टि से पैदा होती हैं, जिनके अभाव में विकलांग व्यक्ति पूर्ण रूप से अपनी क्षमताओं का इस्तेमाल नहीं कर पाता। विकलांग व्यक्ति के साथ भेदभाव किए जाने की आशंका अधिक रहती है क्योंकि समुदाय किसी भी 'भिन्नता' (difference) को स्वीकार करने को तैयार नहीं होता और विकलांग व्यक्तियों को अधिकार सम्पन्न नहीं मानता है। विकलांग व्यक्तियों को न केवल हरेक व्यक्ति की तरह अपनी प्रतिभा के विकास के अवसरों की आवश्यकता होती है, बल्कि उनकी विशेष जरूरतें पूरी करने के लिए अतिरिक्त संसाधन और सुविधाएं भी जरूरी होती हैं। विकलांगता और गरीबी के बीच सीधा और सुदृढ़ संबंध है।[80] एक ओर शिक्षा तथा रोज़गार में भेदभाव से विकलांग व्यक्ति के निर्धन होने की आशंका बढ़ जाती है, वहीं दूसरी ओर, उपचार एवं पुनर्वास संसाधनों के अभाव के कारण गरीबों को जन्म संबंधी न्यूनता, कुपोषण या जीवनकाल में होने वाली क्षति और बीमारियों के कारण विकलांगता का खतरा बढ़ जाता है।[81] चिकित्सा प्रौद्योगिकी और उपचार पद्धतियों में हुई तीव्र प्रगति को देखते हुए विकलांगों के लिए उन्नत स्वास्थ्य देखभाल और सहायता प्रणालियों की व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु विकासशील देशों में अक्सर यह पाया जाता है कि विकलांगों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता और वहाँ वित्तीय संसाधनों के आवंटन तथा विकलांग व्यक्तियों की विशेष ज़रूरतों को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित और विशेषज्ञ कर्मियों का अभाव होता है।

अधिकतर दक्षिण एशियाई देश विकलांगों को नौकरियों में 1 से 3 प्रतिशत तक आरक्षण देते हैं। श्रीलंका में 3% नौकरियाँ विकलांगों के लिए निर्धारित हैं, जो ज़्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रित हैं। निगरानी रखने वाले तंत्र के अभाव, निजी क्षेत्र में नियोक्ताओं को प्रोत्साहित न किए जाने तथा परिवहन और पहुंच की समस्याओं से योजना के मार्ग में रूकावट आती है।[82] भारत सरकार ने 1996 में एक कानून पारित करके शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोज़गार देने के तौर–तरीकों से सार्वजनिक परिवहन में यात्रा की सुविधाओं तक विकलांग व्यक्तियों की पहुंच के अधिकारों को मान्यता प्रदान की। इसमें विकलांगता के लिए व्यवधान मुक्त और रहन–सहन का समन्वित वातावरण निर्मित करने का भी प्रावधान है।[83] समुचित संसाधनों के आवंटन के अभाव और कार्यान्वयन तंत्र न होने के कारण यह कानून कारगर साबित नहीं हुआ है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

गरीबी का स्वरूप

''गरीबी गर्मी के एहसास की तरह है : आप इसे देख नहीं सकते, सिर्फ महसूस कर सकते हैं। अतः गरीबी को जानने के लिए गरीबी से गुज़रना पड़ेगा।''[84]

गरीबी–संबंधी आंकड़ों से उपेक्षित लोगों की विशाल आबादी का संकेत भर मिलता है। उनके जीवन की दशा का पता नहीं चलता। उनकी स्थिति इतनी दिल दहला देने वाली होती है कि अभाव और भय के माहौल में बीते जीवन के व्यक्तिगत कष्टों को व्यक्त नहीं किया जा सकता।

गरीबी के स्वरूप का परीक्षण करने से इस तथ्य का पता चलता है कि आखिर गरीबी किस तरह मानवाधिकारों को हासिल करने या उनका आनन्द उठा पाने में बाधक है। नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, या संस्कृतिक, किसी भी तरह के अधिकारों का उपभोग कर पाना, खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, भौतिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, संपत्ति, न्याय तक पहुंच जैसे संसाधनों के अभाव में तथा समुचित प्रक्रिया के बिना संभव नहीं है। और ये सभी संसाधन गरीबी के रहते हासिल नहीं किए जा सकते।

मानवीय गरिमा मानवाधिकारों की अवधारणा का केंन्द्र बिन्दु है और हमें मानव के व्यक्तित्व के ऐसे अनेक आयामों के प्रति सचेत करती है जो गरीबी की वजह से नकार दिए गए हैं। गरीबी का अर्थ है– भौतिक और आर्थिक असुरक्षा, भविष्य का भय और कमजोरी का सतत अहसास। यह उन क्षमताओं और गुणों का अभाव है जो बेहतर जीवन जीने में मददगार होते हैं। बेहतर जीवन से अभिप्राय उन स्थितियों तक पहुंच से है जो एक तर्कसंगत भौतिक अस्तित्व को सभंव बनाती हैं और व्यक्तियों तथा समुदायों को उनकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षमताओं को हासिल करने में मदद करती है। गरीबी का संबंध अवसरों–यानी चिंतन, कलात्मक रचनाशीलता, नैतिकता की व्याख्या और विकास तथा समुदाय के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में भागीदारी और योगदान के अवसरों के अभाव के साथ है। इस आयाम को अर्मत्य सेन की मानव 'क्षमताओं' की अवधारणा में व्यक्त किया गया है। इनकी परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा है कि क्षमताएं मूल्यवान 'फंक्शनिंग्स' (कार्य व्यापारों) अथवा 'स्टेट्स ऑव वैल बीइंग ' (खुशहाली की स्थिति)[85] को प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती हैं। इस खुशहाली के कई आयाम हैं, भौतिक – जैसे भोजन और आवास – किन्तु अधिक जटिल सामाजिक उपलब्धियां भी इसका हिस्सा हैं, जैसे समुदाय के जीवन में हिस्सा लेना और बिना शर्म और संकोच के लोगों के बीच जाना।

गरीबी क्षमता के साथ–साथ आत्मविश्वास को भी छीन लेती है और राष्ट्रों, समुदायों तथा परिवारों के साथ पीढ़ी–दर–पीढ़ी चिपकी चली जाती है और उन्हें जीवन–निर्वाह स्तर से आगे नहीं बढ़ने देती, जबकि अन्य लोग सब तरह से उनसे आगे निकल जाते हैं। गरीबी से जो व्यापक परनिर्भरता उत्पन्न होती है, वह सब कुछ स्वीकार कर लेने और दासता की आदतों को पैदा करती है, जिससे सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में श्रेणीबद्धता मजबूत होती है। आवासहीनता, खराब स्वास्थ्य और शिक्षा के अभाव से लोगों की क्षमता का विकास रुकता है। वे विकास में उचित भागीदारी के लाभ से वंचित हो जाते हैं और इसके कारण राष्ट्र के वे मानव संसाधन व्यर्थ हो जाते हैं जिनकी बेहद ज़रुरत है।

गरीबी उस 'स्वायत्त व्यक्ति' की अवधारणा का उपहास करती है जो मानवाधिकारों की प्रबल धारणा के केन्द्र में है। गरीबी की हालत में चिर स्थापित पारिवारिक मानदंडों का निर्वाह संभव नहीं है। दासता में अक्सर बच्चे तक बिक जाते हैं और युवा लड़के–लड़कियों को मजबूरन दूरदराज़ जगहों में जाना पड़ता है और अक्सर जोख़िमपूर्ण स्थितियों में रहना पड़ता है ताकि वे अपनी कमाई से अल्प राशि बचाकर घर भेज सकें। पुरुष परिवार के भरण–पोषण के प्रयास में घोर परिश्रम करके थक जाते हैं या अपने दायित्वों से मुँह मोड़ लेते हैं और छोटे–छोटे काम की तलाश में अन्यत्र चले जाते हैं, जिससे पत्नी और परिवार पर भरण–पोषण का अतिरिक्त दायित्व आन पड़ता है। श्रीलंका में जातीय संघर्ष के चलते अनेक औरतें विधवा हो गई हैं, जिससे उन्हें दुर्घटना के कारण तत्काल परिवार का दायित्व संभालना पड़ रहा है। हाल में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि ग्रामीण भारत में महिलाओं द्वारा संचालित परिवारों की संख्या पिछली सदी के अंतिम तीन दशकों में बढ़कर 20 से 35% पर पहुंच गयी है।[86] एक अन्य अध्ययन के अनुसार बांगलादेश में महिला–मुखिया वाले परिवार पुरुष–मुखिया वाले परिवारों की तुलना में बहुत निर्धन हैं।[87] भारत में बड़ी संख्या में महिला– मुखिया वाले

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

परिवारों को पोषण के निम्नस्तर, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा के अभाव की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस क्षेत्र में महिला कृषकों की मवेशी, ऋण, और आधुनिक प्राद्योगिकी जैसे संसाधनों तक पहुंच नहीं है। अगर उनकी पहुंच संसाधनों तक होती, तो निश्चय ही उन्हें जीवन स्तर ऊंचा उठाने में मदद मिलती।[88]

दक्षिण एशिया के अनेक गरीब देशों में सतत भुखमरी, बेरोजगारी, ऋण या बीमारी का बोझ सहन करने में अक्षम परिवारों में अक्सर मुखिया पहले सगे–संबंधियों की और फिर स्वयं की हत्या कर देते हैं। पाकिस्तान के बारे में ख़बर है कि वहाँ 2002 में गरीबी का बोझ बर्दाश्त न कर पाने के कारण, हर रोज़ कम से कम 7 व्यक्तियों ने आत्महत्या की।[89] भारत में कंगाल परिवारों–चाहे वे हरियाणा और पंजाब के छोटे किसान हों जो अपने खेतों में पानी भरा रहने की समस्या का सामना कर रहे थे; या आन्ध्रप्रदेश के रायल सीमाक्षेत्र में छोटे और मझौले किसान हों, जिन्हें अपनी कपास की फसल बचाने के लिए आधुनिक कीटनाशक और कृषि उपकरण इस्तेमाल करने के लिए भारी कर्ज़ लेना पड़ा, लेकिन इस के बावजूद अपनी फसल को उजडते पाया; अथवा तमिलनाडु के छोटे और मझौले किसान हों, जिन्हे सूखे के कारण अपनी फसलें गंवानी पड़ी या आन्ध्रप्रदेश में करीमनगर के ऋणग्रस्त बुनकर हों, जिन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र उदारीकरण के कारण हथकरघा उत्पादों की मांग में गिरावट से भारी नुकसान उठाना पड़ा –सभी में एक बात समान देखने को मिलती है कि अपने कष्ट निवारण के लिए उन्होंने आत्महत्या का रास्ता चुना। इस तरह के कई किस्से समाचार माध्यमों द्वारा प्रकाशित होते रहे हैं। इस तरह और अन्य रूपों में गरीबी अच्छे–भले और भरे–पूरे परिवार को तबाह कर देती है–– जबकि मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में कहा गया है कि समाज की स्वाभाविक और मूलभूत इकाई यानी परिवार की रक्षा का दायित्व समाज और राज्य को वहन करना चाहिए।[90]

फिर भी, गरीबी सिर्फ गरीबों की ही समस्या नहीं है। गरीबी का असर अमीरों पर भी पड़ता है। यह समाज को अलग–अलग हित–साधक समूहों में विभाजित करती है और इस तरह एक अन्य मानवाधिकार उद्देश्य को निष्फल हनन करती है–वह है मानव और समाज की एकता। आधुनिक युग में जहां एक ओर समृद्धि का जीवन सभी को प्रभावित करता है, वहीं गरीबी से सामाजिक सहमति और राजनीतिक स्थिरता के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न होता है। यह गरीब और अमीर दोनों के नैतिक ताने–बाने को समान रूप से तहस–नहस करती है। व्यापक गरीबी के दुष्परिणामों को राष्ट्रों की सीमाओं में बंद नहीं रखा जा सकता और महज़ प्रवास और शरण पर कड़े से कड़े प्रतिबंध लगाकर इनसे नहीं निबटा जा सकता। अक्सर गरीबों को अलग झोपड़पट्टियों में धकेल कर किए जाने वाला गरीबी का 'प्रबन्धन' और भी दमनकारी है, क्योंकि सरकारें इस तथ्य पर ध्यान नहीं देतीं कि व्यापक गरीबी से जिन बीमारियों और अन्य सामाजिक बुराइयों का जन्म होता है उन्हे अलग की गई तंग बस्तियों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। उनका असर अंततः सभी पर पड़ता है। मध्यवर्ग का सुरक्षा के प्रति अधिक से अधिक मोह, उसकी सामाजिक महापरिवर्तन की इस आशंका का सूचक है कि गरीबी और उपेक्षा की लहरों के ज्वार में समृद्ध वर्ग का सारा साजो–सामान बह सकता है। लोकतांत्रिक समुदायों को कुछ उपाय अवश्य ढूँढ़ना होगा, ताकि इस ज्वार को रोका जा सके। लेकिन, गरीबी की मात्रा, गहराई और प्रसार खतरे की घंटी बजा रहा है।

अध्याय –2

गरीबी के कारण

गरीबी कोई प्राकृतिक स्थिति नहीं है और न ही गरीबों ने स्वयं के लिए दुर्भाग्य चुना है। गरीबी के सताए लोग खुद की ग़लतियों और कमजोरियों के शिकार भी नहीं हैं। व्यक्तित्व या आचरण में कमी भी गरीबी का कारण नहीं है और न ही परिवार की विफलता और पालन–पोषण इसके लिए ज़िम्मेदार हैं। गरीबी के लिए अगर इस तरह के कारण बताए जाते हैं, तो यह वास्तव में गरीबी के असली कारणों को छिपाने, इसके अस्तित्व को उचित ठहराने और इसे दूर करने के दायित्व से मुंह मोड़ने की कोशिश है।

गरीबी अपने आप उत्पन्न नहीं होती। यह अंतर्राष्ट्रीय समाज, सरकारों और समुदायों की लापरवाही से पैदा होती है। बदतर होती जा रही गरीबी की स्थिति भेदभाव बरतने वाली और समाज के बड़े तबकों को विकास के लाभों से बाहर रखने की नीति का नतीजा है। इससे संसाधनों के असमान बंटवारे और इस असमानता को बरकरार रखने को बढ़ावा मिलता है और लोग विकास का लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। समकालीन युग में गरीबी न केवल बढ़ी है, बल्कि सघन हो गई है। इसका कारण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतियाँ हैं जिनको 'वैश्वीकरण' का नाम दिया जाता है, चाहे वह 'आर्थिक ढ़ाँचे का संयोजन करने (SAPs) के बारे में हो या मुक्त वैश्विक पूँजी के हित में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को गुलाम बना देने के बारे में हो। वैश्वीकरण की रचनात्मक संभावनाओं में–सूचनाओं के आदान–प्रदान में बढ़ोतरी, मानवाधिकारों का मुक्त शासन और गरीबों के उत्पादों के लिए बाजारों को खोलना शामिल है। लेकिन कुछ प्रभावशाली ताकतें राष्ट्रीय स्तर पर देश की प्राथमिकताओं पर अपने दबाव डाल सकती हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्यायपूर्ण व्यापार प्रणाली एवं एकाधिकारवादी संपदा व्यवस्था को लागू करवा सकती हैं। इसके कारण वैश्वीकरण की रचनात्मक संभावनाएँ निस्तेज हो जाती हैं।

समृद्ध समुदायों के बीच बढ़ती सामाजिक एकजुटता और अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक हितों का आपस में गुंथा होना उन स्थितियों के लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार है जो समाज के भीतर आर्थिक असमानता और वर्गभेद पैदा करती हैं। स्वार्थ पर आधारित इस

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

गठबंधन से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश के असंतुलित ढांचे का निर्माण होता है। नई प्रौद्योगिकी का असमान वितरण और संसाधनों का अनुचित आवंटन होता है और साथ ही रोज़गार की ऐसी पद्धतियां सामने आती हैं जो गरीबों के हितों के खिलाफ होती हैं। इन पूर्वाग्रहों को अक्सर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रणालियों में कानून का रूप दे दिया जाता है। यह षड्यंत्र प्रवृत्ति बहुसंख्य राष्ट्रमंडल जनताओं को सार्थक आर्थिक अवसरों तक पहुंचने से रोकती है।

सामुदायिक संसाधनों की लगातार और अनियंत्रित चोरी, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक तथा निजी धन के दुरुपयोग से भी गरीबी को बढ़ावा मिलता है। गरीबी के समानान्तर शक्तिशाली आर्थिक और राजनीतिक वर्ग कायम है जिसकी सामाजिक सुधार में कोई रुचि नहीं है। गरीबी बड़े पैमाने पर उन गैर–ज़िम्मेदार प्रणालियों से पैदा होती है जो लोगों पर शासन करती हैं और अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर उस विशिष्ट वर्ग द्वारा एकत्र की गई आर्थिक और सामाजिक सम्पत्ति की रक्षा करती हैं जो गरीबों को साधनहीन रखना चाहता है ताकि वे राजनीतिक प्रक्रिया में हिस्सा न ले सकें अथवा अपनी सहायता के लिए कानूनी प्रक्रिया को हरकत में न ला सकें। गरीबी का सबसे बड़ा नाता असमान सत्ता–संबंधों और कुछ शक्तिशाली लोगों की उस क्षमता से है जिससे वे गरीबों का उत्पीड़न, दमन और शोषण बेरोकटोक करते हैं।

वैश्वीकरण

''मैं एक व्यक्ति की पीठ पर उसका गला पकड़ कर सवार हूं और वह मुझे ढो रहा है और मैं स्वयं को और दूसरों को विश्वास दिला रहा हूं कि मुझे अफ़सोस है, कि मैं हर संभव तरीके से उसका भार कम करना चाहता हूं सिवाय उसकी पीठ से उतरने के ''

लियो टॉलस्टॉय

'वैश्वीकरण' शब्द का कोई सुस्पष्ट अर्थ नहीं है। किन्तु गरीबी उन्मूलन के वर्तमान संदर्भ में इसका अर्थ है–अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के संचालन में बाज़ार के सिद्धान्तों का बढ़ता प्रभाव, व्यापार और निवेश का सभी राष्ट्रों में प्रवेश, निजीकरण के माध्यम से अर्थव्यवस्थाओं का उदारीकरण, आयात और निर्यात पर राष्ट्रीय प्रतिबंध हटाना और वित्तीय बाजारों तथा पूंजी के प्रवाह को मुक्त करना। निःसंदेह, वैश्वीकरण से सांस्कृतिक और ज्ञान संबंधी आदान–प्रदान में बढ़ोतरी, सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के नेटवर्क का विस्तार, परस्पर–निर्भरता के अहसास में वृद्धि, मानवाधिकारों की अवधारणा और विस्तार, विश्वव्यापी समस्याओं से निबटने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और ऐसी ही अन्य उपलब्धियां हासिल हुई हैं। किन्तु ये गतिविधिया वैश्वीकरण के प्रतिकूल प्रभाव को कभी–कभार कम करने के बावजूद अन्ततः विश्व आर्थिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है और इन प्रक्रियाओं का ही उनमें प्रभुत्व रहता है। इन आर्थिक प्रक्रियाओं के बारे में कुछ भी अनिवार्य नहीं है। वे खास नीतिगत फैसलों का नतीजा हैं जो विश्व के उस विशिष्ट वर्ग द्वारा किए जाते हैं जो अनेक संगठनों और संस्थानों का पोषण करता है। ये संगठन और संस्थान इस नई आर्थिक व्यवस्था खासकर 'विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों की बढ़ती भूमिका और प्रभाव का आधार हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी की नवीनता और प्रबन्ध का विशेष योगदान है और इस नई प्रौद्योगिकी पर सर्वोच्च स्वामित्व और नियंत्रण अमीरों का है।

असमानता और गरीबी वैश्वीकरण से बहुत पहले से मौजूद हैं और गरीबी के कारणों को सिर्फ इसी के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। किन्तु यह अद्भुत घटना जितनी तेज़ी से घटी है; उसके संचालन के पीछे हित–साधन का जो बल है; पिछले 20 या अधिक वर्षों से अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं, राजनीति और समुदायों पर इसका जो व्यापक प्रभाव पड़ा है और आबादी का वह विस्तृत भाग

लाभ कमाने की लालसा

सच्चाई यह है कि वैश्वीकरण में मानव मूल्यों या कल्याण की बजाय लाभ कमाने की लालसा अधिक है। जैसा कि विलियम ग्रैडर ने कहा :[31]

''व्यापार की शर्तों का संबंध आमतौर पर वाणिज्यिक समझौतों से ही जोड़कर देखा जाता है, किन्तु वे नैतिक मूल्यों का अन्तर्निहित वक्तव्य भी होते हैं। वर्तमान संदर्भ में विश्व–व्यवस्था मानव जीवन से अधिक महत्व सम्पत्ति को दे रही है। जब चीन जैसा राष्ट्र पूंजी की चोरी करता है, कापीराइट, फिल्म या प्रौद्योगिकी की चोरी करता है, तो अन्य राष्ट्र उसे रोकने के लिए कार्रवाई करते हैं और दोषी राष्ट्र के व्यापार पर प्रतिबन्ध और दंड शुल्क लगाने की पेशकश करते हैं। किन्तु, जब मानव जीवन चोरी हो जाता है, तो दोषी राष्ट्र के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं होती, क्योंकि मुक्त बाज़ार के विवेक के अनुसार वैसा होना कोई अपराध नहीं है।''

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

जिस पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है; इनके कारण वैश्वीकरण का गरीबी के प्रसार के साथ अनिवार्य संबंध बन गया है और इससे करोड़ों उपेक्षित लोग गरीबी के गर्त में धंसते जा रहे हैं।

दक्षिण एशियाई देशों ने औपनिवेशिक शासन से अपने को मुक्त कराने के तुरन्त बाद आर्थिक विकास का ''आत्मनिर्भरता'' वाला मॉडल अपनाया। सरकार ने उत्पादन और वितरण, दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लोक कल्याण के नाम पर अफसरशाही ने अर्थव्यवस्था के बड़े हिस्से पर नियंत्रण कर लिया। निजी उपक्रमों को शुल्कों में बहुत अधिक संरक्षण दिया गया और अर्थव्यवस्था से विदेशी प्रतिस्पर्धियों को बाहर रखा गया। लेकिन 1980 के दशक के आखिर के और 1990 के प्रारंभिक वर्षों में भुगतान असंतुलन के संकट, विदेशी और घरेलू ऋणों के बढ़ते बोझ, ऋणों के लिए बढ़ती कर्ज़ की देनदारी, भारी वित्तीय घाटे, विदेशी मुद्रा की कमी और इनसे संबंधित समस्याओं के कारण भारत, पाकिस्तान और बांगलादेश जैसे देशों को, जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष/विश्व बैंक समूह के दबाव का पहले से ही सामना कर रहे थे, अपनी अर्थव्यवस्थाओं को मुक्त करने पर मजबूर होना पड़ा। वित्तीय घाटे को कम करने के लिए सरकारी खर्च में कटौती की गयी और राज्य द्वारा दी जानी वाली सहायता यानी सब्सीडी घटा दी गयी। विदेशी व्यापारियों और निवेशकों को आकृष्ट करने के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिबंधों को कम किया गया। इस क्षेत्र में श्रीलंका अकेला अपवाद है जिसने एक दशक पहले ही उदारीकरण और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुडने का कार्यक्रम अपनाया था।

वैश्वीकरण का दक्षिण एशिया का अनुभव मिले–जुले परिणामों वाला रहा। विभिन्न देशों के आकार और प्राकृतिक, मानवीय व पूंजीगत संसाधनों और आर्थिक सुदृढ़ता की दृष्टि से अंतर होने के कारण सभी अर्थव्यवस्थाओं को समान लाभ नहीं मिल सका, मगर इस बात की पुष्टि के लिए पक्के प्रमाण हैं कि वैश्वीकरण के समर्थकों ने जिस ऊंची विकास दर का अनुमान लगाया था, वैसा इस क्षेत्र में कुछ नहीं हुआ। 1990 के दशक में दक्षिण एशिया की औसत आर्थिक विकास दर 5.4 प्रतिशत रही जो 1980 के दशक की 5.8 प्रतिशत विकास दर से भी कम है।[92] भारतीय अर्थव्यवस्था जो पिछले दशकों में 3–3.5 प्रतिशत वार्षिक दर के हिसाब से बढ़ती रही, उदारीकरण की नीतियों को अपनाने के बाद 7 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गयी। फिर भी दक्षिण एशिया क्षेत्र की विकास दर में गिरावट आयी है। 1990 के दशक में गरीबों और अमीरों के बीच की खाई और गहरी हुई। बांगलादेश में तो शहरों और कस्बों में रहने वाले गरीबों की हालत पिछले दशक के मुकाबले और बदतर हो गयी। श्रीलंका में और परिवार गरीबों की श्रेणी में शामिल हो गये, जबकि जो लोग पहले ही गरीब थे उनकी हालत और खराब हो गयी। पाकिस्तान में 28.1 प्रतिशत आबादी 1980 के दशक के मध्य में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही थी। एक दशक से चले आ रहे उदारीकरण और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ने के प्रयासों के बाद यह आंकड़ा बढ़कर 37.7 प्रतिशत पहुंच गया।[93]

भारत में सरकारी आंकड़ों के अनुसार गरीबी में काफी कमी आयी और यह 1980 के दशक के मध्य में 44.5 प्रतिशत से घटकर सहस्राब्दि के अंत तक 26.1 प्रतिशत के स्तर पर आ गयी।[94] लेकिन ये आंकड़े विवाद का विषय बन गए। चूंकि गरीबी का आकलन करने की प्रविधि में हाल ही में परिवर्तन किया गया था, इसलिए ताजा सर्वेक्षण के नतीजों की तुलना पहले के सर्वेक्षणों के आंकड़ों से नहीं की जा सकती। अगर इस कमी को दूर कर भी दिया जाए तो भी 1990 के दशक में गरीबी कम हुई। लेकिन देश में आर्थिक विकास की ऊंची दर के बावजूद गरीबी में कमी की रफ्तार पहले के समान बनी रही।[95] भारत के भीतर गरीबी संबंधी क्षेत्रीय असमानताएं बढ़ीं। गुज़रात, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु जैसे पश्चिम और दक्षिण के राज्यों में गरीबी में कमी की रफ्तार तेज़ रही, जबकि उड़ीसा और बिहार जैसे पूर्वी राज्यों में 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी के बोझ से दबी रही। योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार इन दोनों राज्यों में सन् 2007 तक गरीबी का यही स्तर बना रहेगा।[96]

लेकिन इसके विरोध में भी तर्क दिये जाते हैं। इनमें वैश्वीकरण की कार्यकुशलता और विश्व के संसाधनों का बेहतरीन उपयोग; मानवीय सृजनात्मकता को प्रोत्साहन; लोकतांत्रीकरण के प्रसार; विकास के फायदों में सबको समान भागीदारी तथा समृद्धि और अधिकार संपन्नता के युग में ले जाने जैसी इसकी क्षमताओं पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। लेकिन ये सब फायदे आज के राष्ट्रमंडल में एक छोटे से अभिजातवर्ग के लोगों तक ही सीमित रह गये हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। 1970 के दशक में दुनिया के कुल निर्यात में दक्षिण एशिया का हिस्सा 1.1 प्रतिशत था। लेकिन 1980 के दशक में यह छोटा सा हिस्सा भी और घटकर 0.7 प्रतिशत हो गया। विश्व पहले अर्थव्यवस्था के साथ प्रगतिशील तरीके से जुडने के एक दशक के प्रयासों के बावजूद, सहस्राब्दि के अंत तक विश्व के कुल निर्यात में दक्षिण एशिया का हिस्सा केवल 1 प्रतिशत था।[97]

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और गरीबी में कमी – वाशिंगटन डी.सी. में समीक्षा

नागरिक समाज के कई कार्यकर्ताओं ने विकासशील देशों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की नीतियों और हस्तक्षेप का विरोध किया है। संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (Structural Adjustment Facility-SAF) और विस्तारित संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Extended Structural Adjustment Facility-ESAF) को अपनाने वाले देशों में गरीबी बढ़ने का कारण इन कार्यक्रमों को ही माना जा रहा है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की कठोर आलोचना वाली एक रिपोर्ट सहस्राब्दि के अंत में अमेरिका से आयी है।

1998 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और क्षेत्रीय विकास बैंकों जैसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के कार्यनिष्पादन की समीक्षा के लिए अमेरिकी कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था सलाहकार आयोग गठित किया। कार्नेगी मेलन विश्वविद्यालय के प्रो0 एलन मेल्टज़र की अध्यक्षता वाले इस आयोग ने सन् 2000 में अपनी रिपोर्ट दी।[98] सार्वजनिक तौर पर सुनवाई करने के बाद मेल्टज़र आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आर्थिक विकास और गरीबी कम करने के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यनिष्पादन की काफी आलोचना की गयी है। उदाहरण के लिए कुछ आलोचनाएं ये हैं :–

- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को गरीबी उन्मूलन का अनुभव नहीं है।
- भुगतान असंतुलन से निपटने के लिए अल्पावधि सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की दीर्घावधि संरचनात्मक समायोजन नीतियों, दोनों से कर्ज़ लेने वाले देशों को वास्तविक रूप से आर्थिक लाभ नहीं मिले हैं।
- हाल के वित्तीय संकट के दौरान जब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने पूर्वी एशिया और लातीनी अमेरिका के देशों को बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को आर्थिक संकट से उबारने के लिए सहायता दी तो जो लोग गरीबी से निकलने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा रहे थे उन्होंने देखा कि उनकी संपत्ति और बचत नष्ट हो गयी और उनका छोटा–मोटा कारोबार ठप्प हो गया।
- जी–सात (G-7) सरकारें, खास तौर पर अमेरिका, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का इस्तेमाल अपने राजनीतिक हितों को साधने के लिए करते हैं और
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रबंधन इसके निगरानी बोर्ड से अलग नहीं है जो अपने कार्यक्रमों के कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करता है। इसकी कार्रवाई सार्वजनिक रूप से नहीं होती और औपचारिक मतदान तो कभी कभार ही होता है।

आयोग ने न तो इन आलोचनाओं का समर्थन किया और न इन्हें सरसरी तौर पर अस्वीकार किया, लेकिन उसने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रयासों से उस तरह के वित्तीय संकटों को शायद ही टाला जा सका है जैसे कि हाल के वर्षों में पूर्वी एशियाई तथा लैटिन अमेरिकी देशों को झेलने पड़े हैं। आयोग ने विचार व्यक्त किया: "बजाय इसके, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यक्रमों और सलाह से नयी उभरती समस्याओं के साथ आवश्यक समायोजन में देरी हुई है जिससे वास्तव में लम्बे समय के लिए आर्थिक विकास दबकर रह गया है।"

आयोग ने सिफारिश की है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधार कुछ निश्चित दिशा–निर्देशों पर आधारित होने चाहिए जिनमें से कुछ प्रमुख दिशा–निर्देश इस प्रकार हैं :

- कर्ज़ देने वाले और लेने वाले, दोनों ही देशों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया की स्वायत्तता का सम्मान और
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कर्मचारी अपने कार्यों के लिए जवाबदेह बने इसके काम में पारदर्शिता और जवाबदेही।

आयोग की सिफारिशें :

- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में अंतिम उपाय के रूप में कर्ज़ देने वाले की भूमिका निभानी चाहिए और कम शर्तों के साथ केवल अल्पावधि वित्तीय सहायता ही देनी चाहिए।
- गरीबी कम करना विश्व बैंक जैसी अन्य संस्थाओं के क्षेत्राधिकार में आता है, इसलिए इसके कार्य का दोहराव नहीं हो, इसके लिए ई.एस.ए.एफ. और गरीबी में कमी लाने तथा विकास को बढावा देनेवाले कार्यक्रमों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकार पत्र के अनुसार उसे आर्थिक नीति के बारे में केवल सलाह ही देनी चाहिए और देशों पर कोई शर्तें नहीं थोपनी चाहिए और
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को कर्ज़ के भारी बोझ से दबे उन गरीब देशों के सभी ऋण माफ कर देने चाहिए जो विश्व बैंक और अन्य क्षेत्रीय बैंकों की देखरेख में विकास रणनीति पर अमल कर रहे हैं।

एक साल बाद प्रो. एलेन मेल्टज़र ने अमेरिकी कांग्रेस की संयुक्त आर्थिक समिति को बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने दीर्घावधि ऋण कार्यक्रमों को कम करना शुरू कर दिया है और अपनी ऋण देने संबंधी गतिविधियों की देश–वार रिपोर्टें प्रकाशित कर अधिक पारदर्शिता बरत रहा है।[99] अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बोर्ड विकासशील देशों में उसकी नीतियों के कारण हुए बुरे प्रभाव को अस्वीकार करने की बजाय इन देशों में हुए नुकसान का मूल्यांकन कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के पुनर्गठित कार्यक्रमों से विकासशील देशों में गरीबी कम करने में क्या कोई खास मदद मिलेगी, यह अभी देखना बाकी है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

वैश्वीकरण की विचारधारा पूरी तरह बाज़ार उदारीकरण, निजी अर्थव्यवस्था के गुणगान और अर्थव्यवस्था के सरकारी प्रबन्ध या उसमें सरकार के हस्तक्षेप की आलोचना पर आधारित है। इस विचारधारा के अनुसार एक राष्ट्र अपने लोगों का अधिकतम कल्याण विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़कर ही कर सकता है। जहां तक वैश्वीकरण की विचारधारा में अधिकारों की चिन्ता का प्रश्न है, इसमें कुछ ऐसे नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को महत्व दिया गया है, जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के संचालन के लिए अनिवार्य समझे गए हैं, जैसे निजी संपत्ति का बढ़ता क्षेत्र, उसका स्पष्ट निर्धारण और संरक्षण, वाणिज्यिक अनुबंधों पर कड़ाई से अमल, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, और कानून का शासन। विश्व के स्तर पर पूंजीवाद के लिए अनुकूल परिस्थितियों को बढ़ावा देने के लिए कानून, संस्थाएं एवं नीतियाँ बनाने तथा उन्हें लागू करने में राज्य की सक्रिय भूमिका ज़रूरी है। किन्तु यह विचारधारा उन आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के संरक्षण के लिए सरकार के विशिष्ट हस्तक्षेप के खिलाफ है, जिनका लक्ष्य रचनात्मक नीतियों और पुनर्वितरक तंत्र के माध्यम से सामाजिक अन्याय दूर करना या विदेशी ताकतों से होने वाले नुकसान से घरेलू अर्थव्यवस्था की रक्षा करना है।

इस वैचारिक दृष्टिकोण का इस्तेमाल उन नीतियों की समाप्ति को उचित ठहराने के लिए किया गया है जो अब तक उपेक्षितों की सहायता और शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच का न्यूनतम स्तर मुहैया करा सामाजिक एकजुटता को बढ़ाती थीं। अक्सर यह कहा जाता है कि लोगों की खुशहाली की गारंटी पर अमल करने में बाज़ार की विफलता से जो नुकसान होगा, वह सरकार द्वारा अधिकारों की रक्षा करने में विफलता से होने वाले नुकसान की तुलना में कम ही होगा। कुप्रशासन से होने वाली त्रासदी की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। किन्तु, गैर–ज़िम्मेदाराना ढंग से दायित्वों का निर्वाह करने वालों की मौजूदगी का यह अर्थ नहीं है कि लोकतंत्र और अधिकार गैर–ज़िम्मेदार बाज़ार के नियंत्रण में सौंप दिए जायें। इन हालातों में उत्पन्न खतरों को उन देशों में देखा जा सकता है जहाँ कई सालों से आर्थिक ढ़ाँचे का समायोजन करने वाले कार्यक्रमों का दबाव बना हुआ है।

खुशहाली की खोज में बरबादी

मानव–गरिमा के स्थान पर वाणिज्यिक हितों को प्राथमिकता देने वाले बाहरी नुस्खे से ज़ाम्बिया में बरबादी हुई है।

एसएपीज़ की शर्तों का पालन करते हुए जाम्बिया की सरकार ने निजीकरण कार्यक्रम को तेज किया। किन्तु सरकारी क्षेत्र से बेची गई 50 प्रतिशत कम्पनियां अब दिवालिया हो गई हैं। 1991 में शुरू किए गए आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रमों के परिणाम स्वरूप 60,000 से अधिक लोग अपने रोज़गार से हाथ धो चुके हैं। कमाने वाला एक और खाने वाले अनेक, जैसी परिस्थिति के चलते 4,20,000 लोग बेसहारा हो गए हैं। जाम्बिया के 40 प्रतिशत बच्चे घोर कुपोषण से ग्रस्त हैं। सरकार को सार्वजनिक खर्च में कटौती और स्कूल फीस शुरू करने जैसे उपाय करने पड़े हैं। उदाहरण के लिए, ज़ाम्बिया सरकार 1991 में प्राथमिक स्कूल के प्रत्येक विद्यार्थी पर 60 अमेरिकी डालर खर्च करती थी और अब मात्र 15 डालर खर्च करती है। सबसे पहले लड़कियों को स्कूल से हटाया जाता है। 1980 में 5 वर्ष से कम आयु के शिशुओं में मृत्युदर 162 प्रति एक हजार थी जो अब बढ़कर 202 प्रति हजार हो गई है। अर्थात् हर पाँच पैदाइश के मुकाबले एक बच्चे की मौत। 'औसत प्रत्याशित आयु अब गिरकर 40 पर पहुंच गई है जो 80 के दशक के मध्य में 54 थी।[100]

पहले से कमज़ोर देशों में ताकतवर ऋणदाताओं द्वारा कारग़र ढंग से लागू किए गए एसएपीज़ वैश्वीकरण में तेज़ी लाने में अग्रदूत का काम कर मददगार रहे हैं। इन कार्यक्रमों से प्रभावित देशों में न केवल आर्थिक विकास पर नकारात्मक असर पड़ा है, बल्कि राज्य के प्राधिकार और कमज़ोर लोगों के अधिकारों को सिलसिलेवार क्षति पहुंची है तथा बड़ी संख्या में लोगों के गरीबी की रेखा से नीचे धकेले जाने के कारण समाज में असमानता और भी बढ़ गई है। इन नतीजों को देखते हुए एसएपीज़ के प्रबल समर्थक विश्वबैंक को यह स्वीकार करना पड़ा कि राष्ट्रों को खुशहाल बनाने में ये कार्यक्रम विफल रहे हैं। स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियां नाकाम हो रही हैं, दवाओं की उपलब्धता कठिन हो गई है और सरकारी अनुदानों में भारी कटौती की वजह से स्कूल बंद किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, ज़िम्बाब्वे में 1990 में यह कार्यक्रम शुरू होने के बाद से गरीबी की श्रेणी में आने वाले परिवार 1991 के 40.4 प्रतिशत से बढ़कर 1996 में 63 प्रतिशत

विश्व बैंक और गरीबी में आई कमी – वाशिंगटन डी.सी. में समीक्षा

वाशिंगटन डी.सी. में विश्व बैंक मुख्यालय के प्रवेश द्वार पर एक बड़े साइनबोर्ड पर लिखा है : "हमारा स्वप्न है गरीबी से मुक्त विश्व" विश्व बैंक समूह (बॉक्स देखें) और तीन क्षेत्रीय विकास बैंकों–एशियाई विकास बैंक, अफ्रीकी विकास बैंक और इंटर–अमेरिकन विकास बैंक के दुनिया भर में फैले 170 कार्यालयों में कुल 17,000 लोग कार्यरत हैं। इनका 50,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर का कोष है जो सदस्य देशों से एकत्र राशि से बनाया गया है। अब तक विश्व बैंक और क्षेत्रीय विकास बैंकों ने विकासशील देशों को 30,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर कर्ज़ में दिये हैं। बांगलादेश, भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक दोनों के सदस्य हैं।

अब इस पर विचार कीजिए :

- 1987 और 1998 के बीच विश्व बैंक ने करीब 20,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर गरीबी हटानेवाले कार्यक्रमों पर विश्व भर में खर्च किये। फिर भी सहस्राब्दि परिवर्तन के समय एक डॉलर दैनिक से कम की आमदनी में गुज़र–बसर करने वाले लोगों की तादाद में मामूली गिरावट आयी है – 28 प्रतिशत से 24 प्रतिशत – यानि केवल 4 प्रतिशत गिरावट।
- विश्व बैंक के दावों और वायदों तथा उपलब्धियों व कार्यनिष्पादन में भारी अंतर है। विश्व बैंक के अपने मूल्यांकन के अनुसार भी इसके कार्यक्रमों की असफलता दर 59 प्रतिशत है। सबसे गरीब देशों में कार्यक्रम कार्यान्वयन में असफलता की दर 60–75 प्रतिशत तक है। विश्व बैंक के गठन का उद्देश्य ऐसे विकासशील देशों को ऋण उपलब्ध कराना था जो अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाज़ार का (इसमें विदेशी बैंक, वित्तीय संस्थाएं तथा अन्य निवेशक शामिल हैं।) फायदा उठाने में असमर्थ थे। फिर भी 1993 और 2000 के बीच 70 प्रतिशत ऋण ऐसे 11 देशों को दिये गये जो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में आसानी से कर्ज़ ले सकते थे।
- इन्हीं 11 देशों को विश्व बैंक से गैर–इमदादी सहायता (non-aid assistance) भी मिली जबकि शेष 145 विकासशील देशों को बची–खुची राशि से संतोष करना पड़ा।
- संक्षेप में बैंक महंगा, अकुशल, अफसरशाही से ग्रस्त साबित हुआ जिसके पास स्पष्ट लक्ष्य का अभाव था।
- यह मूल्यांकन विश्व बैंक की नीतियों के विरोध में जन–समर्थन जुटाने का प्रयास कर रहे असंतुष्ट नागरिक समाज के समूहों के किसी गठबंधन द्वारा नहीं किया गया है। यह आलोचना प्रो0 एलेन मेल्टज़र की अध्यक्षता में गठित अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था सलाहकार आयोग द्वारा की गयी है। इस आयोग का गठन अमेरिकी कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी ऋण देने वाली अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों के कामकाज की जाँच करने और भविष्य के लिए नीति–निर्देश सुझाने के लिए किया था।[101] सन् 2000 में मेल्टज़र आयोग ने ये सिफारिशें कीं :
- विश्व बैंक को ऐसे देशों को अधिक ऋण देने चाहिए जो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार से कर्ज़ उठाने की स्थिति में नहीं हैं।
- सबसे गरीब देशों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए ऋण देने की बजाय प्रत्यक्ष अनुदान देना बेहतर तरीका है।
- स्वास्थ्य, शिक्षा और बुनियादी ढांचे के विकास के लिए सहायता उपलब्ध कराना एक बार फिर विश्व बैंक का मुख्य सरोकार होना चाहिए।
- विश्व बैंक को ऐसी वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध कराने पर ज़ोर देना चाहिए जो विश्व समुदाय के लिए उपयोग में लाई जाएं। इनमें उष्ण देशों में होनेवाले बीमारियों और एड्स के उपचार की सुविधाओं में सुधार, पर्यावरण संबंधी संसाधनों का संरक्षण, उष्ण देशों में कृषि टेक्नोलॉजी का विकास तथा बेहतरीन प्रबंधकीय और नियामक तौर–तरीकों का विकास शामिल हैं।
- विश्व बैंक को भारी गरीबी से ग्रस्त ऐसे देशों के ऋण माफ कर देने चाहिए जो उसकी देखरेख में कारगर विकास रणनीति पर अमल कर रहे हैं।

2001 में प्रो0 मेल्टज़र ने अमेरिकी कांग्रेस की संयुक्त आर्थिक समिति को बताया कि आयोग के निष्कर्षों और सिफारिशों के बारे में विश्व बैंक की प्रारंभिक प्रतिक्रिया बड़ी उग्र रही। लेकिन विश्व बैंक ने अपनी प्राथमिकताओं तथा गतिविधियों पर पुनर्विचार शुरू कर दिया है। प्रो0 मेल्टजर ने सुझाव दिया कि विश्व बैंक को अपनी कार्यनिष्पादन मूल्यांकन प्रणाली में सुधार करना चाहिए और अपनी सभी रिपोर्टों को सार्वजनिक करना चाहिए ताकि देश यह समझ सकें कि वह सबसे गरीब देशों में गरीबी कम करने में क्यों असफल रहा।[102]

cyan black

विश्व बैंक समूह के पांच पॉडव

अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक (International Bank for Reconstruction and Development -IBRD) और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (International Development Association -IDA) विकासशील देशों को गरीबी उन्मूलन के लिए वित्तीय और तकनीकी, दोनों तरह की विकास सहायता उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी उठाने वाले इन संगठनों को आमतौर पर विश्व बैंक के नाम से जाना जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation -IFC) : इसे विकासशील देशों में गरीबी कम करने और लोगों के जीवन में सुधार के लिए स्थायी आधार पर निजी क्षेत्र का निवेश बढ़ाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है।

बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (Multilateral Investment Guarantee Agency - MIGA) : इसे विकासशील देशों में गरीबी कम करने और लोगों के जीवन में सुधार के उद्देश्य से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को बढ़ावा देने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय निवेश–विवाद समाधान केन्द्र (International Centre for Settlement of Investment Disputes -ICSID) : इसे विदेशी निवेशकों और सरकारों के बीच निवेश संबंधी विवादों में मध्यस्थता को आसान बनाने तथा इन्हें सुलझाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है।

पर पहुंच गए। इसी अवधि में घोर गरीबी से ग्रस्त परिवार 16.7 प्रतिशत से बढ़कर 35.7 प्रतिशत हो गए। आज ज़िम्बाब्वे के 75 प्रतिशत परिवार गरीब हैं और 47 प्रतिशत बेहद गरीब की श्रेणी में आते हैं। एसएपीज़ का सर्वाधिक कमज़ोरों पर सबसे ज़्यादा असर पड़ा है, जबकि इनका लाभ मुख्यतः वाणिज्यिक क्षेत्र को पहुंचा है।

अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता (Overseas Development Assistance - ओ डी ए) विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई को कम करने के एक उपाय के रूप में जानी जाती है। किन्तु, शुरू से ही ओ डी ए की भूमिका सिर्फ मानवीय सहायता तक ही सीमित नहीं रही है। सहायता करने वाले देश की विदेश नीति के लक्ष्य इस कार्यक्रम का अभिन्न अंग रहे हैं। ऋणदाता/विकसित देशों की कच्चे माल और बाजारों की ज़रूरतों और संसाधनों के विषम वितरण को देखते हुए ओ डी ए सहायता प्राप्तकर्ता देशों की नीतियों और अर्थ–व्यवस्थाओं को एक विशेष रूपाकार प्रदान करने का एक माध्यम बन गया। चूंकि अधिकतर सहायता ऋणों के रूप में दी गई, अतः 'विकास' के प्रयास की परिणति भारी ऋणग्रस्ता के रूप में सामने आयी–जिससे एक ऋण–चक्र बनता चला गया। 1999 तक दुनिया के सबसे अधिक कर्ज़दार 41 गरीब देशों पर 20,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक का ऋण था, जबकि 1990 में यह ऋण 18,300 करोड़ अमेरिकी डॉलर और 1980 में 5,500 करोड़ अमेरिकी डॉलर का था।[103] इन देशों को विकास में निवेश से अधिक धन कर्ज़ का ब्याज चुकाने पर खर्च करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। इन निर्धनतम देशों में से दस राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं (अगले पृष्ठ पर बॉक्स देखें)। भारी ऋणगस्त गरीब देशों को राहत देने संबंधी संगठन – Heavily Indebted Poor Countries Initiative (HIPC) – का विकास किया गया ताकि भारी ऋणों का बोझ कम किया जा सके, लेकिन यह संगठन कुछ खास नहीं कर पाया। ऋणदाताओं को इस बात का यकीन दिलाना बड़ा कठिन होता है कि आगे चलकर एक गरीब देश में निवेश करना अधिक कारगर सिद्ध होगा। क्योंकि अन्य देशों की तुलना में गरीब देश में मज़दूरों को जुटाना आसान होता है, जबकि अन्य देश जो गरीब नहीं हैं सामाजिक, नैतिक और आर्थिक दृष्टि से न्यायोचित अंश से अधिक संसाधनों को निगल जाते हैं।

हालांकि 1970 के दशक में पाकिस्तान 'भारी कर्ज़दार देश' बन गया था (सारणी 8 देखें) क्योंकि उसने अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज़दाता संस्थाओं, विदेशी संस्थाओं और निजी क्षेत्र की संस्थाओं से भारी ऋण ले रखे थे, लेकिन कोई भी दक्षिण एशियाई देश भारी कर्ज़दारी वाले गरीब देशों (HIPC) में शामिल नहीं था। हाल के वर्षों में बांगलादेश, भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका ने अपने बढ़ते हुए कर्ज़ों को चुकाने के लिए विकसित देशों से अधिक कर्ज़ लिया है। 1994 और 1999 के बीच दक्षिण एशियाई देशों ने विकसित देशों को 2000 करोड़ अमेरिकी डॉलर लौटाए जो कि इसी अवधि में उनके द्वारा लिए गए कर्ज़ से अधिक है।[104] भारत और पाकिस्तान में सरकारी राजस्व का क्रमशः 38 प्रतिशत और 43 प्रतिशत हिस्सा कर्ज़ की अदायगी में खर्च हो जाता है। यह स्थिति चिंता का विषय है क्योंकि अपने सीमित राजस्व के आधे से अधिक हिस्से को विकास कार्यक्रमों में लगाने की बजाय कर्ज़ चुकाने में खर्च करने वाले इन देशों के कर्ज़ के जाल में फंस जाने की संभावना है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

वैश्वीकरण के समर्थकों ने इसे विकासशील देशों के लिए विदेशी निवेश आकृष्ट करने के एक स्वर्णिम अवसर के रूप में प्रचारित किया। दक्षिण एशियाई देशों को आशा थी कि अपनी अर्थव्यवस्थाओं को खोलकर विदेशी पूंजी और टेक्नोलॉजी प्राप्त हो सकेगी जिससे तीव्र आर्थिक विकास हो सकेगा; लाखों बेरोज़गारों के लिए अधिक संख्या में रोज़गार के अवसर उत्पन्न होंगे और आयात के लिए और अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकेगी। ओ.डी.ए. और द्विपक्षीय ऋणों के विपरीत, जिन्हें चुकाना पड़ता है, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से सरकारों पर कर्ज़ का बोझ नहीं पड़ता। इस कारण ये धन प्राप्त करने का अधिक वांछित स्रोत हैं। 1993 से 1999 के बीच विकसित देशों ने 1,45,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक का निवेश विकासशील देशों में किया।[105] दक्षिण एशिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में दस गुना बढ़ोतरी हुई और यह 1990 और 1997 के बीच 46 करोड़ अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 490 करोड़ अमेरिकी डॉलर हो गया। लेकिन विश्व स्तर पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की स्पर्धा में दक्षिण एशिया की लगातार उपेक्षा हो रही है। 1997 में दुनिया के कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का 2.6 प्रतिशत दक्षिण एशिया में हुआ था जो इसका सर्वोच्च स्तर था। लेकिन सहस्राब्दि परिवर्तन के समय यह घटकर 1.26 प्रतिशत रह गया।[106] इसके विपरीत 1990 के पूरे दशक में चीन में सबसे अधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ (विभिन्न वर्षों में 25 से 38 प्रतिशत तक)। दक्षिण एशिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सभी देशों में समान रूप से नहीं हुआ। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की दृष्टि से भारत इस क्षेत्र के देशों में सबसे चहेता देश रहा और क्षेत्र में समूचे निवेश का तीन–चौथाई यहीं हुआ। उदारीकरण के एक दशक के बावजूद, दक्षिण एशिया के अनुभव से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुल्कों में कमी और व्यापारिक प्रतिबंधों को हटाने मात्र से विदेशी निवेशक स्वतः चले नहीं आते।

राष्ट्रमंडल के भारी कर्ज़दार गरीब देश[107]

देश	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कर्ज़ की मात्रा
कैमरून	75%
गैम्बिया	64%
घाना	78%
गयाना	उपलब्ध नहीं
मलावी	90%
मोज़ाम्बीक	33%
सिएरा लियोन	128%
तंज़ानिया	50%
युगांडा	16%
ज़ाम्बिया	179%

सारणी 8 सहस्राब्दि परिवर्तन के समय दक्षिण एशिया में ऋणग्रस्तता[108]

देश	कुल विदेशी ऋण (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)		ऋणग्रस्तता रेटिंग	कुल ऋण का मूल्य (सकल घरेलू उत्पाद के रूप में बाहरी और आंतरिक ऋण)	कुल राजस्व के प्रतिशत के रूप में ब्याज़ का भुगतान
	1990	2000			
बांगलादेश	1,240	1,560	कम ऋणग्रस्त	40.1%	15.7%
भारत	8,362	10,036	कम ऋणग्रस्त	53.4%	38.2%
पाकिस्तान	2,066	3,209	*अत्यधिक ऋणग्रस्त*	79.1%	43%
श्रीलंका	586	906	कम ऋणग्रस्त	55.4%	14.1%

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

विषमताएं

एसएपीज़ वैश्वीकरण की विचारधारा के व्यावहारिक रूप का ज्वलन्त उदाहरण हैं। वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों से निपटने के लिए, ज़रूरी है कि इसकी प्रणालियों का खुलासा किया जाये। वैश्वीकरण का उदय विषमताओं की एक श्रृंखला के आधार पर हुआ है–जो बढ़ती गरीबी और असमानता का मूल कारण है।

सरकार और बाज़ार

सबसे पहली विषमता सरकार और बाज़ार के बीच संबंध में निहित है। 'मुक्त' बाज़ारों की विडम्बना यह है कि वे मुक्त नहीं हैं। उनका निर्माण और विकास राजनीतिक हस्तक्षेप–चाहे वह स्वैच्छिक हो या अभिप्रेरित–द्वारा किया गया है। एसएपीज़ के नाम पर राष्ट्रों पर लागू की गई अनेक शर्तों का लक्ष्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का ' वैश्वीकरण' है ताकि उन्हें विदेशी निवेश और व्यापार के लिए खोला जा सके। मुक्त बाजारों को नए क्षेत्रों में प्रवेश करने और वहां फलने–फूलने के लिए राजनीतिक प्रभाव की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए वाणिज्यिक हित अपनी समृद्ध और शक्तिशाली शासन प्रणाली की अवपीड़क शक्तियों और डब्ल्यूटीओ तथा 'उत्तर अटलांटिक मुक्त व्यापार संघ (North American Free Trade Agreement - नाफ्टा) जैसे अंतर्राष्ट्रीय प्रबन्धों का सहारा लेते हैं। वर्तमान व्यापार इन्हीं द्वारा शासित है। गिने–चुने विकासशील देश ऐसे हैं, जिनके पास घरेलू उद्योगों को विकसित देशों के बाजारों में स्थान दिलाने की राजनीतिक क्षमता है। वैश्वीकरण सभी वाणिज्यिक हितों के लिए समान रूप से काम नहीं करता। खासकर विकसित देशों के संरक्षित बाज़ार उनकी मुक्त बाज़ार की परिकल्पना को झुठलाते हैं।

इसके साथ ही सरकार बहु–राष्ट्रीय निगमों की अनिवार्य शर्तों और उनके प्रभाव से कमज़ोर पड़ जाती हैं। एसएपीज़ की शर्तों के रूप में निजीकरण और उदारीकरण से अधिक 'स्वायत्त' बाज़ार प्रणाली सामने आती है, जिसमें सरकार के अधिकारों का क्षेत्र कम हो जाता है और निजी क्षेत्र के अधिकारों में उतनी ही बढ़ोतरी हो जाती है। निवेश और संचालन की शर्तों के आधार पर कम्पनियों को सरकारों के साथ समझौते करने के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं और वे सरकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नीतियों से संबंधित फैसलों को प्रभावित करने की क्षमता हासिल कर चुकी हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की शर्तों के कारण कम्पनियाँ को सार्वजनिक नीतियों और पद्धतियों पर हावी होने का मौका मिलता है। चूंकि ये कम्पनियां बेरोकटोक विश्वभर में कहीं भी आ–जा सकती हैं, इसलिए सरकारों को अन्य देशों के मुकाबले में निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अनेक उपायों का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए, करों में कटौती, व्यापार संबंधी पाबंदियों को हटाना इत्यादि, पर्यावरण संबंधी मानदंडों में कमी लाना और कर्मचारी संगठनों पर प्रतिबंध लगाना। इससे राज्य के राजस्व में क्षति होना स्वाभाविक है, जिसका अर्थ है गरीबी उन्मूलन के लिए खर्च किए जाने वाले संसाधनों में पहले की तुलना में कमी। कई देशों में कल्याण कार्यों–जहां वे समाप्त नहीं हुए हैं–का निजीकरण किया गया है और सरकार के अनेक महत्वपूर्ण कार्य निजी क्षेत्र को स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

सरकारों से अधिकारों का हस्तांतरण निगमों और अन्य विश्व–संस्थानों में होने से लोकतंत्र भी कमज़ोर पड़ गया है। चूंकि नीतियां, या तो शर्तों के रूप में साफ–साफ अथवा विश्व बाजारों के तर्क के प्रभाव के रूप में बार–बार सरकारों पर लागू की जाती हैं, अतः राज्य मज़बूरन अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के दलाल बन जाते हैं और अक्सर उन्हें अपने नागरिकों की इच्छाओं के विपरीत फैसले करने पड़ते हैं। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति अक्सर सरकार के नागरिकों को दबाने के रवैये पर निर्भर रहते हैं ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके। प्रभुसत्ता या आत्म–निर्णय के इस्तेमाल का केन्द्र बिन्दु अकेले राज्य या सरकार नहीं रह गई है। अब नागरिक सरकार को उत्तरदायी ठहराने की स्थिति में नहीं रहे, क्योंकि सरकारों में अब इतनी क्षमता नहीं रह गई है कि वे नागरिकों की मांगों को पूरा कर सकें। दूसरी ओर, नागरिकों के जीवन पर 'गैर–राज्य कर्ताओं (non-state actors) का अधिक प्रभाव पड़ता है।

राज्य की शासन–शक्ति के पहलुओं की जगह ले रहे ये निगम और संस्थान स्वयं में लोकतांत्रिक नहीं हैं। इनका संचालन खास हित–समूहों की ओर से कार्यकारियों या नौकरशाहों द्वारा किया जाता है। इसका एक अच्छा उदाहरण उस समय सामने आता है जब कोई राष्ट्र किसी क्षेत्रीय आर्थिक संगठन में शामिल होता है (जो खुद भी वैश्वीकरण की उपज है)।

कर्ज़ में डूबी राज्य सरकारें

भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्य सरकारों को नागरिकों के कल्याण के लिए कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इस तरह के कार्यों में खाद्य सुरक्षा से लेकर शिक्षा और स्वास्थ्य, स्वच्छता और विद्युत तथा स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति शामिल हैं। केन्द्र और राज्य, दोनों ही प्रशासनिक तंत्र के संचालन की लागत जुटाने तथा लोक कल्याण के कार्यों पर होने वाले खर्च को पूरा करने के लिए कर लगा सकते हैं और भारतीय रिज़र्व बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण ले सकते हैं। लेकिन हाल के वर्षों में राज्य सरकारों के पास लोक कल्याण के कार्यों पर खर्च करने के लिए धनराशि लगातार कम होती जा रही है और वे खर्च चलाने के लिए बैंकों तथा मुद्रा बाज़ार से अधिक मात्रा में कर्ज़ ले रही हैं। हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ राज्यों को तो कर्मचारियों के वेतन के भुगतान के लिए कर्ज़ लेना पड़ रहा है।[109] राज्यों के कर राजस्व का काफी बड़ा हिस्सा पुराने ऋणों के भुगतान में खर्च हो जाता है। परिणामस्वरूप, उनके पास विकास कार्यक्रमों पर खर्च करने के लिए बहुत कम धन बचता है। राज्यों के बजट में कुल घाटा भारत के सकल घरेलू उत्पाद के 4.6 प्रतिशत के बराबर है। (राज्यवार ब्यौरा देखिए) अगर सरकारी खर्च कम करने के लिए आपात् उपाय नहीं किये जाते तो बहुत से राज्यों के ऋण के जाल में फंस जाने की आशंका है–क्योंकि पुराने ऋणों को चुकाने के लिए और अधिक कर्ज़ लेने पड़ेंगे और यह सिलसिला चलता रहेगा।

सारणी–9 राज्यों में वित्तीय घाटाः 2002–2003 के बीच[110]

राज्य	घाटा (करोड़ रुपये)	राज्य	घाटा (करोड़ रुपये)
पश्चिम बंगाल	11,315.2	असम	2,054.2
गुज़रात	9,752.5	हिमाचल प्रदेश	1,859.9
उत्तरप्रदेश	9,744.2	झारखंड	1,782.5
तमिलनाडु	8,205	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)	1,764.6
महाराष्ट्र	7,997.4	जम्मू–कश्मीर	1,612.8
आंध्रप्रदेश	7,499.3	छत्तीसगढ़	1,450.6
राजस्थान	6,956.5	त्रिपुरा	631.8
कर्नाटक	5,839.1	गोआ	458
पंजाब	4,969.8	मणिपुर	287
बिहार	3,576.7	मेघालय	272.2
उड़ीसा	3,570	नागालैंड	262.8
मध्यप्रदेश	3,148.1	मिज़ोरम	137.1
केरल	2,669.5	अरुणाचल प्रदेश	78.2
हरियाणा	2,617.7	सिक्किम	27.9
उत्तरांचल	2,306.7		
		कुल घाटा	1,02,847.6 करोड़ रुपये

cyan black

धन कहाँ है ?

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की संख्या, जो 1970 में 7000 थी, सहस्राब्दि परिवर्तन तक बढ़कर 50,000 से अधिक हो गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में 70 प्रतिशत से अधिक व्यापार बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किया जाता है। इसके एक तिहाई हिस्से का बहाव तो इन्हीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीच होता है। विश्व स्तर पर विचार करें तो विश्व के पांच सबसे बडे निगमों की कुल वार्षिक आमदनी दुनिया के 100 सबसे गरीब देशों के कुल राजस्व से अधिक है। सहस्राब्दि परिवर्तन के समय चोटी के 500 बहुराष्ट्रीय निगमों की कुल बिक्री विश्व की सकल आय का 47 प्रतिशत थी, लेकिन इनमें विश्व की श्रम शक्ति के केवल 1.59 प्रतिशत को ही रोज़गार मिला था।[111] दूसरे शब्दों में, कम से कम लोग अधिक से अधिक पैसा कमा रहे हैं।

कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तो दक्षिण एशियाई देशों की कुल आमदनी (सकल घरेलू उत्पाद - Gross Domestic Product) या भारत के राज्यों के राज्य घरेलू उत्पाद (State Domestic Product) से भी अधिक धन कमा रही हैं। सहस्राब्दि परिवर्तन के समय एक्सॉन मोबिल की आमदनी भारत के सकल घरेलू उत्पाद के सातवें हिस्से के बराबर थी। जनरल मोटर्स ने इसी अवधि में बांगलादेश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य से अधिक की आमदनी कमायी। आई.बी.एम., सोनी, फोर्ड, टोयोटा और ग्लैक्सो स्मिथक्लैन में से प्रत्येक कम्पनी की आमदनी श्रीलंका और भारत के कई राज्यों में वस्तुओं और सेवाओं की कुल लागत से अधिक थी। 2001 में आमदनी के लिहाज़ से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, दक्षिण एशियाई देशों और भारतीय राज्यों की तुलनात्मक स्थिति के लिए कृपया बॉक्स देखें।[112]

देश / राज्य / बहुराष्ट्रीय कम्पनी	जी डी पी / एस डी पी / बहुराष्ट्रीय कम्पनी की आमदनी (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)	देश / राज्य / बहुराष्ट्रीय कम्पनी	जी डी पी / एस डी पी / बहुराष्ट्रीय कम्पनी की आमदनी (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)
भारत	45,700	तमिलनाडु	2,565
एक्सॉन मोबिल	6,300	*सोनी*	2,000
पाकिस्तान	6,200	*मित्सुबिशि*	2,000
जनरल मोटर्स	5,600	कर्नाटक	1,971
महाराष्ट्र	4,747	गुज़रात	1,950
बांगलादेश	4,700	*होंडा मोटर्स*	1,800
फोर्ड मोटर्स	4,400	*तोशिबा*	1,800
डाइमलर क्रायस्लर	4,200	*गलैक्सो स्मिथक्लैन*	1,700
जनरल इलेक्ट्रिक	3,900	श्रीलंका	1,630
टोयोटा मोटर्स	3,800	राजस्थान	1,394
उत्तरप्रदेश	3,321	मध्यप्रदेश	1,334
सीमेन्स	3,200	केरल	1,314
तमिलनाडु	2,744	पंजाब	1,268
आई.बी.एम	2,700	बिहार	871
पश्चिम बंगाल	2,674	उड़ीसा	641
आन्ध्रप्रदेश	2,592	असम	560

जी डी पी : सकल घरेलू उत्पाद एस डी पी : राज्य घरेलू उत्पाद

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

समृद्धि के बीच गरीबी : भारत में संपत्ति संबंधी असमानता[113]

- विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार भारत में 35 प्रतिशत लोग यानी 36 करोड़ नागरिक एक डालर दैनिक से कम आमदनी में गुज़ारा करते हैं। अगर तर्क के लिए ही यह मान लिया जाए कि उनमें से प्रत्येक हर रोज़ कम से कम एक अमेरिकी डालर (48 रुपया) कमाता है तो इन लोगों की कुल वार्षिक आमदनी 6.3 लाख करोड़ रुपये होगी।

या

- योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार सहस्राब्दि परिवर्तन के समय देश की एक चौथाई से अधिक आबादी, यानी 26 करोड़ नागरिक, गरीबी–रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे थे। ये लोग कुल मिलाकर करीब 91,000 करोड़ रुपये की वार्षिक आमदनी कमा रहे थे।

अब इस पर विचार कीजिए :

- वर्ष 2003 के अंत तक भारत के 125 करोड़पतियों की कुल आमदनी 1.20 लाख करोड़ रुपये होने का अनुमान लगाया गया था। दूसरे शब्दों में, 0.00001 प्रतिशत आबादी के पास देश के सबसे गरीब 25 प्रतिशत लोगों की कुल संपत्ति से अधिक धन–दौलत थी।
- वर्ष 2002 में सूचना टेक्नोलॉजी क्षेत्र से धन्ना सेठ बने 23 करोड़पतियों की कुल संपत्ति 46,675 करोड़ रुपये की थी। सूचना टेक्नोलॉजी उद्योग को 1991 में शुरू किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रम का सबसे उल्लेखनीय लाभ मिला।
- सन् 2001 में 45,000 भारतीयों के पास 5 करोड़ रुपये से अधिक की संपत्ति थी। सन् 2002 में 5,000 और लोग इन करोड़पतियों में जुड़ गये।
- वर्ष 2002 में भारत के सबसे धनी नागरिक विप्रो कम्पनी के अध्यक्ष श्री अज़ीम प्रेमजी की संपत्ति 31,411 करोड़ रुपये आंकी गयी थी। लेकिन 2003 में शेयर बाज़ार में हुई उथल–पुथल के कारण उनकी संपत्ति की कीमत 12,448 करोड़ रुपये गिर गई थी।

क्षेत्रीय संगठनों में पूंजी–हित आमतौर पर अन्य सभी समूहों से ज्यादा अधिकार पा लेते हैं, जिससे लोकतंत्र की 'पराजय' होती है। कंपनी क्षेत्र बड़ी संख्या में हिस्सेदारों से सम्पर्क करता है–इनमें शेयर धारक, मज़दूर, उपभोक्ता, उप–ठेकदार, उस देश की सरकार और जन समुदाय शामिल हैं। इस क्षेत्र ने इन सभी को बड़े प्रभावी ढंग से अधिकारहीन और अनेकों को कमज़ोर कर दिया है।

हालांकि शेयर धारक और उपभोक्ता ऐसे समूह हैं, जिनके प्रति बहुराष्ट्रीय निगम सीधे उत्तरदायी होते हैं, लेकिन काफी हद तक ये समूह भी कम्पनी के व्यवहार या नियंत्रण प्रबन्ध पर कारगर ढंग से निगरानी नहीं रख पाते। कॉर्पोरेट गतिविधियां भी शेयरधारकों और

सबसे धनी भारतीय

व्यक्ति और कम्पनी	अनुमानित संपत्ति
मुकेश डी. अम्बानी और अनिल डी. अम्बानी, *रिलायंस इंडस्ट्रीज़*	23,588 करोड़ रुपये
अज़ीम प्रेमजी, *विप्रो*	18,964 करोड़ रुपये
मलविन्दर सिंह और शिविन्दर सिंह, *रेनबैक्सी लेबोरेटरीज़*	5,086 करोड़ रुपये
सुनील मित्तल, *भारती टेली–वेंचर्स*	5,000 करोड़ रुपये
शिव नाडार, विजय थडानी और राजेन्द्र पवार, *एच. सी. एल. टेक्नोलॉजी*	4,299 करोड़ रुपये
दिलीप शंघवी, *सन फार्मास्यूटिकल्स*	3,027 करोड़ रुपये
कुमार मंगलम बिड़ला, *ग्रासिम*	2,737 करोड़ रुपये
सुभाष चन्द्र, *ज़ी टेलीफिल्म्स*	2,566 करोड़ रुपये
कर्सनभाई पटेल, *निरमा*	2,169 करोड़ रुपये
डा0 अंजी रैड्डी, *डा0 रैड्डीज़ लैब्स*	2,132 करोड़ रुपये
कुल	69,568 करोड़ रुपये

उपभोक्ताओं की ही तरह बिखरी हुई हैं। इससे उनके लिए फैसलों और गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करना तथा संयुक्त या कारगर कार्रवाई करना संभव नहीं हो पाता। 'पेंशन निधि' 'क्रॉस–हाल्डिंग्स' और 'पोर्टफोलियो' के माध्यम से शेयर खरीदने वाले अन्य शेयरधारकों को तो शायद यह भी न मालूम हो कि उन्होंने कौनसी कम्पनियों में निवेश किया है। बड़े और छोटे सब–कांट्रेक्टर्स किसी खास निगम पर इतने आश्रित हो जाते हैं कि वे अक्सर कानूनी या स्वीकार्य मानदंडों का उल्लंघन करने वाली कार्यपद्धति अपनाने पर बाध्य हो जाते हैं। निगमों ने वेतन कम कर दिए हैं और सामाजिक सुरक्षा तथा कार्यस्थल पर सुरक्षा के अनेक मानदंडों को तिलांजलि दे दी है–खासकर विकासशील देशों में–जहाँ मज़दूरों के पास अपनी आवाज़ उठाने का कोई साधन नही है। उत्पादक संघों के गठन से उपभोक्ताओं के विकल्प और भी कम हो गए हैं।

निगमों और सरकारों के बीच मेलजोल, रिश्वतखोरी और विशिष्ट वर्ग के स्वार्थों को लेकर मिली भगत से गरीबों की तकलीफें और भी बढ़ जाती हैं। राज्य अक्सर विकास के नाम पर पक्षपातपूर्ण ढंग से अनुचित योजनाओं को मंजूरी देता है, जिससे लाखों लोग विस्थापित हो जाते हैं। प्रक्रियाओं पर निगरानी नही रखने दी जाती। जिन मानदंडों के आधार पर बहुमूल्य रियायतें दी गई, उन्हें सार्वजनिक करने से इंकार कर दिया जाता है। प्रभाव संबंधी आंकड़े प्रकाशित करने पर आपत्ति लगा दी जाती है। कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर दमनकारी पद्धतियां अपनायी जाती हैं ताकि कम्पनियों द्वारा लोगों और संसाधनों का शोषण किया जा सके। इसका ज्वलन्त उदाहरण नाइजीरिया में ओगोनिलैंड में तेल उद्योग में देखा जा सकता है। ये पद्धतियां सरकारी मशीनरी को नागरिकों से और दूर करती हैं और इससे लोकतंत्र की नींव कमज़ोर पड़ती है।

पूंजी और श्रम

वैश्वीकरण में दूसरी मूलभूत विषमता पूंजी और श्रम के बीच में है। पूंजी का प्रवाह विश्वभर में मुक्तरूप से जारी है–डॉलर और अन्य प्रमुख मुद्राओं का अरबों का विनिमय हर रोज होता है। श्रम के मामले में ऐसी गतिशीलता का अभाव है। कहा जाता है कि जब पूंजी, उद्योग और विनिर्माण स्वयं चलकर मज़दूर के पास आ रहे हैं, तो विश्व में श्रम के मुक्त प्रवाह की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इसमें इस तथ्य

मानवाधिकारों में निवेश

"निगमों को इस बात के लिए प्रेरित किया जा सकता है कि उपभोक्ताओं द्वारा नैतिक पद्धतियों की मांग करने पर उन्हें अधिक जिम्मेदारीपूर्ण कार्रवाई करनी चाहिए ताकि लोगों के मानवाधिकारों को पोषित किया जा सके।"

ब्रिटेन के एक प्रमुख 'पेंशन निधि फ्रेंड्स प्रोविडेंट ने 120 अरब पौंड के कारोबार वाली विशाल दवा कम्पनी, ग्लैक्सो–स्मिथक्लिन (जी एस के) को विकासशील देशों के उपभोक्ताओं के लिए अनिवार्य दवाएं कम कीमत पर उपलब्ध कराने के लिए 'ऑक्सफैम" के नेतृत्व में चलाए गए अभियान के पीछे अपनी पूरी ताकत लगा दी।

वर्तमान में लोगों के जेहन में जिस मुद्दे के प्रति सर्वाधिक चिन्ता है, वह है एच आई वी/एड्स महामारी जिसने अफ्रीकी देशों में तबाही मचा रखी है और दक्षिण अफ्रीका की सरकार बड़ी दवा कम्पनियों से कुछ महंगी दवाएं खरीदने की बजाय अपनी जनता को कुछ 'सजातीय (generic) दवाएं उपलब्ध कराने के प्रयास कर रही है।

फ्रेंड्स प्रोविडेंट की पेंशन निधि का प्रबन्ध करने वाली फ्रेंड्स आइवरी साइम्स के पास 30 अरब पौंड की राशि प्रबन्ध–अधीन हैं और कम्पनी ने 1 अरब पौंड का निवेश जी एस के में किया है। कम्पनी के क्रेग मैकेंजी का कहना है: ''अगर करोड़ों अफ्रीकी उपचार योग्य बीमारियों के कारण मर रहे हैं और वह भी सिर्फ इसलिए कि दवा कम्पनियां अधिक मूल्य वसूल कर रही हैं, तो आपके प्रतिष्ठान की ख्याति को गम्भीर खतरा है।''[114]

फ्रेंड्स ने एक नैतिक निवेश नीति वक्तव्य जारी किया है जो निवेशकों को उन कम्पनियों में निवेश से रोकता है जो मुनाफे के लिए अपनी दवाओं के ऊंचे दाम तय करती हैं। इस तरह की नीति जी एस के जैसी कम्पनियों में निवेश संभावनाओं को कम करती है और इस तरह सामाजिक दृष्टि से ज़िम्मेदार पद्धतियों को प्रोत्साहित करती है। अन्य संस्थागत निवेशक ऐसे कदमों का अनुसरण कर रहे हैं। जी एस के ने हाल ही में 63 देशों में दवाओं के मूल्यों में कमी की घोषणा की है।[115]

cyan black

बंधुआ मज़दूरी का समर्थन – बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की शैली

हिन्दुस्तान लीवर या मोन्सान्टो जैसी किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी में काम करके आप कितना कमा पायेंगे? शायद आपको छह–अंकों में वेतन मिले, कम्पनी लीज़ पर शानदार बंगला रहने को मिले, इधर–उधर आने–जाने के लिए शोफ़र द्वारा चलाई जाने वाली कार मिले और व्यापारिक ग्राहकों का पांच सितारा होटल में आतिथ्य–सत्कार करने के लिए आपका खर्चा–खाता हो। पर हो सकता है कि आप गलत हों। फिर से सोचिये। संभावना तो यह भी है कि आप रोज़ाना 20 रुपये से भी कम कमा रहे होंगे, गायों के तबेले में सो रहे होंगे या खुले खेतों में बने अस्थायी तम्बुओं में रह रहे होंगे या सिरदर्द, सांस की तकलीफ और दौरा पड़ने जैसी बीमारी से ग्रस्त होंगे।

6–14 वर्ष तक की आयु के 53 हज़ार से अधिक बच्चे, जिनमें से अधिकतर लड़कियां होती हैं, आन्ध्रप्रदेश में महबूबनगर और कर्नूल जिलों के खेतों में रोज़ाना 8–13 घंटे कार्य करते हैं। इन्हीं खेतों से हिन्दुस्तान लीवर, मैहिको–मोन्सान्टो, एडवेन्टा, और सिंजेन्टा इंडिया जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को कपास का संकर बीज उपलब्ध होता है।[116] ये बच्चे सुबह 5 बजे से शाम 6 बजे तक खेतों में काम करते हैं। प्रवासी मज़दूरों के बच्चे तो इससे भी अधिक समय तक काम करते हैं। अधिक मेहनत से और अधिक समय तक काम करने के लिए प्रोत्साहन के तौर पर कभी–कभार बिस्कुट या चॉकलेट का टुकड़ा दे दिया जाता है या कुछ और उदारता दिखाते हुए महीने में दो बार स्थानीय सिनेमा हाल में फिल्म दिखा दी जाती है। एंडोसल्फान, मोनोक्रोटोफॉस और साइपरमेथ्रिन जैसे ज़हरीले कीटनाशकों के सम्पर्क में आने से इन बच्चों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है और स्वास्थ्य संबंधी समुचित देखभाल भी उन्हें उपलब्ध नहीं होती।

इन बाल श्रमिकों में से अधिकतर अपने माता–पिता द्वारा लिए गए कर्ज़ अदा करने के लिए साल–दर–साल उन्हीं खेतों में मज़दूरी करने वापस आ जाते हैं। अनुमान है कि 2 लाख से अधिक बच्चे कपास बीज उद्योग में बंधुआ मज़दूर बनाए गये हैं। यह भारत में बाल मज़दूरी पर आधारित सबसे बड़ा उद्योग बनता जा रहा है। इन बच्चों में से तीन–चौथाई दलित, आदिवासी, और अन्य पिछड़े वर्गों के हैं। इनमें से 60 प्रतिशत से अधिक स्कूली शिक्षा पूरी न कर पाने वाले बच्चे होते हैं जबकि एक चौथाई स्कूली शिक्षा से पूर्णरूप से वंचित हैं। दूसरी ओर, अधिकतर ज़मींदारों के बच्चे स्कूल जाते हैं और अपने खेतों में कभी काम नहीं करते। प्रौढ़ मजदूरों से केवल खेत जोतने, बीज बोने और कीटनाशक छिड़कने जैसे काम कराये जाते हैं।

आन्ध्रप्रदेश में कपास बीज आपूर्ति का 20 प्रतिशत बहुराष्ट्रीय निगमों के नियंत्रण में है जो भारत में 1990 के दशक में व्यापारिक उदारीकरण की नीति का नतीजा है। कपास के पौधों में हाथों से परागण के ज़रिए संकर बीजों का उत्पादन किया जाता है। इस तरह के बीज केवल एक बार इस्तेमाल किये जा सकते हैं, इसलिए इन बीजों की मांग को पूरा करने के लिए हर साल बीज पैदा किये जाते हैं। अधिकतर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इस बात से इनकार करती हैं कि वे बाल श्रमिकों से मज़दूरी कराती हैं। सरसरी तौर पर तो यह बात सही लग सकती है क्योंकि भारतीय कानून के अनुसार विदेशी कम्पनियां यहाँ ज़मीन नहीं खरीद सकतीं। बच्चे जिन खेतों में काम करते हैं उन पर न तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मालिकाना हक होता है और न उन्होंने इन्हें पट्टे पर लिया होता है। इस तरह तकनीकी दृष्टि से बहु राष्ट्रीय कम्पनियां खुद बाल–मजदूरों को काम पर नहीं रखतीं। बजाय इसके वे स्थानीय किसानों द्वारा उगाये गये बीज, बिचौलियों के ज़रिए खरीदती हैं। इन बिचौलियों को सम्मानसूचक भाषा में ''सीड ऑर्गनाइज़र'' कहा जाता है जो किसानों के लिए बीजों का आपूर्ति मूल्य तय करते हैं। ये किसान बाल श्रमिकों के माता–पिता के साथ उनकी मज़दूरी तय करते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने उत्पादों को सस्ते दाम पर बेचने के लिए आपूर्ति मूल्य कम से कम रखने का प्रयास करती हैं। स्थानीय किसान वयस्क मज़दूरों को काम पर नहीं रखते क्योंकि बाल मज़दूर सस्ते में मिल जाते हैं। बच्चों को मज़दूर के रूप में रखकर किसान मज़दूरी में 30–35 प्रतिशत की बचत कर लेते हैं। धनी किसान, बिचौलिए और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सभी इस फायदे से खुश है। अगर किसी को नुकसान हो रहा है तो वे हैं, बाल मज़दूर जिनके भविष्य की कीमत पर सबका कारोबार फल–फूल रहा है।

की अनदेखी की गई है कि अवसरवादी रोज़गार के ये छोटे 'अंतःक्षेत्र' (enclaves) हैं, जिन्हें बिना श्रमिकों की चिन्ता किए हटाया जा सकता है और अन्य स्थानों पर ले जाया जा सकता है। पूंजी का उदारतापूर्वक स्वागत किया जाता है, चाहे वह कहीं भी जाये, किन्तु प्रवासी श्रमिकों के बारे में ऐसा नहीं है। मेज़बान देशों में उन पर बहुत सारे कानूनी प्रतिबंध होते हैं और उनके साथ व्यवहार के स्तर पर भेदभाव किया जाता है। पूंजी

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

को एक बटन भर दबाकर एक देश से दूसरे देश में ले जाया जा सकता है और कम्पनियां अपनी व्यापार नीतियों के अनुकूल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने का फैसला कर लेती हैं। इसलिए कम्पनियां मजदूरों की स्वतंत्रता खरीद लेती हैं और विनिवेश की धमकी देकर या तो स्वयं मजदूरों द्वारा या सरकार द्वारा श्रमिकों की न्यायपूर्ण मांगों को अपने अनुकूल और भी उदार करा लेती हैं। अनेक देशों में समकालीन वैश्वीकरण की प्रक्रिया 'मुक्त' आर्थिक क्षेत्रों और विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए अनियमित बाजारों के विदेशी अन्तःक्षेत्रों की स्थापना के साथ शुरू हुई। इन अन्तःक्षेत्रों में न्यूनतम वेतन और संगठन बनाने के अधिकार के बारे में संरक्षणात्मक श्रम कानूनों को समाप्त कर दिया गया या उनमें संशोधन करके सत्ता–संबंध निगमों के पक्ष में कर दिया गया। श्रम के मुकाबले पूंजी, वाणिज्य और निगमों ने विश्वस्तर पर नीतियों और कार्यनीतियों को संगठित और समन्वित करने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अन्य संस्थाओं को बाहर रखने और प्रतियोगी क्षमता, पारस्परिक संबंधों और सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय और व्यापक संगठनों पर प्रभाव कायम रखने के लिए वाणिज्य मंडलों, उत्पादक–संघों का सहारा लिया है। मज़दूर अक्सर राष्ट्रीय सीमाओं में सीमित रहते हैं और अनुचित शर्तें मानने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। इससे उचित मज़दूरी, पेंशन और सुरक्षित कार्यस्थितियों की मांग करने की उनकी क्षमता कमज़ोर पड़ती है।

बाज़ार और समुदाय

तीसरी विषमता बाजारों और समुदायों के बीच है क्योंकि आने वाले वर्षों में विश्व अर्थव्यवस्था के समक्ष सबसे बड़ा खतरा यह सुनिश्चित करने का है कि अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण से घरेलू स्तर पर सामाजिक विघटन को बढ़ावा न मिले। बीसवीं सदी में बाज़ार की पहुंच और विफलताओं की परिणति पश्चिम में एक वर्ग समझौते (class compact) के रूप में हुई, जिससे अंततः सामाजिक लोकतांत्रिक व्यवस्था (social democracy) का विकास हुआ। इस समझौते की सार–वस्तु राजनीतिक और लोकतांत्रिक रूप से नियंत्रित बाज़ार था जिसमें न्यूनतम वेतन और सुरक्षित कार्यस्थितियों सहित मज़दूरों के अधिकार और उनकी सुरक्षा को मान्यता प्रदान की गई। सरकार द्वारा बुनियादी सेवाएं और सुरक्षाएं प्रदान की गईं और निगमों के बाहरी अस्तित्व और कामकाज को विनियमित किया गया। विभिन्न सामाजिक और आर्थिक समूहों के हितों के बीच मध्यस्थता करने और सामाजिक सम्बद्धता बनाए रखने के लिए संस्थानों और परंपराओं की स्थापना की गई।

जिस गति से वैश्वीकरण हो रहा है, उससे जहां एक तरफ वित्तीय अधिकारों, प्रौद्योगिकी क्षमता और बौद्धिक सम्पदा पर स्वामित्व में ऐतिहासिक अभिवृद्धि हुई है, वहीं दूसरी तरफ, विकासशील देशों की सरकारों की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति कमज़ोर पड़ी है और उनकी सौदेबाज़ी करने की क्षमता में कमी आयी है, तथा समाज की स्थिरता को लेकर इसके कई गंभीर नतीजे सामने आये हैं।

पहला यह कि बाज़ार के फैलती हुई सीमाओं ने उन समुदायों को –जिनका अब तक प्राकृतिक संसाधनों पर स्वायत्त नियंत्रण रहा है– निगमों के मुनाफे के लालच का शिकार बना दिया है। राष्ट्रीय कानून से मुक्त होने के कारण विश्वव्यापी बाज़ार समुदायों को अधीन बनाता है। इसका नतीजा अधिक सामाजिक ध्रुवीकरण, सामाजिक प्रतिबद्धताओं के क्षय और विघटन के रूप में सामने आता है। निगमों ने समुदायों की सम्बद्धता और एकता भंग कर दी है क्योंकि उनके सदस्यों को अलग–थलग करके संसाधनों पर नियंत्रण कर लिया गया है। वे अक्सर लोगों के वातावरण को बरबाद कर देते हैं और बदले में कुछ नहीं देते। इसके जाने–माने उदाहरण पापुआन्यूगिनी में 'मुख्यभूमि' पर बोगैंविल ताम्रखान और ऑक टेडी खान के दिए जाते रहे हैं। कुछ विशिष्ट स्थानों पर, जैसे बड़े बाग़ान या 'औद्योगिक स्थलों (कभी–कभी उन्हें 'कम्पनीटाउन' भी कहा जाता है) पर निगमों ने सरकार या प्रशासन के अनेक कार्य अपने हाथ मे ले लिए हैं और उनका लोगों के जीवन पर व्यापक प्रभाव है। लोगों के संसाधनों को निगमों द्वारा हथिया लेने से उनकी जीवन पद्धति का आधार नष्ट हो जाता है और उनकी जीविका के साधन छिन जाते हैं। सामुदायिक संपत्ति संसाधन समुदायों के नियंत्रण से निरन्तर बाहर होते जा रहे हैं और उन्हें व्यक्तिगत संपत्ति में तब्दील किया जा रहा है। यह अनेक जनजातीय और आदिवासी समुदायों का अनुभव रहा है। बड़ी परियोजनाओं से अक्सर समुदाय के समुदाय विस्थापित हो जाते हैं। वे कमज़ोर हो कई समस्याओं के शिकार बन जाते हैं और इन समस्याओं पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता।

दूसरा यह कि विनिमय और खरीद फरोख्त की स्वतंत्रता पर, जो बुनियादी स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है और जिसका लोगों के लिए विशेष महत्व होता है, विशेषाधिकार प्राप्त कम्पनियों द्वारा हमला किया गया है और उसे क्षति पहुंची है। कृषि, उत्पादन, व्यापार और सेवा क्षेत्रों का बाज़ार के लिए संगठन निजी स्वामित्व के 'समरूपीकृत' (homogenised) मॉडलों पर निर्भर है। इसका आधार वेतनभोगी मज़दूर प्रणाली है और यह पूरी व्यवस्था भारी उत्पादन तथा भारी खपत प्रक्रियाओं पर आधारित है। इन हालातों में, भारी पैमाने पर उत्पादन

cyan black

बारिश की नीलामी : बोलिविया में निजीकरण का अनुभव

एक ओर जहाँ दक्षिण एशियाई देशों की सरकारें जंगल, झील और चारागाह जैसे साझा संसाधनों को मिट्टी के मोल निजी उपक्रमों को देने में लगी हैं, वहीं बोलिविया में कोचाबाम्बा शहर ने निजीकरण की इस प्रक्रिया का विरोध किया है और लोकतांत्रिक तथा शांतिपूर्ण तरीकों से पानी पर फिर से लोगों का नियंत्रण स्थापित किया है।

दक्षिण अमेरिका के देश बोलिविया के सबसे बड़े शहर कोचाबाम्बा की आबादी 10 लाख से अधिक है। इनमें से 60 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में रहते हैं। पिछली आधी शताब्दी से इस शहर के लोगों को पानी की किल्लत से जूझना पड़ रहा था। हाल तक सरकार ने कोचाबाम्बा के लोगों के लिए उचित दर पर जल आपूर्ति की व्यवस्था कर रखी थी। इससे ग्रामीण क्षेत्रों के सब्ज़ी उगाने वाले किसानों तथा कोचाबाम्बा के शहरी गरीबों को जल आपूर्ति हो रही थी। 1998 में जब बोलिविया ने समग्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए संवर्धित संरचनात्मक समायोजन सुविधा (ESAF) अपनायी तो विश्व बैंक के 2.5 करोड़ अमेरिकी डॉलर के ऋण के साथ कोचाबाम्बा में जल सेवा के निजीकरण की शर्त भी जोड़ दी। जल आपूर्ति प्रणाली एक अमेरिकी कम्पनी बैकटेल को बेच दी गयी जिसने विभिन्न श्रेणियों के उपभोक्ताओं के लिए पानी के शुल्क में 35 से 300 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी कर दी। जिस देश में न्यूनतम मज़दूरी का राष्ट्रीय औसत 65 अमेरिकी डॉलर प्रतिमाह है, वहाँ मज़दूर परिवारों को अपनी आमदनी का एक तिहाई भाग पानी खरीदने पर खर्च करने को मजबूर होना पड़ा।

बोलिविया की संसद ने एक नया कानून पारित कर पानी को वाणिज्यिक वस्तु घोषित कर दिया। यहाँ तक कि गरीब से गरीब लोगों के लिए भी सार्वजनिक कुओं और नदियों जैसे पानी के परम्परागत स्रोतों से पानी लेने के लिए परमिट लेना आवश्यक हो गया। किसानों पर परमिट के बिना वर्षा जल के संचय के लिए टैंक बनाने पर पाबंदी लगा दी गयी। नये कानून और जल आपूर्ति की सुविधा उपलब्ध कराने वाली निजी कम्पनी के साथ हुए समझौते के चलते सरकार सभी नागरिकों को पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करने की अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो गयी।

1985 में बोलिविया में निजीकरण कार्यक्रम की शुरूआत के बाद सभी प्रमुख सार्वजनिक सेवाओं, जैसे सड़क परिवहन, रेलवे, विमान–सेवा और दूरसंचार का एक–एक करके निजीकरण कर दिया गया। जमीन, जंगल, और खान सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को पट्टे पर दे दिये गये। 1999 तक केवल पानी और हवा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कब्ज़े के बाहर थे। कई वर्षों से भारी बेरोज़गारी और महंगाई की मार झेल चुके लोगों की सहन सीमा पानी के निजीकरण और जल प्राप्ति पर पाबंदी लगाने से समाप्त हो गयी। पानी के निजीकरण के विरूद्ध जनता के विरोध को स्वर देने के लिए किसानों, शहरी व ग्रामीण जल उपभोक्ता समितियों, पर्यावरण–संरक्षण के लिए आंदोलन चलाने वाले समूहों, अध्यापकों, विद्यार्थियों और मज़दूर संगठनों ने 'जल और जीवन की रक्षा के लिए समन्वय समिति' नाम के गठबंधन का निर्माण किया। इस गठबंधन ने शहरों और गांवों के उपेक्षित गरीबों में जागरूकता पैदा करने तथा सरकार पर उनकी मांगों पर विचार करने के लिए दबाव डालने के उद्देश्य से सार्वजनिक सभाएं आयोजित की और राष्ट्रव्यापी जनमत संग्रह कराया। जनवरी और अप्रैल 2000 के बीच इस जनांदोलन की ओर से शांतिपूर्ण तरीके से हड़तालें की गयीं और सड़कों पर चक्का जाम किया गया।

आखिरकार सरकार को झुकना पड़ा और उसने बैकटेल की सहायक कम्पनी के साथ हुए समझौते को रद्द कर दिया। 1999 के जल कानून में संशोधन किया गया और पानी को लोगों की प्राकृतिक विरासत मानते हुए उस पर जनता का अधिकार बहाल कर दिया गया। कोचाबाम्बा ने सामुदायिक भागीदारी पर आधारित जल प्रबंधन व्यवस्था अपनाई। आवश्यक सेवाओं के प्रबंधन के सरकारी अनुभव और उसके बाद निजी कम्पनी द्वारा जल प्रबंधन के अनुभव को देखते हुए जन–संघर्ष के दौरान विकसित हुआ नया मॉडल साझी संपत्ति वाले संसाधनों के प्रबंधन में जवाबदेही सुनिश्चित करने का सबसे कारगर तरीका साबित हुआ। आज कोचाबाम्बा की जल–आपूर्ति प्रणाली की देखरेख –एक संचालन दल द्वारा किया जाता है जिसके सदस्य गुप्त मतदान के ज़रिए जनता द्वारा चुने जाते हैं । पानी का शुल्क ढांचा भी तर्कसंगत रखा गया है ताकि गरीब भी इसका फायदा उठा सके। कम्पनी का श्रम संगठन भी प्रबंधन में भागीदार है। बोलिविया के लोगों ने पानी जैसी सामाजिक वस्तु का साझा अधिकारों के लोकतांत्रिक तरीके से उपयोग करने का रास्ता दिखाया है।[117]

किफायती दामों पर करने की क्षमता न होने के कारण पहले से ही कमज़ोर आर्थिक स्थिति वाले छोटे सेवाप्रदाता, उत्पादक, किसान और कामगार–बाज़ार में नहीं टिक पाते। जो लोग विविध छोटे, आत्म–निर्भर उद्यमों को चलाते हैं, उन्हें सुविधा प्राप्त प्रतिद्वंद्वियों द्वारा पराजित कर दिया जाता है।

अधिकारों का चुनिंदा इस्तेमाल

चौथी विषमता विभिन्न प्रकार के ऐसे अधिकारों के बीच है जिन्हें वैश्वीकरण की विचारधारा का समर्थन प्राप्त है, जैसे सामाजिक अधिकारों पर बाजारोन्मुखी अधिकारों को प्राथमिकता; संपत्ति, निवेश और व्यापार अधिकारों को समानता, श्रम की गतिशीलता, सामाजिक

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

न्याय और समुदायों के अधिकारों से ज्यादा वरीयता दिया जाना। इसका विशिष्ट प्रभाव उस समय स्पष्ट दिखाई देता है जब हम संपत्ति अधिकारों, खासकर 'बौद्धिक सम्पदा अधिकारों' (Intellectual Property Rights - आईपीआर) के प्रति पूर्वाग्रह देखते हैं।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार ताकत का ऐसा साधन है जिसको प्राप्त करने वाले अन्य आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण या प्रभाव हासिल कर सकते हैं। यह काफी हद तक स्पष्ट किया जा चुका है कि गरीब राष्ट्रों को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से कम लाभ पहुंचता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को व्यापक संरक्षण दिए जाने का अर्थ है कि बड़े पश्चिमी निगमों का औद्योगिक विकास और विकासशील देशों के साथ आयात और निर्यात पर सुदृढ़ नियंत्रण है। अनुमान लगाया गया है कि दुनियाभर में तमाम पेटेंटों में से 97 प्रतिशत पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्ज़ा है और अमेरिका तथा यूरोप की केवल छह बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में से 70 प्रतिशत पर कब्ज़ा जमाए हैं।[118] इन अधिकारों द्वारा पहले से अमीर देशों और निगमों को रॉयल्टी के रूप में भारी धन प्राप्त होता है, जबकि दूसरी ओर, विकासशील देशों की अनुसंधान और प्रयोग करने की क्षमता कमज़ोर पड़ती है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार नियमों को मानने वाले राष्ट्रों ने यह महसूस किया है कि वे औद्योगिक, प्रौद्योगिकी और व्यापार संबंधी नीतियों के मामले में प्रतिबंधित हो जाते हैं। भागीदार देश में एक बार किसी आविष्कार या प्रक्रिया का पेटेन्ट होने के बाद सभी भागीदार राष्ट्रों में उसका इस्तेमाल या व्यापार पेटेन्टधारक द्वारा नियंत्रित किया जाता है–इस तरह पश्चिम का प्रौद्योगिकी संबंधी वर्चस्व और भी मजबूत हो जाता है।

अक्सर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से वे संसाधन और उत्पाद निजी स्वामित्व के दायरे में लाए जाते हैं जो अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र में थे और सभी लोगों को मुक्त रूप से उपलब्ध थे। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में बढ़ोतरी और उनके विस्तार से सामुदायिक संसाधनों पर नियंत्रण करने की कम्पनियों की क्षमता हाल के वर्षों में काफी बढ़ी है। विश्व ने जैव–विविधता के फायदों को बड़ी देरी से समझा है–सिर्फ इसलिए नहीं कि मनुष्य दर्पपूर्वक जीवन के अन्य रूपों को व्यर्थ न मान ले, बल्कि इसलिए भी कि पौधों और जीव–जन्तुओं से मानवता को लाभ है, जैसे सभी प्रकार की दवाओं से लाभ होता है।

विभिन्न मानव समुदायों का अस्तित्व मूलभूत रूप में उनके चारों ओर विद्यमान विविधतापूर्ण जीवराशि पर आधारित है। मानव जाति द्वारा प्रकृति पर हो रही अपरिवर्तनीय क्षतियों के बारे में बढ़ती हुई जागृति के कारण हाल ही में जैविक वैविधता के बारे में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। किन्तु, उसी दौरान अन्य अंतर्राष्ट्रीय समझौतों से उन हितों को खतरा उत्पन्न हो गया है जिनकी रक्षा के लिए जैव–विविधता संधि की गई थी। इनमें प्रमुख है – व्यापार संबंधी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights - ट्रिप्स) समझौता–जिससे पहले से ही कमज़ोर उन समुदायों के लिए, यह खतरा उत्पन्न हो गया कि वे उन प्राकृतिक संसाधनों का लाभ नहीं उठा

भारत : जैव–तस्करों का निशाना

भारत में करीब 45,000 ज्ञात पादप प्रजातियां पायी जाती हैं जिनमें से कई पौष्टिक आहार या औषधीय महत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। चिकित्सा की सुपरिचित आयुर्वेदिक पद्धति के अलावा जड़ी–बूटियों पर आधारित उपचार की कई देसी प्रणालियां इस उपमहाद्वीप में विकसित हुई हैं। आंवला, नीम, हल्दी, ब्राह्मी और आंगन के बगीचे में उगाये जाने वाले कई अन्य पौधे आम बीमारियों के इलाज में इस्तेमाल किये जाते हैं। जैव प्रौद्योगिकी और भेषज संबंधी अनुसंधान से इन जड़ी बूटियों से प्राप्त होने वाले रासायनिक यौगिकों और अनुवांशिक सामग्री को आर्थिक दृष्टिकोण से ज़बरदस्त महत्व मिला है। परम्परागत कानून के विपरीत ट्रिप्स समझौते में केवल सूक्ष्म जीवाणुओं, सूक्ष्म जीववैज्ञानिक तथा गैर–जैविक प्रक्रियाओं के पेटेंट की अनुमति दी गयी है। परिणाम स्वरूप 'जैव–पदार्थों का पूर्वेक्षण' (bio-prospecting) शुरू हो गया है। जो पहले मुक्त रूप से उपलब्ध सामुदायिक संसाधन थे, उनका 'पुनराविष्कार' होने लगा है और उन्हें पेटेंट कराया जा रहा है। इससे जो चीजें पहले सार्वजनिक उपयोग के लिए उपलब्ध थीं, वे अब निजी संपत्ति बन गयी हैं और लोगों को उपलब्ध नहीं हो रही हैं। हल्दी के घाव ठीक करने के गुण और नीम के पेड़ के कीटनाशक गुण के लिए हाल में अमेरिका में जो पेटेंट जारी किये गये हैं वे इसके उदाहरण हैं (भारत और बांगलादेश में सदियों से इन दोनों के बारे में लोगों को पता था और इनका उपयोग भी होता आया है।[119]

नीम की जैव तस्करी

नीम के पेड़ से प्राप्त होने वाले पदार्थों का उपयोग कई बीमारियों जैसे मधुमेह, पीलिया, गठिया और चर्म रोगों का उपचार करने में परम्परागत

रूप से किया जाता है। भारत और बांगलादेश में किसान फसलों और अनाज भंडारों को फफूंद और कीड़े–मकौड़ों से बचाने के लिए नीम के तेल का उपयोग करते हैं। 1995 में यूरोपीय पेटेंट कार्यालय ने अमेरिका के कृषि विभाग और 250 करोड़ अमेरिकी डॉलर की संपत्ति वाली अमेरिकी रसायन कम्पनी डब्ल्यू.जी. ग्रेस एंड कंपनी को नीम के तेल से बनने वाले कीटनाशक बनाने के लिए संयुक्त पेटेंट जारी किया। अगर इसे चुनौती नहीं दी जाती तो इस पेटेंट से किसान विभिन्न उद्देश्यों के लिए नीम के तेल और इसके मिश्रण से बनने वाले पदार्थ बनाने तथा उनका इस्तेमाल करने के अधिकार से वंचित रह जाते। इसकी जगह उन्हें ग्रेस एण्ड कम्पनी से उत्पाद खदीरने को मजबूर होना पड़ता और अगर वे ऐसा नहीं करते तथा घर में बना नीम का तेल इस्तेमाल करते तो उन्हें कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़ता। प्रसंगवश यह कम्पनी अमेरिका में एसबेस्टस विषाक्तता फैलाने, कुओं के पेय जल में ज़हरीले पदार्थ छोड़ने के लिए भी मशहूर है और पीड़ितों ने इसके खिलाफ 250,000 हर्जाने के दावे दायर कर रखे हैं ।[120]

भारत और यूरोप के पर्यावरण आंदोलनकारियों ने यूरोपीय पेटेंट कार्यालय में इस पेटेंट को चुनौती दी और किसानों तथा वैज्ञानिकों के कई हलफनामें यह साबित करने के लिए प्रस्तुत किये कि अमेरिका और ग्रेस एण्ड कम्पनी द्वारा पेटेंट का दावा करने से कई दशक पहले से नीम और उसके उपयोग के बारे में अनुसंधान चल रहा था और उनके दावे में कोई नयी बात नहीं थी।[121] मई 2000 में यूरोपीय पेटेंट कार्यालय ने पेटेंट वापस ले लिया। अपनी प्राकृतिक विरासत पर कब्ज़ा बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे विकासशील देशों की यह महत्वपूर्ण विजय थी। इसी कार्यालय द्वारा दिये गये नीम के 14 अन्य पेटेंटों तथा अमेरिका में दिये गये कम से कम 100 अन्य पेटेंटों को विभिन्न संगठनों और आंदोलनकारियों द्वारा चुनौती दी जा रही है।

हल्दी की जैव तस्करी

ग्रामीण भारत में हल्दी का उपयोग जख़्मों के इलाज में एंटीसेप्टिक के रूप में होता आया है। भारत और पाकिस्तान के व्यंजनों में भी आमतौर पर हल्दी का इस्तेमाल किया जाता है। 1995 में अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय ने हल्दी का पेटेंट मिसिसिपी विश्वविद्यालय के मेडिकल सेंटर को घाव को भरने वाले पदार्थ के रूप में हल्दी पाउडर के उपयोग संबंधी उसकी खोज के आधार पर दे दिया। भारत में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान के विकास के लिए गठित संस्था वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) ने इस पेटेंट को चुनौती दी। परिषद ने अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय के समक्ष जो प्रमाण प्रस्तुत किये उनमें चिकित्सा संबंधी प्राचीन ग्रंथों के अनुवादित अंश भी शामिल थे। इन साक्ष्यों से इस बात की पुष्टि होती थी कि भारत में हल्दी का उपयोग परम्परागत रूप से चिकित्सा में किया जाता रहा है और पेटेंट हासिल करने वाले की खोज में कुछ भी नया नहीं है। अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय ने यह तर्क स्वीकार कर लिया और 1997 में पेटेंट वापस ले लिया।[122]

बासमती की जैव तस्करी

पाकिस्तान और उत्तर भारत के हजारों किसान कई पीढ़ियों से लम्बे दाने वाला खुशबूदार बासमती चावल उगाते आये हैं। इसे बासमती के नाम से जाना जाता है। पाकिस्तान और भारत में फसल अनुसंधान संस्थान 1930 से बासमती चावल की गुणवत्ता और पैदावार में बढ़ौतरी के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। किसानों ने खुद भी इसकी नयी किस्में विकसित की हैं। पाकिस्तान में किसान परम्परागत विधियों से कम से कम 22 नयी नस्लें और भारत में 27 नई नस्लें उगा रहे हैं । इसके बावजूद, 1997 में एक अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी राइसटेक ने अपने उत्पादों के लिए 'बासमती' शब्द का उपयोग के लिए अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय से ट्रेड मार्क हासिल कर लिया। राइसटेक ने दावा किया कि उसने अपनी प्रयोगशालाओं में बासमती की नयी नस्ल का विकास किया है और पेटेंट हासिल कर लिया। इसका अर्थ यह था कि भारत और पाकिस्तान के किसान अपनी उपज के लिए बासमती शब्द का उपयोग नहीं कर सकते। इस तरह उसने बाज़ार में अपना एकाधिकार कायम करने के लिए भारतीय और पाकिस्तानी किसानों के योगदान की अनदेखी कर दी।[123]

पर्यावरण के बारे में जागरूक लोगों और वैज्ञानिकों ने भारत के उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की जिसमें अदालत से अनुरोध किया गया कि वह सरकार से इस पेटेंट को चुनौती देने को कहे। सन् 2000 में सरकार ने राइसटेक के पेटेंट हासिल करने के 20 में से तीन दावों को चुनौती दी। इसके बाद जब राइसटेक ने अमेरिकी पेटेंट और ट्रेड मार्क कार्यालय से अपने चार दावों को वापस लिया तो पेटेंट कार्यालय ने उसके सभी दावों को समीक्षा के लिए खोल दिया। मई 2001 में पेटेंट कार्यालय ने राइसटेक को बताया कि उसके सभी दावों में से तीन मौलिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरने के कारण अस्वीकार किये गये हैं।[124] इस अस्वीकृति के बावजूद राइसटेक 'बासमती' नाम से अपने उत्पादों की बिक्री कर सकता है। लेकिन भारतीय और पाकिस्तानी किसानों का इस प्रजातीय (generic) नाम का उपयोग करने का अधिकार सुरक्षित बना रहा।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

जैव विविधता कानून

पिछली सहस्राब्दिके अंत में सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई जनहित याचिका का सार्थक परिणाम यह हुआ कि अदालत ने देश की जैव विविधता के संरक्षण के लिए सरकार को कानून बनाने का निर्देश दिया। संसद द्वारा पारित 2002 के जैव विविधता कानून में देश में उपलब्ध पेड़–पौधों और वनस्पतियों के आनुवंशिक संसाधनों तक पहुंच को विनियमित करने के लिए राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण गठित करने की व्यवस्था की गयी है। भारतीय वैज्ञानिकों और कम्पनियों को अनुसंधान के लिए इन संसाधनों के उपयोग की छूट होगी, लेकिन उन्हें प्राधिकरण की अनुमति के बिना इस ज्ञान को विदेशी कम्पनियों को सौंपने की इजाज़त नहीं होगी। पर्यावरण के बारे में आंदोलन चलाने वालों ने नये कानून को जैव तस्करी पर कारगर रूप से रोक लगाने की दृष्टि से कमज़ोर बताया है।[125]

सकेंगे, जिन पर वे अब तक निर्भर रहे हैं और जिनकी पहचान उन्होंने सदियों के अपने ज्ञान और कौशल के आधार पर की है। उदाहरण के लिए, जनन–द्रव्य (germ plasm) में मामूली संशोधन करके और 'सस्य अभिजनकों के अधिकार' कानून के अंतर्गत उसे अपने नाम दर्ज़ कराके बड़ी कम्पनियों ने उस अनुसंधान के लाभों पर नियंत्रण कर लिया, जिसे सार्वजनिक वित्तपोषित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्रों द्वारा विकसित किया गया था, और उन्होंने बड़ी कंपनियों को जनन–द्रव्य सहित अपने अनुसंधान के निष्कर्ष बिना किसी लागत के उपलब्ध कराए थे। इस तरह बार–बार ऐसा हुआ कि सांझे उद्देश्यों के लिए प्रयोग किए जाने वाले सार्वजनिक धन का लाभ अनुचित अनुपात में निजी कम्पनियों द्वारा उठाया गया है। इसी तरह के एक कानून का इस्तेमाल दवाओं और अन्य प्रकार के ज्ञान और जनजातीय तथा अन्य समुदायों की विरासत पर नियंत्रण करने के लिए किया गया– और बाद में ऊंची लागत पर उन्हीं लोगों को बेच दिया गया।

एक तरफ ट्रिप्स समझौते और दूसरी ओर जैव विविधता समझौते मानवाधिकारों संबंधी सार्वभौम घोषणा और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों संबंधी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के बीच के तनावों ने उन तनावों को उजागर किया जो वैश्वीकरण के दौरान समग्रतापूर्ण मानावधिकार दृष्टिकोण न अपनाए जाने से पैदा हुए। वैश्वीकरण के लाभ बहुराष्ट्रीय निगमों और नुकसान विकासशील देशों के किसानों के हिस्से आ रहे हैं। अगर पेड़ पौधों की संकर नस्ल विकसित करने और जड़ी बूटियों से दवाएं बनाने में किसानों और जनजातीय समुदायों के योगदान का मूल्यांकन किया जाए तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को स्वदेशी ज्ञान प्रणाली पर आधारित जैव–पेटेंट हासिल करने के लिए विकासशील देशों को कई हज़ार करोड़ रुपये अदा करने होंगे।[126]

डब्ल्यूटीओ से संबंधित प्रावधानों की एक खास विशेषता यह है कि इसके सभी सदस्यों के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकार समान रूप से लागू हैं, चाहे उन्होंने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए हों या नहीं। विकासशील देशों के लिए इन अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के प्रभावों के असंतुलन को ध्यान में रखते हुए, अनेक देशों ने अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली से बाहर रहना उचित समझा या अपनी विधि प्रणाली में उन्हें संशोधित रुप में शामिल किया। अब दुनिया की प्रमुख दवाई कंपनियों द्वारा तैयार किया गया ट्रिप्स समझौता सभी देशों को बाध्य करता है कि वे इन समझौतों का अनुसरण करें और उन्हें राष्ट्रीय और विदेशी व्यक्तियों या निगमों के बीच बिना कोई भेदभाव किए लागू करें। कई विकासशील देश अब इसका अनुसरण कर रहे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकारों संबंधी मानदंडों के अनुसार अपने पेटेंट कानूनों को ढाल रहे हैं।

खाद्य आपूर्ति और वितरण के संदर्भ में ट्रिप्स की जटिलताओं की ओर पहले संकेत किया जा चुका है। अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र फार्मास्युटिकल्स है। ट्रिप्स सामान्य दवाओं के विनिर्माण या आयात का प्रबन्ध करने की राष्ट्रों की क्षमता में भारी कमी लाता है। नतीजा यह होता है कि दवाओं के मूल्यों में खासी बढ़ोतरी हो जाती है और उष्ण प्रदेश की बीमारियों के बारे में अनुसंधान में कमी आती है। पश्चिमी देशों में वैज्ञानिक और उत्पादन क्षमता के केन्द्रीकरण में भी और बढ़ोतरी होगी क्योंकि अंर्तराष्ट्रीय कम्पनियों को विकासशील देशों को सीधे प्रौद्योगिकी हस्तांतरण या विदेशी निवेश की बजाय तैयार या अर्ध–तैयार उत्पाद के निर्यात की छूट होगी। इस तरह चिकित्सा अनुसंधान और दवा विनिर्माण बाज़ार के अधीन हो जायेगा। 'मेडिसिन साँ फ्रांतियेर (Medicins sans Frontière) ने कहा है कि गरीब देशों में मरीज मर जायंगे क्योंकि जीवन बचाने वाली दवाओं तक उनकी पहुंच नहीं होगी और उपेक्षित बीमारियों के लिए

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

विकसित और विकासशील देश : पेटेंट विरोधाभास

दक्षिण एशिया में गरीबी का एक प्रमुख परिणाम यह भी है कि यहाँ विज्ञान और टेक्नोलॉजी के आधारभूत ढांचे का मामूली विकास हुआ है। करोड़ों अशिक्षित लोगों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने की ज़बरदस्त आवश्यकता की वजह से सरकारों के पास उच्च शिक्षा के लिए धन की लगातार कमी पड़ती जा रही है । अधिकतर अनुसंधान और विकास गतिविधियां सरकार द्वारा वित्तपोषित विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं में होता है। कुछ ही औद्योगिक घरानों की अपनी प्रयोगशालाएं हैं । दक्षिण एशियाई क्षेत्र में शिक्षित कुशल श्रम शक्ति का सबसे बड़ा संसाधन भंडार भारत के पास है। यहाँ के सबसे प्रतिभाशाली लोग आई आई टी और आई आई एम जैसी चोटी के संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जो करदाताओं के पैसे से चलते हैं, लेकिन नौकरी की तलाश और अनुसंधान के लिए प्रशिक्षित लोग विदेश चले जाते हैं। प्रवासी भारतीय अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी– नासा, कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी (कैल्टेक) और मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) जैसी संस्थाओं में ऊंचे पदों तक पहुंचे हैं। इन लोगों ने विज्ञान और टेक्नोलॉजी को समृद्ध करने और पश्चिम में विशेषज्ञों की दूसरी पीढ़ी के प्रशिक्षण में बड़ा अच्छा योगदान किया है। दक्षिण एशिया के अन्य देशों में भी अनुसंधान और विकास की स्थिति ज्यादा भिन्न नहीं है।

1994 मे मर्राकेश समझौते के हिस्से के तौर पर विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों ने व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा समझौते के प्रावधानों को स्वीकार किया। ट्रिप्स समझौते से विकासशील देश घाटे में हैं क्योंकि इसमें उनसे अपने पेटेंट कानूनों को समयबद्ध तरीके से अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकारों की व्यवस्था के अनुरूप बनाने को कहा गया है। इससे उन्हें अपने दरवाजे विदेशियों के लिए खोलने होंगे जो कि इन देशों में पेटेंट का दावा करेंगे जिससे स्वदेश में अनुसंधान हतोत्साहित होगा। स्वदेशी अनुसंधान में विशेषज्ञता हासिल करने के लिये अधिक समय और संसाधनों की ज़रूरत होती है। इस लिये सरकारें अल्पावधि की कामचलाऊ नीति अपनाते हुए पेटेंटों को मान्यता दे देती हैं क्योंकि उन पर ज़्यादा पैसा खर्च नहीं करना पडता। सहस्राब्दि परिवर्तन के समय यह अनुमान लगाया गया था कि ओ ई सी डी (Organisation for Economic Cooperation and Development) देश (जिनमें अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और यूरोपीय संघ के ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल और स्पेन जैसे देश शामिल हैं) दुनिया के 97 प्रतिशत पेटेंटों पर कब्ज़ा जमाए हुए हैं। इनमें से टेक्नोलॉजी और उत्पाद संबंधी 90 प्रतिशत पेटेंट विश्व स्तरीय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास हैं।[127] विकसित देशों में पेटेंट संबंधी कठोर शर्तों के कारण बहुत कम दक्षिण एशियाई लोग और संस्थाएं विदेशों में अपने पेटेंट के दावों में कामयाब रही हैं। हाल में भारत में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने अपना सौवाँ पेटेंट अमरिकी ट्रेडमार्क और पेटेंट कार्यालय से हासिल किया है।[128]

नागरिक समाज के मुखर विरोध के बावजूद दक्षिण एशियाई देश अपने पेटेंट कानूनों में संशोधन कर उन्हें ट्रिप्स मानदंडों के अनुसार ढाल रहे हैं। फिर भी पेटेंट के बारे में आंकड़ों से संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में स्थानीय लोगों की बजाय विदेशी एजेंसियों का बोलबाला है।

दर्ज़ किये गये पेटेंट : दक्षिण एशिया और विकसित देश –विरोधाभास[129]

देश	निवासियों द्वारा दर्ज़ कराये गए पेटेंटों की संख्या	गैर निवासियों द्वारा दर्ज़ कराये गए पेटेंटों की संख्या	देश	निवासियों द्वारा दर्ज़ कराए गए पेटेंटों की संख्या	गैर–निवासियों द्वारा दर्ज़ कराए गए पेटेंटों की संख्या
बांगलादेश	32	184	अमेरिका	1,56,393	1,38,313
भारत	14	38,348	ब्रिटेन	31,326	1,61,549
पाकिस्तान	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	जर्मनी	74,232	1,46,529
श्रीलंका	0	41,263	जापान	3,61,094	81,151

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

अनुसंधान और विकास का अभाव होगा।[130] ये मरीज इसलिए नहीं मर रहे हैं कि उनकी बीमारी लाइलाज है (एच आई वी/एड्स को छोड़कर), बल्कि इसलिए कि उपभोक्ताओं के रूप में वे ऐसा बाज़ार उपलब्ध नहीं करा सकते जिसमें फार्मास्युटिकल उत्पादों से पर्याप्त मुनाफा कमाया जा सके।

हाल ही में दक्षिण अफ्रीकी सरकार के खिलाफ एक मामला दर्ज किया गया था, लेकिन बाद में उसे वापस ले लिया गया। इसमें उसे एच आई वी/एड्स के लिए सामान्य दवाएं आयात करने से रोकने की मांग की गई थी। इससे ट्रिप्स के नकारात्मक प्रभावों का पता चलता है। हालांकि फार्मास्युटिकल कम्पनियां दक्षिण अफ्रीका में रियायतें देती हैं, लेकिन अन्य देशों, जैसे केन्या में वे इसका विरोध करती हैं। अब केन्या भी दक्षिण अफ्रीका की ही तरह का कानून बनाने जा रहा है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि 'संयुक्त राष्ट्र

दवाई की ताकत : विश्वस्तरीय औषधीय निगम

दुनिया भर में दवाओं की लगातार बढ़ती मांग के साथ–साथ बाज़ार का नियंत्रण कुछ विश्वस्तरीय निगमों के हाथों में केन्द्रित हो गया है। 1981 में चोटी की 10 दवा कम्पनियों का बाज़ार पर 20 प्रतिशत नियंत्रण था। पिछली सहस्राब्दि के अंत तक चोटी की 10 कम्पनियों ने 31,700 करोड़ अमेरिकी डॉलर के विश्व बाज़ार में से 48 प्रतिशत पर कब्ज़ा कर लिया था। लेकिन नयी दवाओं के विकास में निजी क्षेत्र का योगदान नाममात्र का ही रहा है। 1975 और 1996 के बीच 1200 नयी दवाएं व्यापारिक तौर पर जारी की गयीं। इनमें से केवल चार का विकास औषधि कंपनियों द्वारा हुआ था। बाकि दवाओं का विकास सार्वजनिक कोष से वित्तपोषित अनुसंधान संस्थाओं में किया गया। रेनबैक्सी, डॉ0 रेड्डीज़ लैब्स और सिप्ला जैसी शीर्षस्थ भारतीय दवा कम्पनियों की आमदनी का बड़ा हिस्सा विदेशों में बिक्री से आता है, मगर विश्व स्तर की भारी भरकम दवा कम्पनियों की ताकत और फैलाव के आगे ये बौनी लगती हैं। ये विशालकाय कम्पनियां अब भारतीय बाज़ार में अपनी पैठ बना रही हैं।[131]

दुनिया की 10 शीर्षस्थ कंपनियां[132]

कम्पनी	कुल बिक्री (करोड़ रुपये में)	भारत में बिक्री (करोड़ रुपये में)
फाइज़र	1,22,400	76ᵃ
ग्लैक्सो स्मिथक्लैन बीचम	1,19,040	98ᵃ
मर्क एण्ड कं0	1,02,480	10.6ᵃ
एस्ट्राज़ेनेका	79,104	23ᵇ
ब्रिस्टल–मायर्स स्क्विब	74,880	उपलब्ध नहीं
एवेंटिस	73,680	61ᵃ
जॉनसन एण्ड जॉनसन	71,520	उपलब्ध नहीं
नोवर्टिस	69,600	62ᵃ
फार्मेसिया	57,456	1.2ᵃ
इली लिली	55,392	उपलब्ध नहीं

a = लाभ b = शुद्ध आय

सभी आंकडे 2001–02 के लिए

भारत की 7 शीर्षस्थ कंपनियां[133]

कम्पनी	कुल आय (करोड़ रुपये में)
रैनबैक्सी	2,768
डॉ0 रेड्डीज़	1,584
सिप्ला	1,598
ल्यूपिन	1,121
सन फार्मा	995
वॉकहार्ट	810
कैडिला	679

सभी आंकड़े 2002 –03 के लिए

cyan black

जान की कीमत लगाना

ट्रिप्स ऐसी अनेक सार्वजनिक नीतियों पर प्रतिबंध लगाता है, जो सस्ती और व्यापक पहुंच वाली स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं को बढ़ावा देती हैं। कम दाम पर दवाएं उपलब्ध कराने और सजातीय दवाएं विनिर्माण की स्थानीय क्षमता बढ़ाने के लिए अनेक विकासशील देशों के राष्ट्रीय कानूनों में परम्परागत रूप में औषधियों और दवाओं के उत्पाद पर पेटंट को शामिल नहीं किया गया और केवल 'प्रक्रिया पर पेटेंट की अनुमति दी गई। ट्रिप्स के अंतर्गत उत्पाद और प्रक्रिया दोनों ही पर पेटंट अनिवार्य हैं। इससे इस बात की संभावनाएं हो जाती है कि स्थानीय कम्पनियां महत्वपूर्ण जीवन रक्षक दवाओं के सस्ते संस्करण बना सकें। 1998 में एड्स निवारक दवा फ्लूकान्जोल की कीमत भारत में प्रति 100 गोलियां (प्रत्येक 150 मि.ग्रा. की) 55 अमेरिकी डालर थी, लेकिन मलेशिया में 687 अमेरिकी डालर, इंडोनेशिया में 703 अमेरिकी डालर और फिलिपीन्स में 817 अमेरिकी डालर थी।[134]

मानवाधिकार उप–आयोग (U N Subcommission on Human Rights) ने मानवाधिकार कानूनों के साथ ट्रिप्स को रखने के औचित्य पर सवाल उठाया है। उसने पाया है कि ट्रिप्स के नेतृत्व में निजी क्षेत्र के बौद्धिक सम्पदा अधिकारधारकों और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून में वर्णित 'सामाजिक' या 'सार्वजनिक' सरोकारों के बीच बहुत बड़े अन्तर्विरोध हैं। विकासशील देशों में सजातीय औषधियों ने कम खर्च पर दवाइयां उपलब्ध कराने और प्रौद्योगिकी तथा उत्पादन का आधार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सजातीय दवाओं पर पेटेंटिड दवाओं की लागत का एक हिस्सा (कभी–कभी तो मात्र 10 प्रतिशत) मात्र खर्च होता है। इससे प्रतिस्पर्धा के जरिए पेटेंटिड दवाओं की कीमतों में कमी लाने में मदद मिली है।

ऊपर वर्णित सभी तरीकों से समुदायों पर वैश्वीकरण का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके देशों की सरकारों, निवेशकों और मेजबान देश के विशिष्ट वर्ग, निगमों और व्यावसायिक संघों–जैसे लेखाकारों, इंजीनियरों और वकीलों–तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय और व्यापार संगठनों व अंतर्राष्ट्रीय मीडिया के बीच संबंधों को नया रूप प्रदान किया है। इन समीकरणों ने अक्सर ऐसे विचारों को दबाने की कोशिश की है जो वैश्वीकरण को चुनौती देने वाले या उसकी आलोचना करने वाले हों। साथ ही उन्होंने वैश्वीकरण का शिकार हुए लोगों को प्रभावी ढंग से दरकिनार करने की कोशिश की है। गरीब देश एक वैश्वीकृत संसार में अपने हितों की रक्षा करने की क्षमता और कौशल शायद ही विकसित कर पाएं।

इन हालात को देखते हुए विश्व आज विभाजित नज़र आ रहा है।[135] मानवता का एक भाग फल–फूल रहा है–साफ शब्दों में कहें तो वैश्वीकरण के प्रकाश में धूप सेंक रहा है–जबकि दूसरा भाग निरन्तर गहराती जा रही उदासी और निराशा में डूबता जा रहा है।[136]

वास्तव में इस समय वैश्वीकरण की मूलभूत विचारधारा और सार्वभौम रूप में स्वीकृत मानवाधिकारों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय, राष्ट्रों की सरकारों, नागरिक समुदाय और मानवाधिकार समुदाय के सामने चुनौती यह है कि मानवाधिकार लाभ कमाने के लक्ष्य के अधीनस्थ न हो जायें और वैश्वीकरण के इंजिन, उसके कानून, संस्थान, प्रक्रियाएं और नतीजे सभी मानवाधिकारों के अनुकूल हों। महत्वपूर्ण सवाल यह नहीं है कि तीव्र परिवर्तन की प्रक्रियाएं, जो हम अनुभव कर रहे हैं, अनिवार्यतः अच्छी हैं या बुरी, बल्कि मुद्दा यह है कि वे मानवाधिकारों को कितनी मान्यता देती हैं और उनके लिए कितना काम कर पायेंगी। इस तरह से मानवाधिकारों का वैश्वीकरण अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहार का केन्द्रबिंदु बन जायेगा और उसी के साथ, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण मानवाधिकारों के अनुकूल हो जायेगा।

भ्रष्टाचार और कुप्रशासन

वैश्वीकरण के युग में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और सुशासन के बीच खाई बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय सरकारों के प्रशासन और तौर–तरीके निजी हितों की तुलना में सामाजिक न्याय और जनकल्याण के प्रति निरन्तर कम ज़िम्मेदार होते जा रहें हैं। विशिष्ट वर्ग द्वारा अपने हित–संरक्षण के कारण प्रणालियां पारदर्शी नहीं हैं और वास्तव में गोपनीयता पर जीवित हैं। इससे भ्रष्टाचार का जन्म होता है जो बिना रोकथाम के जारी रहता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया स्वयं भ्रष्टाचार का कारण बन गई है क्योंकि बहु–दलीय राजनीति में धन का खेल निरन्तर जारी रहता है और सत्ता का केन्द्र अमीर, लफ़्फ़ाज़ और गैर–राष्ट्रीय नेताओं की ओर सरकता जा रहा है। निजीकरण, विदेशी निवेश, प्रायोजित प्रबन्ध, निहित स्वार्थों के लिए समर्थन जुटाने की बढ़ती प्रवृत्ति, धन का मुक्त प्रवाह और बरबादी, सभी भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

भ्रष्टाचार अब व्यापक होता जा रहा है। इसके कई रूप हैं, जैसे रिश्वत, लूट–खसोट, भाई–भतीजावाद, अनुचित भर्ती और पदोन्नति, चुनावी हथकंडे (गोलमाल करना, धांधली), और संवैधानिक या अन्य दायित्वों का अपर्याप्त निर्वाह या बिल्कुल निर्वाह न किये जाना। सरकार में भ्रष्टाचार और उसकी कार्यप्रणाली में नौकरशाही का उस समय पता चलता है जब वे जन–कल्याण में रुकावटें डालने पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं और अपने कानूनी दायित्वों का पालन करने की बजाय निजी लाभ उठाने में लिप्त होते हैं। सरकार की नीतिगत प्राथमिकताओं में नैतिकता का अभाव झलकता है और अक्सर ऐसे खर्च किए जाते हैं जो लोगों की जरूरतों के मुताबिक नहीं होते। मामूली सार्वजनिक सेवाओं, जैसे जन्म प्रमाणपत्र के लिए आवेदन पत्र प्राप्त करने या सार्वजनिक वितरण प्रणालियों में राशन की दुकानों से अनाज का कोटा प्राप्त करने के लिए, रिश्वत एक पूर्व–शर्त बन गई है। नतीजा है प्रशासन में भारी अकुशलता।

कैसे जारी है गरीबी...

गरीबी कोई स्वाभाविक स्थिति नहीं है। गरीबी की गाड़ी बहुत से लोगों के सहारे ही आगे बढ़ती है। इसके लिए भ्रष्टाचार का बरकरार रहना ज़रूरी है। यह ज़िम्मेदारी कुछ देश औरों के मुकाबले बेहतर निभाते हैं। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल का प्रसिद्ध भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक (corruption perception index - सीपीआई) दुनिया भर में भ्रष्टाचार को उजागर करता है और इसके बढ़ने के बारे में जानकारी देता है।[137] मार्च 2003 में बनाई गई सूची में से लगभग दो तिहाई देशों ने 5 से कम अंक प्राप्त किये (जबकि 10 अंक तक के स्कोर वालों को संभावित रूप से भ्रष्टाचार मुक्त माना गया है)। इनमें से अधिकतर देश विकासशील देश हैं। बांगलादेश सबसे अधिक भ्रष्ट देश आंका गया जिसका भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक 1.2 है। इसके बाद नाइजीरिया का स्थान था जिसका सूचकांक 1.6 है। दोनों ही देश राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं। दक्षिण एशिया में श्रीलंका सबसे कम भ्रष्ट देश माना गया जिसका सूचकांक 3.7 है। इसके बाद 2.7 अंक के साथ भारत का स्थान है और 2.6 अंक पाकर पाकिस्तान भारत के पास ही है।

आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिक धनी देशों का सूचकांक बेहतर पाया गया । ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया 8 अंकों के साथ बेहतर स्थिति में हैं मगर वे 9 से अधिक लेने वाले सिंगापुर, न्यूज़ीलैंड और कनाडा से पीछे हैं। सिंगापुर के भ्रष्टाचार विरोधी कायदे–कानूनों का उसकी लगातार बढ़ती खुशहाली में बड़ा योगदान है। राष्ट्रमंडल के विकासशील देशों में 6.4 अंक के साथ बोत्सवाना सबसे कम भ्रष्ट है और उसके बाद 5.7 अंक वाले नामीबिया का स्थान है।

भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक भ्रष्ट सरकारों के नाम बताकर उन्हें शर्मिन्दा करने का तरीका भर नहीं है। इसका कारगर उपयोग करके स्थानीय लोग इसका असर बढ़ा सकते हैं। 2001 में जब भ्रष्टाचार संबंधी आंकड़े जारी किये गये, जिनमें बांगलादेश को भ्रष्ट देशों की सूची में सबसे ऊपर चोटी पर दर्शाया गया, तब वहां राष्ट्रीय चुनाव होने वाले थे। विपक्षी पार्टियों ने भ्रष्टाचार को प्रमुख चुनावी मुद्दा बनाया जिससे अंततः आवामी लीग पार्टी सत्ता से बाहर हो गयी। श्रीलंका में 2001 के चुनाव में भ्रष्टाचार प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा और रणिल विक्रमसिंघे की नयी यू.एन.पी सरकार प्रत्येक मंत्रालय में भ्रष्टाचार और संसाधनों की बरबादी के आरोपों की समीक्षा के लिए कमेटियां बनाने के वादे के साथ सत्ता में आयी है। पाकिस्तान की सरकार ने भी सरकारी सेवाओं में सुधार के प्रयासों के रूप में भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसी गठित करने का वादा किया है।

भ्रष्टाचार गरीबों पर एक तरह का कर बन गया है। भ्रष्टाचार गरीबों के अधिकारों का हनन करता है, भागीदारी के अधिकार से उन्हें वंचित करता है और आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण तक उनकी पहुंच को रोकता है। यह उनकी अक्षमताओं को और बढ़ाता है, क्योंकि उनके पास नौकरशाही के पहिए में चिकनाई डालने के साधनों का अभाव होता है। इस तरह यह समाज में वर्गभेद और असमानताओं को बढ़ाता है। पहले से धनवान और साधन–सम्पन्न लोगों को और भी सुविधाएं देता है। भ्रष्टाचार से सामूहिक लक्ष्य वाले व्यवहार्य संस्थान के रूप में राज्य के अस्तित्व को भी खतरा पैदा होता है, क्योंकि इससे उसकी समूची विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है। कुछ मामलों में राज्य अपने अधिकार क्षेत्र में ही शक्तिहीन हो जाता है क्योंकि वह अपने को अवैध हितों के जाल से जोड़ लेता है। इससे गरीबों के हितों की रक्षा में और भी रुकावटें पैदा होती हैं और कष्ट निवारण का कोई अवसर शेष नहीं रहता। नतीजा यह होता है कि लोग लापरवाह हो जाते हैं और समाज में निराशावाद और स्वार्थ को बढ़ावा मिलता है। भ्रष्टाचार नागरिकों और सरकार के बीच विश्वास भंग कर देता है।

भारत में कुशासन : भ्रष्टाचार के आयाम और फैलाव

भारत के कई भागों में एक रिवाज़ है जिसमें मित्र और संबंधी किसी नवजात शिशु को पहली बार देखने पर उसके माता–पिता को उपहार भेंट करते हैं। इस तरह की मुख दिखाई पर रस्म के तौर पर सवा रुपये से लेकर कोई भी सवाया राशि, चांदी/सोने के सिक्के या देने वाले की सामाजिक–आर्थिक हैसियत के हिसाब से कोई भी महंगी चीज उपहार में दी जा सकती है। बंगलौर में सार्वजनिक प्रसूति चिकित्सालयों के कर्मचारियों ने तो ऐसा लगता है कि इस प्रथा को आर्थिक लाभ के लिए संस्थागत रूप ही दे दिया है। अगर आप नगर निगम द्वारा चलाए जा रहे ऐसे किसी अस्पताल में भर्ती महिला हैं, तो आप प्रसव के बाद अपना नवजात शिशु तब तक नहीं देख पाएंगी, जब तक आप वार्ड में काम करने वाले सेवक को रिश्वत नहीं दे देतीं। अगर माता–पिता पैसा देने में कोई आना–कानी करते हैं तो इसकी पूरी आशंका है कि वार्ड के कर्मचारी किसी दूसरे के साथ आपका बच्चा बदल सकते हैं।

ये अस्पताल गरीब और कम आमदनीवाली महिलाओं के फायदे के लिए खोले गए हैं। इनमें रोगियों को मुफ्त दवा देने की भी व्यवस्था है। लेकिन डॉक्टर की पर्याप्त देखभाल और बताई गयी दवाएं प्राप्त करने के लिए प्रत्येक रोगी को औसतन 1000 रुपये से अधिक देने होते हैं। एक गैर सरकारी संगठन द्वारा कराए गए सर्वेक्षण के इस निष्कर्ष से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राज्य की लापरवाही से किस तरह लोक सेवक गरीबों से पैसा ऐंठते हैं।[138]

ऐसा अनुमान है कि स्वास्थ्य क्षेत्र देश में भ्रष्टतम क्षेत्रों में दूसरे स्थान पर है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल इंडिया द्वारा कराए गए नागरिकों की धारणा संबंधी एक सर्वेक्षण से भारत में कुशासन (यानि भ्रष्ट शासन) की स्थिति का पता चलता है।[139]

- जनता पुलिस विभाग को सभी सरकारी विभागों में सबसे अधिक भ्रष्ट मानती है। इसके बाद स्वास्थ्य, बिजली और शिक्षा क्षेत्र आते हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली, भूमि राजस्व विभाग, न्यायपालिका, कर वसूली विभाग और रेलवे इसके बाद आते हैं। जनता की नज़र में दूर–संचार विभाग सबसे कम भ्रष्ट है।
- उत्तरी राज्य सबसे अधिक भ्रष्ट माने जाते हैं जहाँ नागरिकों की जेब का 39 प्रतिशत धन जन–सेवकों के पास चला जाता है, जबकि पश्चिमी राज्यों में केवल 11 प्रतिशत राशि इस तरह खर्च होती है।
- गरीब लोगों को अपने कानूनी हक जैसे राशन कार्ड बनाने, स्कूलों में दाखिला दिलाने, भू–अभिलेख की प्रतियाँ प्राप्त करने या उसमें परिवर्तन करने, प्रथम सूचना रिपोर्ट (First Information Report - FIR) दर्ज़ कराने, फर्ज़ी गिरफ्तारी से बचने, कोर्ट के रिकार्ड की प्रतिलिपि प्राप्त करने और अन्य सेवाओं के लिए सालभर में 3,900 करोड़ रुपये देने पड़ते हैं।
- वर्ष 2001–2002 में भारतीय नागरिकों ने रिश्वत के रूप में 26,768 करोड़ रुपये दिये जो सरकारी कर्मचारियों की कुल तनख्वाह के 10 प्रतिशत से अधिक है। इन आंकड़ों में मीडिया द्वारा लोगों के सामने लाये गये कई करोड़ रुपये का शेयर बाज़ार घोटाला, बोफोर्स घोटाला, रक्षा सामग्री की खरीदारी में घोटाला, हवाला घोटाला और इसी तरह के उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार शामिल नहीं हैं जिसमें सरकार और व्यापारी के बीच सम्पर्क होता है।
- 1,000 करोड़ से अधिक की आबादी पर शासन चलाने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारें और पंचायत तथा नगरपालिकाओं जैसे स्थानीय निकायों में 1.9 करोड़ कर्मचारियों को काम पर लगाया हुआ है। इनमें से 90 प्रतिशत तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी हैं जिन्हें निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता और जो छुट–पुट भ्रष्टाचार का स्रोत होते हैं । भ्रष्टाचार का प्रमुख स्रोत तो प्रथम और द्वितीय श्रेणी के वे 20 लाख अधिकारी हैं जिन्हें व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। दूसरे शब्दों में 2 प्रतिशत जनता को देश के हितों को नुकसान पहुंचाकर गैर–कानूनी तरीके से स्वार्थ सिद्ध करने का अधिकार प्राप्त है।

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने भारत को दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों में 30 वें स्थान पर रखा है जिसका भ्रष्टाचार अनुमान सूचकांक 2.7 है।[140] 1999 के बाद भारत की रेटिंग 2.9 से और नीचे आ गयी है। ऐसे में इस बात में कोई आश्चर्य नहीं है कि आज़ादी के बाद के कुछ वर्षों में सरकार पर जनता का जो भरोसा था, वह आज नहीं रह गया है।

सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास का अनुकूल वातावरण विकसित करने के लिए भ्रष्टाचार को समाप्त करना और कल्याणकारी शासन को प्रोत्साहित करना बड़ा ज़रूरी है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र समिति (सीईएससीआर) ने अनेक बार मानवाधिकारों पर भ्रष्टाचार के नकारात्मक प्रभावों के बारे में टिप्पणी की है। एक अफ्रीकी राज्य के बारे में समिति ने कहा था कि ''सरकारी संस्थानों की कार्यप्रणाली में व्यापक भ्रष्टाचार के नकारात्मक प्रभावों से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों में व्यवधान आये हैं।'' एक अन्य अवसर पर समिति ने टिप्पणी की थी कि ''बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था वाले एक लोकतांत्रिक देश में बदलाव होने की प्रक्रिया पर भ्रष्टाचार, संगठित अपराध, कर–चोरी और नौकरशाही की अकुशलता का प्रतिकूल असर पड़ता है, जिसका नतीजा यह होता है कि समाज–कल्याण खर्च और सरकारी क्षेत्र में वेतन के भुगतान के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध नहीं रहता।[141]

सुधारों की अंतर्राष्ट्रीय कार्यसूची में भ्रष्टाचार दूर करने को काफी वरीयता दी गई है। सहायता और ऋणों के साथ भ्रष्टाचार दूर करने संबंधी अनेक शर्तें लगाई गई हैं। अभी तक उनसे सीमित सफलता ही मिल पायी है, क्योंकि कुछ देशों के राजनीतिक और आर्थिक जीवन के ताने–बाने में भ्रष्टाचार की गहरी पैठ है। प्रशासनिक सुधार लागू कराने के प्रयासों को पूर्ण समर्थन न मिल पाने के पीछे एक संदेह दानदाताओं के उद्देश्यों के प्रति होता है। उनके बारे में यह समझा जाना स्वाभाविक है कि वे अपनी कम्पनियों के शीघ्र लाभ का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अनुकूल स्थितियां पैदा करना चाहते हैं क्योंकि वे चुनिंदा क्षेत्रों में (न कि पूरी प्रशासन) सुधार लागू कराना चाहते हैं। उन्हें इन्साफ तथा न्यायुक्त वितरण प्रणाली की चिंता नहीं होती। इन शर्तों के लिए बार–बार एसएपीज़ शुरू किए जाते हैं, जिनसे गरीबों की हालत और भी खराब हो जाती है। पेटीफर का कहना है कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की तथाकथित गरीबी 'कम करने की रणनीति' (जो विशेष सहायता कार्यक्रमों की आलोचना को देखते हुए शुरू की गई थी), वास्तव में गरीबी हटाने और नागरिक समाज की भागीदारी की नीति कम है और विदेशी निवेशकों के लिए सुरक्षा और गारन्टी उपलब्ध कराने की नीति अधिक है। वे कहती हैं कि पश्चिमी 'दानदाताओं' के हस्तक्षेप से उस देश में लोकतंत्र को ज़्यादा नुकसान पहुंचाता हैं, ''और वह सरकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक भागीदारी को नष्ट करता है।''[142]

मानव कल्याण के प्रति समकालीन खतरे

गरीबों की आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करने और उनके मानवाधिकारों को पूरा करने में अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय निकायों की विफलता की वजह से व्यापक शोषण, बीमारी, संघर्ष और पर्यावरण विनाश जैसी समस्याएं पैदा हुई हैं और बनी हुई हैं। ये सब गरीबी की कारण भी हैं और उसका परिणाम भी।

सामाजिक संरचनाएं

विश्व के अनेक हिस्सों में परम्परागत सामाजिक संरचनाओं के कारण गरीबी कायम है। उदाहरण के लिए, भारत में जाति प्रथा भेदभाव के सिद्धान्त पर आधारित है और 'बहिष्करण' (exclusion) जीवन शैली बना हुआ है। देश में समतावादी संविधान है, जिसमें 'अस्पृश्यता' का अंत किया गया है और अस्पृश्यता को अपराध माना गया है। रचनात्मक कार्य और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समान भागीदारी के प्रावधान होने के बावजूद, दस करोड़ से अधिक दलितों का सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार लगातार जारी है। 'दलित' शब्द–जो स्व–परिभाषित है – के अर्थ से पता चलता है कि यह उन लोगों के लिए है जो पीढ़ियों से ऐसी जातियों के हैं, जो तथाकथित 'अपवित्र' कार्य करती रही हैं। इनमें शौचालयों की सफाई, मल ढोना, मरे पशुओं की खाल उतारना और उन्हें ठिकाने लगाने जैसे कार्य शामिल हैं। समाज की मुख्यधारा से इन जातियों को जिस तरह अलग रखा गया है उसे देखकर 'रंगभेद' (Apartheid) की याद ताज़ा हो जाती है। ये समुदाय अपने गांवों में नियत स्थानों, गंदे और कम सुविधाओं वाले इलाकों में रहते हैं। उन्हें सामान्य कुओं से पानी लेने या मन्दिरों में प्रवेश तक की आज़ादी नहीं है। उनका दर्जा और उनकी भूमिका हिन्दू समाज की रीति–नीति के आधार पर परिभाषित की गयी है और उसके समर्थन में धर्मग्रन्थों का हवाला दिया जाता है। कम वेतन और अकुशल व्यवसायों तक सीमित इन जातियों की पहुंच शिक्षा और अन्य सुविधाओं तक नहीं है। अगर यह संभव होता तो वे निश्चित रूप से गरीबी से ऊपर उठ सकती हैं, जो इस भेदभाव

का ही उत्पाद है। इन समुदायों का अपने को गरीबी के अभिशाप से बचाने या अपने बुनियादी अधिकार हासिल करने के सामूहिक प्रयासों को ऊँची जाति के हिंसात्मक तत्वों द्वारा कई बार कुचल दिया जाता है। लगातार यातना और दमन से जुड़ी उनकी सामाजिक स्थिति उन्हें दूसरों की और स्वयं की नज़रों में आत्मसम्मान रहित बना देती है। राज्य की रचनात्मक नीतियों, वैधानिक और प्रशासनिक उपायों को केवल सीमित सफलता ही मिल पायी है क्योंकि सामाजिक क्षेत्र में व्यापक स्तर पर भेदभाव बना हुआ है।

जो दलित खेती करते हैं, उनमें से केवल एक चौथाई ही ज़मीन के मालिक हैं। करीब 50 प्रतिशत दलित भूमिहीन खेत मज़दूर हैं। अन्य समुदायों की तुलना में दलितों में गरीबी का स्तर ऊंचा है (देखिए सारणी–11)। 36–38 प्रतिशत दलित गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करते हैं।[143] गरीबी और शोषण पर आधारित परम्पराओं से मजबूर होकर सबसे नीची जातियों (गुज़रात तथा उत्तरी और पश्चिमी भारत में भंगी से लेकर तमिलनाडु में सिक्कलियर समुदाय तक) को इंसान का मल मूत्र हाथ से साफ करके अपनी आजीविका कमानी पड़ रही है। शौचालयों वाली सुविकसित जल–मलव्ययन प्रणाली न होने के कारण गांवों और कस्बों के कई लोगों को जल रहित शौचालयों का ही इस्तेमाल करना पड़ता है। इनकी सफाई हर रोज़ हाथों से करनी पड़ती है। यह काम समाज के सबसे निचले स्तर के कमज़ोर सामाजिक समूहों पर थोप दिया जाता है। इससे जाति व्यवस्था में उनका निचला स्थान और भी पक्का हो जाता है। जिससे वे ऊंची जातियों की नज़र में किसी भी अन्य काम के लिए अयोग्य हो जाते हैं। हाथों से मैला उठाने तथा जलरहित शौचालयों के निर्माण को 1993 में गैर–कानूनी घोषित करने के बावजूद कई पंचायतें और नगरपालिएं उन जातियों के लोगों को भाड़े पर काम पर रखती रही हैं क्योंकि अन्य लोग इस तरह का 'घिनौना' काम करने को तैयार नहीं हैं।[144] सरकार ने खुद यह बात स्वीकार की है कि वह आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक (1977) हाथ से मैला उठाने की कुप्रथा का अंत करने में असफल रही हैं। अब तक हाथों से मैला उठाने वाले जिन 6.5 लाख सफाई कर्मचारियों की पहचान की गयी है, उनमें से 40 प्रतिशत से अधिक को किसी अन्य कामधंधे में लगाया जाना बाकी है।[145]

एक तिहाई से कुछ ही अधिक (37 प्रतिशत) दलित बस्तियों में प्राथमिक स्कूल हैं। केवल 6.5 प्रतिशत बस्तियों में उच्च प्राइमरी स्कूल हैं। भारत में कुल 42 लाख स्कूली शिक्षकों में से केवल 9 प्रतिशत दलित हैं।[146] हालांकि पिछले दशकों में साक्षरता के स्तर में सुधार हुआ है, लेकिन प्राइमरी स्तर पर दलित बच्चों के स्कूली शिक्षा पूरी न कर पाने की दर बहुत ज़्यादा–44.5 प्रतिशत–है। सीनियर सैकेंडरी स्तर पर शिक्षा छोड़ने वाले बच्चों की संख्या 76 प्रतिशत है। गरीबी के दुष्प्रभाव से बच्चे अपनी आगे की पढ़ाई–लिखाई पूरी करने की बजाय, पेट पालने के लिए रोज़ी कमाने को मजबूर हैं। और यह सब, प्रतिभाशाली बच्चों को छात्रवृत्तियां देने, शुल्क माफ करने और शिक्षा जारी रखने के लिए सरकार द्वारा मुफ्त कोचिंग देने जैसे प्रोत्साहनों के बावजूद हो रहा है।[147]

सरकारी कल्याण कार्यक्रमों के अर्न्तगत दलित बस्तियों और 20 प्रतिशत से अधिक दलित आबादी वाले गांवों में प्राथमिक और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये हैं। लेकिन राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग के अनुसार इनमें से अधिकतर स्वास्थ्य केन्द्र कागज़ पर मौजूद हैं और न तो इनमें डॉक्टर नियुक्त किये गये हैं और न दवाएं उपलब्ध करायी गयी हैं।[148]

राष्ट्रमंडल के अनेक हिस्सों में अन्य समुदायों को भी बहिष्करण, उपेक्षा और भेदभाव की इसी तरह की स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें मूलनिवासी और जनजातीय लोग, रंगभेद के तहत अश्वेत लोग, जातीय अल्पसंख्यक, खानाबदोश समुदाय और प्रवासी मज़दूर शामिल हैं। राष्ट्रमंडल के कुछ हिस्सों में आज भी सामंतवादी और काश्तकारी प्रणालियां बरकरार हैं, जो सामाजिक और आर्थिक असमानताओं तथा विभिन्न रूपों में गुलामी को बढ़ावा देती हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, समूचे राष्ट्र मंडल में महिलाओं को पुरूषों के मुकाबले कई सदियों से संस्थानीकृत भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

सारणी 10 भारत में सामाजिक असमानता का प्रभाव [149]

समस्या	अनुसूचित जातियां	भारत (सम्पूर्ण)
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000)	83	70
बाल मृत्यु दर (प्रति 1000)	119.3	94.9
कम वज़न वाले बच्चे	53.5%	47%

cyan black

सारणी 11 गरीबी का तुलनात्मक स्तर – ग्रामीण क्षेत्रों में दलित और अन्य लोग[150]

(225 रूपया मासिक से कम में गुज़ारा करने वाले लोग)

राज्य	दलित	अन्य *	राज्य	दलित	अन्य *
1 आन्ध्रप्रदेश	8.7%	3.6%	6 मध्यप्रदेश+ छत्तीसगढ़	16.9%	4.9%
2 बिहार+ झारखंड	19.9%	6.5%	7 महाराष्ट्र	12%	4.1%
3 गुज़रात	4.6%	1.2%	8 उड़ीसा	18%	5.2%
4 कर्नाटक	12.4%	4.2%	9 राजस्थान	3.7%	0.4%
5 केरल	4.5%	0.7%	10 तमिलनाडु	17%	2.9%
			11 उत्तरप्रदेश + उत्तरांचल	10.7%	3.7%

* इस श्रेणी में अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ी जाति शामिल नहीं हैं, लेकिन अगड़ी जातियां, मुसलमान, ईसाई, सिख और अन्य धार्मिक समूह शामिल हैं।

दलितों पर हिंसा–एक नमूना

किसी न किसी रूप में हिंसा, अपमान और मानवाधिकारों का उल्लंघन दलितों के जीवन की एक कड़वी सच्चाई है। सहस्राब्दि के अंत पर अपराध संबंधी प्रवृत्तियों के विश्लेषण से पता चलता है कि दलितों के खिलाफ हिंसा के सबसे अधिक मामले मध्यप्रदेश (44%) और राजस्थान (27%) में दर्ज़ हुए।[151] इस अवधि में दलितों की हत्या और बलात्कार के मामलों में भी इससे पहले वर्ष की तुलना में बढ़ोतरी हुई। लेकिन यह तो पानी में तैरती हिमशैल की तरह है जिसका केवल उपरी भाग नज़र आता है क्योंकि बहुत से अपराध सामने आने से रह जाते हैं। पुलिस प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज़ करने से इन्कार कर देती है। इसके अलावा, ऊंची जातियों द्वारा पीड़ितों के सामाजिक, आर्थिक बहिष्कार का भी दबाव और धमकी होती हैं।

इस अवधि के दौरान दलितों के खिलाफ किये गये अपराधों का एक नमूना इस प्रकार है :

- बिहार के आरा में ऊंची जाति के एक ज़मींदार ने एक दलित महिला से उसी के घर में सज़ा के तौर पर कथित रूप से बलात्कार किया। *उसका अपराध :* उसके पति ने अपराधी के मित्र से 100 रुपये उधार लिये थे जिन्हें वापस भी कर दिया गया था । लेकिन अपराधी इसलिए गुस्से में था कि पैसा उसे क्यों नहीं दिया गया और इसीलिए उसने दलित दम्पति को सबक सिखाना चाहा।
- हरियाणा के झज्जर में ऊंची जातियों की भीड़ ने सज़ा के तौर पर पांच दलितों की पीट–पीट कर हत्या कर दी और दो को ज़िन्दा जला दिया। *उनका अपराध :* उन्होंने मरी गाय की खाल उतारी जो कि उनका परम्परागत पेशा है।

जुलाई और दिसम्बर 2002 के बीच भारत के विभिन्न भागों में उत्पीड़न की 63 घटनाएं हुई जिनमें 1,300 से अधिक दलित प्रभावित हुए।[152] इनमें :

- 23 की हत्या की गयी और कई घायल हुए;
- 9 दलित महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ जिनमें से 3 नाबालिग थीं;
- 8 को नंगा या अर्धनग्न अवस्था में घुमाया गया;
- 3 को पुलिस ने यातनाएं दीं और
- आर्थिक बहिष्कार के 6 मामलों का असर एक हज़ार से अधिक दलितों पर पड़ा।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

cyan black

यह अफवाह फैली कि खाल निकालते समय गाय ज़िंदा थी। क्रुद्ध गांव वालों ने ''गौ–हत्या करने वालों'' को सबक सिखाने का फैसला कर लिया।

- तमिलनाडु के सतरसनकोट्टई में एक स्थानीय पार्षद और उसके गुंडों ने एक दलित खेत मज़दूर को कथित रूप से बुरी तरह पीटा और अधनंगा कर घुमाया।

उसका अपराध : उसने गांव के तालाब के तल में जमा मिट्टी निकालने के लिए मशीनों के इस्तेमाल का विरोध किया और मांग की कि यह काम मजदूरों से कराया जाना चाहिए।

- तमिलनाडु के तिन्नियम में स्थानीय पंचायत की भूतपूर्व महिला सरपंच और उसके पति तथा समर्थकों ने दो दलितों को सज़ा के तौर पर बुरी तरह पीटा, लोहे की गर्म सलाखों से दागा और एक–दूसरे को मल खिलाने पर मजबूर किया।

उनका अपराध : उसने एक ऐसे दलित का समर्थन किया जो अम्बेडकर आवास योजना के अर्न्तगत मकान प्राप्त करने के लिए भूतपूर्व सरपंच को दी गयी रिश्वत वापस मांग रहा था। जब महिला सरपंच ने रिश्वत लेकर अपना वादा नहीं निभाया तो पीड़ितों ने रिश्वत का पैसा वापस लौटाने में लोगों से समर्थन का अनुरोध करते हुए गांव भर में डुगडुगी बजाई थी।[153]

- पंजाब के मुंडखेरी गांव की पंचायत ने सज़ा के तौर पर 15 दलितों को कथित रूप से काली सूची में डाल दिया और व्यापारियों को कहा कि वे उनका आर्थिक बहिष्कार करें । काली सूची में रखे गए दलितों को 2 किलो चीनी बेचने के आरोप में एक व्यापारी पर 2,000 रुपये जुर्माना लगाया गया।

उनका अपराध : उन्होंने स्थानीय जमींदारों द्वारा दलितों के और बंधुआ मज़दूरों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने में एक गैर–सरकारी संगठन का साथ दिया।

- झारखंड के सूदन में एक स्थानीय व्यापारी के गुंडों ने एक दलित महिला और उसकी बहु को कथित रूप से नंगा किया, और सामूहिक बलात्कार किया और उनके मुंह पर चूना और गोबर पोतकर पूरे गांव में नंगा घुमाया।

उनका अपराध : उन्होंने अपना छोटा सा ज़मीन का टुकडा, जिस पर उस व्यापारी की नज़र पडी थी, उसे बेचने से इन्कार किया।

- दिल्ली विश्वविद्यालय के एक होस्टल में ऊंची जातियों के एक दर्ज़न से अधिक छात्रों ने तीन दलित छात्रों की पिटाई की।

उनका अपराध : उन में से एक दलित होस्टल प्रेज़ीडेंट चुना गया था। दोषी लडके इस बात को लेकर कुद्ध थे कि होस्टल 'हरिजनों का अड्डा' बनता जा रहा है।

अनेक परम्परागत समुदायों में महिलाओं को उत्तराधिकार या सम्पत्ति का अधिकार नहीं है। उनके रहने के स्थान और अन्य लोगों के साथ संबंध, खासकर शादी के बाद संबंधों का निर्धारण सामाजिक रिवाजों द्वारा किया जाता है, जिनपर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। राष्ट्रमंडल में अनेक ऐसे स्थान हैं जहां महिलाओं को पूर्ण कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं हैं और इस तरह वे कोई लेन देन नहीं कर सकतीं, जिसके बिना अधीनता के दुष्चक्र से उन्हें उभारा नहीं जा सकता। अनेक राष्ट्रमंडल देशों ने, इन प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए कानून बनाये हैं। किन्तु महिलाओं के पक्ष में सरकार की तरफ से कड़ी कार्रवाई के अभाव में, अकेले कानून से सामाजिक दृष्टिकोण या व्यवहार में परिवर्तन लाना संभव नहीं हो सकता और महिलाएं परम्परागत लोकाचार और पद्धतियों से होने वाले कष्ट उठाती हैं।

बहुजातीय समुदायों में अनेक अल्पसंख्यक समूहों को भी इसी तरह के भेदभाव झेलने पड़ रहे हैं और उन्हें विकास के उतने लाभ नहीं मिल पाते, जितने बहुसंख्यक समुदाय को मिलते हैं। उनके 'मानव विकास संकेतकों' (human development indicators)से इस बात का सतत अहसास होता है कि उनकी बहुसंख्य आबादी गरीबी में जी रही है। उदाहरण के लिए, हाल के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय मुसलमानों (जनसंख्या का 12.12 प्रतिशत) को बहुसंख्यक समुदाय की तुलना में

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

महिलाओं का स्थान

अगर अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों का सम्मान किया जाना है और महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना है तो प्रत्येक कानून और प्रत्येक आर्थिक नीति को 'अधिकारों के दृष्टिकोण' से परखा जाना चाहिए ताकि यह साबित हो सके कि इससे महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार होगा या नहीं। राष्ट्रमंडल के कई देशों में महिलाओं को संपत्ति विरासत में तभी मिलती है जब पिता या पति की मृत्यु हो जाती है। ये देश परम्परागत/व्यक्तिगत कानून पर अमल करना अधिक पसंद करते हैं जो कि उनकी अन्तर्राष्ट्रीय बचनबद्धता के अनुरूप नहीं है। नीचे दिये गये उदाहरण से यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि इस छोटे से अनुच्छेद में जो देश शामिल नहीं किये गये हैं वे महिलाओं को ये अधिकार दिलाने के लिए कोई खास प्रयास कर रहे हैं।

राष्ट्रमंडल के अफ्रीकी देश

- ज़िम्बाबवे के उच्च न्यायालय ने (*मगाया बनाम मगाया* मामले में) सामुदायिक अदालत के उस फैसले को उलट दिया जिसमें एक महिला को अपने मृत पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था और उसके स्थान पर यह कहते हुए उसके छोटे सौतेले भाई को उत्तराधिकारी बनाया कि परम्परागत कानून में "महिला उत्तराधिकारियों पर पुरुष उत्तराधिकारियों को प्राथमिकता दी जाती है।"
- नाइजीरिया में एक के बाद एक कई सरकारों ने असमानता दूर करने के लिए कई कार्यक्रम लागू किये, मगर स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। नाइजीरिया के कई राज्यों में महिलाएं अपने मृत पति की संपत्ति की उत्तराधिकारी नहीं बन सकतीं। जन्म के समय ही विवाह तय हो जाते हैं और 19 वर्ष की उम्र में औपचारिक रूप से विवाह की रस्म होती है। इसका लड़कियों की शिक्षा पर बुरा असर पड़ता है। सरकारी सेवा संबंधी कर प्रावधानों में भी बाल कल्याण कार्यक्रम का लाभ पुरुष कर्मचारियों को दिया जाता है। भेदभाव वाले प्रावधानों में महिला पुलिसकर्मियों को बिना इजाज़त विवाह करने की मनाही है।
- सिएरा लियोन में देहातों में रहने वाली महिलाएं ज़मीन की मालिक या नियंत्रक नहीं बन सकती, मगर वे परिवार के पुरुष मुखिया के ज़रिए इसका उपयोग कर सकती हैं। इस्लामी विवाह कानून के अनुसार कोई महिला अपने मृत पति की संपत्ति का नियंत्रण नहीं कर सकती और न ही उसकी संपत्ति की उत्तराधिकारी बन सकती है।[154]

राष्ट्रमंडल के दक्षिण एशियाई देश

- बांगलादेश में इस्लामी परिवारिक कानूनों पर आधारित राज्य कानूनों के अनुसार महिलाएं पैतृक संपत्ति में से अपने भाइयों के मुकाबले केवल आधी संपत्ति पाने की हकदार हैं। जहाँ कहीं समुदाय विशेष के व्यक्तिगत कानूनों को प्राथमिकता मिलती है, वहाँ उत्तराधिकार के मामले में उनसे भेदभाव बरता जाता है।[155]
- पाकिस्तान में सिंध और बलूचिस्तान के ग्रमीण इलाकों में महिला साक्षरता सिर्फ 2% है। 40% से अधिक माता–पिता ने बताया कि बालिकाओं को स्कूल भेजने का कोई 'आर्थिक फायदा' नहीं है। यह बात इस्लामाबाद के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव साइकोलॉजी द्वारा कराये गये सर्वेक्षण से पता चलती है।[156]
- परिवार का भरण–पोषण करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले अधिक घंटे काम करना पड़ता है। उत्तर भारत के हिमालय क्षेत्र में कृषि संबंधी गतिविधियों के बारे में एक अध्ययन से पता चलता है कि महिलाएं एक हैक्टेयर के खेत में हर साल 3,485 घंटे कार्य करती हैं जबकि पुरुष इसके आधे से भी कम (1,112 घंटे) कार्य करते हैं। बैलों की एक जोड़ी साल में केवल 1,064 घंटे कार्य करती है। फिर भी महिलाओं को परिवार की संपत्ति में बराबरी का अधिकार नहीं मिलता। कई आदिवासी समाजों के परम्परागत कानून में महिलाओं को पैतृक भूमि में हिस्सा और काश्तकारी का हक नहीं दिया जाता। राज्यों के कानून, जैसे *छोटानागपुर काश्तकारी कानून*, 1908 और *संथाल परगना काश्तकारी अधिनियम*, 1949 से भी इस प्रथा को संरक्षण मिला है।[157]
- पाकिस्तान के ग्रामीण क्षेत्रों में कई लड़कियों की पवित्र कुरान के साथ शादी कर दी जाती है और उसके बाद उन्हें अपने पिता और भाइयों सहित 14 वर्ष से अधिक उम्र के पुरुषों से सम्पर्क करने की मनाही होती है। शादी का आर्थिक बोझ उठाने में असमर्थ गरीब

परिवार इस प्रथा का सहारा लेते हैं। धनी परिवार बेटी के हिस्से की संपत्ति, खासतौर पर ज़मीन, परिवार में बनाए रखने के लिए ऐसा करते हैं।[158]

- श्रीलंका में महिलाएं शेष दक्षिण एशिया की महिलाओं से अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं। उनकी साक्षरता का स्तर ऊंचा है और माताओं की मृत्यु दर काफी कम है। लेकिन महिलाओं के अधिकारों पर प्रभाव डालने वाली कानूनी असमानताएं पूरी तरह दूर नहीं हुई हैं। 1943 के भूमि विकास अधिनियम (*Land Development Ordinance*) के अर्न्तगत नयी बस्तियों में भूमि प्रवासी परिवार के पुरुष मुखिया को आवंटित की जाती है। अगर महिलाओं की अपने पैतृक गांव/कस्बे में जमीन पहले से न हो, तो वह उत्तराधिकारी नहीं बन सकती ।[159]

अधिक उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। गांवों में रहने वाली 20 प्रतिशत सर्वाधिक निर्धन आबादी में मुसलमानों की संख्या (29 प्रतिशत) हिन्दुओं से अधिक है (26 प्रतिशत)। शहरी क्षेत्रों में सबसे गरीब मुसलमानों की आबादी निर्धनतम हिंदुओं से दुगुनी है। भूमिहीन या बहुत कम जोत वाले मुसलमानों का अनुपात 51 प्रतिशत है, जबकि हिन्दुओं में केवल 40 प्रतिशत इस श्रेणी में आते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 48 प्रतिशत मुसलमान लिख–पढ़ नहीं सकते, जबकि हिन्दुओं में निरक्षरता दर 44 प्रतिशत है। गांवों में करीब दो तिहाई मुसलमान महिलाएं शिक्षा से वंचित हैं, जबकि शहरों और कस्बों में यह संख्या लगभग 45 प्रतिशत है।[160]

एच आई वी/एड्स

एच आई वी/एड्स महामारी के कारण लोगों के गरीबी में रहने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। यह घातक रोग मुख्य रूप से राष्ट्रमंडल में केन्द्रित है और इससे सामाजिक सम्बद्धता और अतीत में की गई प्रगति को बनाए रखने अथवा तेजी से आर्थिक विकास करने की क्षमता को खतरा पैदा हो गया है। एच आई वी/एड्स संक्रमित 60 प्रतिशत मामले राष्ट्रमंडल देशों में पाए गए हैं। भारत, केन्या, नाइजीरिया और दक्षिण अफ्रीका, प्रत्येक में 20 लाख संक्रमित वयस्क हैं। बोत्स्वाना, लेसोथो, स्वाज़ीलैंड, जाम्बिया और ज़िम्बाब्वे ऐसे देश हैं, जहां 5 में से 1 वयस्क को एच आई वी है। यह रोग बड़ी तेजी और अनुमान से अधिक तीव्रता से फैल रहा है। अफ्रीका से बाहर कैरेबियाई देशों में एच आई वी/एड्स के संक्रमण की दर सबसे अधिक है।

यह स्वाभाविक है कि इस महामारी से सर्वाधिक गंभीर रूप से प्रभावित देश और व्यक्ति सबसे अधिक गरीब भी हैं। वे बीमारी की रोकथाम और उसका प्रभाव कम करने के लिए आवश्यक स्वास्थ्य देखभाल भी नहीं जुटा पाते। विशेष रूप से अफ्रीका में इस बीमारी के प्रभाव से 'प्रत्याशित आयुदर' में भारी गिरावट आयी है, कुशल मज़दूरों की संख्या घटी है और ऐसे लोगों पर भारी बोझ पड़ा है, जिसे बर्दाश्त करने की क्षमता उनमें बिल्कुल नहीं है। अकेले नाइजीरिया और युगांडा में, प्रत्येक में 9,00,000 अनाथ हैं। कुछ देशों में एच आई वी, बड़े आश्चर्यजनक ढंग से महिलाओं का रोग बनता जा रहा है, हालांकि इसका प्रसार मुख्य रूप से पुरूष–व्यवहार के कारण होता है। अफ्रीका के उप–सहारा क्षेत्र में पुरूषों की तुलना में महिलाएं (55 प्रतिशत) एड्स से अधिक प्रभावित हुई हैं, जो विश्वव्यापी प्रवृत्ति से विपरीत है। 1999 में इस बीमारी का शिकार हुए 21 लाख लोगों में 52 प्रतिशत महिलाएं थीं। अफ्रीका में कुछ स्थानों पर कम आयु समूहों में महिला/पुरूष रोग संक्रमण का अनुपात 16:1 है। केन्या के कुछ हिस्सों में 15 और 19 की उम्र की चार में से एक लड़की संक्रमित है, जबकि इसी आयुवर्ग के लड़कों में यह संक्रमण 25 में 1 लड़के को है। जैविक दृष्टि से विपरीत लिंगीय संभोग द्वारा महिलाओं में एच आई वी संक्रमण की अधिक आशंका होती है। सेक्स वर्करों में पुरूषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या अधिक है। गरीबी की बेबसी से जुड़ी वेश्यावृत्ति के कारण महिलाओं को संक्रमण की आशंका अधिक रहती है। जिन देशों में सेक्स वर्कर अधिक संख्या में हैं और पुरुष प्रधानता की परम्परा अधिक गहरी है, वहां खासकर सेक्सवर्कर के लिए बचाव के प्रमुख साधन कंडोम को इस्तेमाल करने का आग्रह करना मुश्किल होता है। सांस्कृतिक रिवाजों, जैसे महिला यौनांग का खतना या 'वैधव्य विरासत' (widow inheritance) की भी इस बीमारी के संचार में भूमिका है। एच आई वी के अधिक मामले उन स्थानों पर पाए जाने की आंशका रहती है जहां चलते–फिरते या प्रवासी मज़दूरों (उदाहरण के लिए भारत और पूर्वी अफ्रीका में ट्रक ड्राइवर या दक्षिण अफ्रीका में खान मज़दूरी) की संख्या अधिक होती है। ये श्रमिक मूल देश में गरीबी के कारण प्रवासी बनते हैं।

स्वास्थ्य का अधिकार

राष्ट्रमंडल के अंतर्गत आने वाले अफ्रीका और एशिया के जिन इलाकों में काफी बड़ी तादाद में लोग एच आई वी संक्रमण से ग्रस्त हैं, वहां एड्स के नियंत्रण की नीतियां बनाते समय ब्राज़ील से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

ब्राज़ील में एड्स के पहले मामले का पता 1980 में चला। 1994 में विश्व बैंक ने अनुमान लगाया था कि सन् 2000 तक ब्राज़ील में संक्रमण से ग्रस्त लोगों की संख्या 12 लाख हो जाएगी (जनसंख्या : 13.3 करोड़)। आज इनकी वास्तविक संख्या आधे से भी कम हो गयी है। एड्स से संबंधित बीमारियों से होने वाली मृत्यु भी आधा हो गयी है और केवल 20,000 नये मामले हर साल दर्ज़ हो रहे हैं। इससे इस महामारी के प्रकोप पर अंकुश लगने का पता चलता है। एड्स के रोगियों का इलाज जल्द शुरू हो जाने और अस्पतालों में भर्ती होने वाले रोगियों की संख्या में कमी से ब्राज़ील में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के खर्च में करीब 19 करोड़ रुपये की बचत हुई है। आखिर यह चमत्कार कैसे हुआ?

ब्राज़ील की सफलता के पीछे एक सबसे महत्वपूर्ण कारण उसका राजनीतिक संकल्प है। 1996 में ब्राज़ील की संसद ने एक कानून पारित किया जिसमें एड्स रोगियों को अत्याधुनिक उपचार की गारंटी दी गयी। इस इलाज में विकासशील देशों में सालाना 10,000 से 15,000 अमेरिकी डॉलर का खर्च आता है। ब्राज़ील पेटेंट की गयी एंटी–रिट्रोवायरल दवाओं की जेनिरिक किस्म तैयार कर लागत में 79 प्रतिशत की कमी करने में सफल रहा है। बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों की ओर से भारी दबाव और विरोध के बावजूद, जिसमें कुछ समय तक अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि का कार्यालय भी शामिल था, ब्राज़ील ने सभी जरूरतमंदों के लिए दवा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की है। (ब्राज़ील के पेटेंट कानून को 1997 में ट्रिप्स समझौते के अनुरूप बना दिया गया है।) संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकर आयोग द्वारा जेनेरिक दवाओं के उत्पादन की ब्राज़ील की रणनीति को अनुमोदन मिल जाने के बाद, कुछ बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने भी अपने उत्पाद कम दामों पर बेचना शुरू कर दिया है। इससे यह धारणा गलत साबित हो गयी है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा दवाओं की कीमतें सिर्फ उत्पादन पर आधारित लागत से निर्धारित होती हैं।

ब्राज़ील की एड्स नियंत्रण और रोकथाम नीति की रूपरेखा बनाने का श्रेय सिविल सोसाइटी संगठनों को जाता है । इसका नेतृत्व प्रारंभ में समलैंगिकों के समुदाय द्वारा किया गया था। सरकार के सहयोग से इस तरह के करीब 600 संगठन समग्र स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने में लगे हैं। इससे रोगियों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएं–जैसे औषधि चिकित्सा, अस्पताल में भर्ती करने, परामर्श, बहिरंग रोगियों की निगरानी, सही समय पर दवा खिलाने का पूरा ध्यान रखने आदि–पूरी हो रही हैं। पिछले आठ वर्षों में सिविल सोसाइटी संगठनों की परियोजनाओं के अंतर्गत 20,00,000 लोगों को विशिष्ट प्रशिक्षण दिया गया है और करीब 5 लाख लोगों को सूचना सामग्री बांटी गयी है। गरीब रोगियों को विशेष सुविधाएं, जैसे मुफ्त बस पास, भोजन और शिशु आहार प्रदान की जा रही हैं। उन्हें एल्कोहॉलिक्स एनॉनिमस की तरह के समूहों में परामर्श दिया जा रहा है।

एड्स क्लीनिकों के राष्ट्रव्यापी नेटवर्क के जरिए अधिक जोखिम वाले वर्ग, जैसे व्यावसायिक सैक्स वर्करो, मादक पदार्थ का सेवन करने वालों, ट्रक ड्राइवरों, गर्भवती और शिशुओं को स्तन पान कराने वाली माताओं, बेसहारा लोगों, कैदियों, छात्रों और अन्य लोगों को सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा हॉटलाइन को अब तक 2 लाख संदेश प्राप्त हुए हैं। 65 प्रतिशत गतिविधियां व्यवहार संबंधी हस्तक्षेप और सार्वजनिक शिक्षा से संबंधित हैं जिससे मुख्य जोर रोकथाम पर दिया जा रहा है। निजी क्षेत्र और ब्राज़ील की सेना के साथ कार्य करते हुए राष्ट्रीय समन्वय संगठन ने एड्स के बारे में करीब 35 लाख कार्यकर्ताओं और 700,000 सैनिकों को कंडोम और सूचनाएं बांटी हैं। एड्स के बारे में जागरूकता पैदा करने के अभियान से इस बीमारी से जुड़े कलंक को कुछ हद तक दूर करने में सफलता मिली है।

ब्राज़ील ने यह साबित कर दिया है कि कई दशकों के सैन्य शासन से उबर कर निकला कोई देश स्वास्थ्य सेवा के बारे में 'अधिकार' की धारणा अपना कर एड्स की चुनौती का सामना कर सकता है। इससे जो बड़ा सबक सीखना है, वह यह है कि किस तरह राजनीतिक इच्छाशक्ति से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और पेटेंट व्यवस्था से उत्पन्न बाधाओं को पार किया जा सकता है और नागरिकों का कल्याण सुनिश्चित किया जा सकता है। कोई सरकार हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने की बजाय बहुत कुछ कर सकती है।

जहां कहीं कोई छोटी सी पहल भी की गयी है, नतीजे साफ नजर आते हैं। अगर राष्ट्रमंडल गरीबी दूर करने के बारे में संजीदा है तो एड्स से बचाव के लिए कम लागत वाले और कारगर राष्ट्रीय कार्यक्रमों और नीतियों के लिए अधिक मात्रा में संसाधनों, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा एकजुटता ज़रूरी होगी।

एच आई वी का गरीबी से संबंध कई तरह से काम करता है। यह सच है कि एड्स किसी को सिर्फ इसलिए नहीं होता कि वह गरीब है। इस बीमारी का शिकार होने की आशंका अज्ञानता, सामान्य अस्वस्थता, यौन संपर्क से इन्कार न कर सकने या सुरक्षा अपनाने में अक्षमता, स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं में कमी – जिससे एच आई वी/एड्स का पता न लगाया जा सके–, या गर्भवती महिलाओं को 'एंटी–रीट्रोवाइरल दवाएं प्रदान न किया जाना – जिससे उन्हें एच आई वी पाजिटिव शिशु को जन्म देना पड़ता है–आदि कारणों से कई गुणा बढ़ जाती है। एड्स के बारे में बातचीत करने में अक्षमता या अरुचि अथवा समाज या सरकार द्वारा इस समस्या के मौजूद होने से साफ इन्कार करना, एड्स ग्रस्त लोगों को अंधकार में रखना है, जिससे बीमारी के प्रसार का खतरा बढ़ जाता है। लोगों को शिक्षित बनाने के उपायों में कमी होने से बीमारी की गंभीरता का अहसास सार्वजनिक तौर पर नहीं होता।

गरीब देश में एक बार एच आई वी पहुंचने के बाद यह अवश्यंभावी है कि अमीर देश के मुकाबले उसका असर अधिक विनाशकारी होगा। एड्स का प्रसार तेजी से होता है और अवसरवादी बीमारियों का हमला होते ही एड्स बड़ी तेजी से मार डालता है। बीमार होने पर मरीज़ के इलाज और देखभाल में अधिकाधिक श्रमिक दिन नष्ट हो जाते हैं।

एच आई वी महामारी आर्थिक विकास पर बड़ा ज़बरदस्त असर डालती है। यह चुन–चुन कर मानवीय संपदा को नष्ट कर देती है। इसका मुख्य निशाना युवा वयस्क होते हैं जो कि जनसंख्या का सबसे उत्पादक वर्ग माने जाते हैं। इस बीमारी की चपेट में आने से उनकी उत्पादकता बड़ी कम हो जाती है और अंततः असामयिक मृत्यु से मानवीय संसाधन संपत्ति का नुकसान होता है। कम लोगों के बचे रहने से अर्थव्यवस्था का संकुचन होता है, परिणामस्वरूप सरकारी राजस्व के लिए कर–आधार कमज़ोर पड़ता है। महामारी के दुष्प्रभाव संक्रमित व्यक्तियों की पहली पीढ़ी से भी आगे असर डालते हैं। एच.आई.वी. से मनुष्य की पूंजी निर्माण क्षमता भी नष्ट हो जाती है। माता–पिता में से किसी एक या दोनों की मृत्यु से बच्चे उनकी स्नेहपूर्ण देखभाल और ज्ञानप्राप्ति के आधार से वंचित रह जाते हैं। परिवार की आमदनी के नुकसान का मतलब अंततः यह होता है कि उनके स्कूल में पढ़ने की संभावनाएं कम हो जाती हैं। शिक्षा की कमी से अनाथ बच्चों की इस पूरी पीढ़ी की उत्पादकता कम हो जाती है और गरीबी को काबू करने की उनकी क्षमता भी सीमित हो जाती है। संसाधनों की कमी के कारण इस बीमारी से लड़ने तथा अनाथ बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में पहले से कमज़ोर पड़ रही सरकार को कम उत्पादकता के कारण सीमित होते कर–आधार और धनाभाव का सामना करना पड़ता है। इसका नतीजा यह होता है कि मानवीय विकास के साथ अन्य पक्षों पर सरकारी खर्च पर बुरा प्रभाव पड़ता है। असमानता बढ़ती है। इस तरह एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है और अगर महामारी को अनियंत्रित छोड़ दिया जाए तो इस बात की पूरी संभावना है कि समूची अर्थव्यवस्था तीन पीढ़ियों में भरभराकर ढह जाएगी।[161]

एच आई वी महामारी का विकास दर पर कई तरह से दुष्प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव सिर्फ समर्थ वयस्कों को जवानी में ही मौत के घाट उतारने तक सीमित नहीं रहता। स्वाज़ीलैंड का अनुमान है कि उसे सेवाओं का 1997 का स्तर बनाए रखने के लिए अगले 7 वर्षों में सामान्य के दोगुने से अधिक शिक्षकों को प्रशिक्षण देना होगा। स्वाज़ीलैंड को सन् 2016 तक अतिरिक्त वेतन और प्रशिक्षण लागत के रूप में खजाने से 23.3 करोड़ अमेरिकी डॉलर निकालने होंगे–जो 1998–1999 के दौरान सामान और सेवाओं के कुल सरकारी बजट से अधिक है। जाम्बिया के 30 प्रतिशत शिक्षक एच आई वी से ग्रस्त हैं–और उनकी नियति उन्हें मृत्यु की ओर ले जायेगी। शिक्षकों की संख्या में कमी और हज़ारों अनाथों की मौजूदगी से जाम्बिया जैसे देश को सकल घरेलू उत्पाद में भारी कमी की समस्या से जूझना पड़ेगा। तंजानिया में 6 कम्पनियों के सर्वेक्षण से पता चला है कि एड्स के कारण 1993 और 1997 के बीच प्रति कर्मचारी औसत वार्षिक चिकित्सा खर्च तीन गुणा बढ़ गया, जबकि कम्पनियों के शव–संस्कार खर्च में 5 गुणा वृद्धि हुई। जाम्बिया के बार्कलेज बैंक को एड्स के कारण अपने 25 प्रतिशत वरिष्ठ प्रबन्धकों को गंवाना पड़ा। अनुमान है कि बोत्स्वाना में, अगले 10 वर्षों में बजट का 20 प्रतिशत हिस्सा एड्स महामारी पर खर्च करना होगा। दक्षिण अफ्रीका में एड्स के कारण सन् 2010 में सकल घरेलू उत्पाद में 17 प्रतिशत गिरावट आयेगी और अर्थव्यवस्था को 22 अरब अमेरिकी डॉलर की क्षति पहुंचेगी। एड्स का सामना करने के लिए पर्याप्त धन आवंटित करने की आवश्यकता होगी। संयुक्त राष्ट्र एड्स सहायता कार्यक्रम ने अनुमान लगाया है कि उसे कैरेबियाई देशों में प्रतिवर्ष एच आई वी के खतरे को कम करने के लिए रोकथाम उपायों पर 1.5 अरब अमेरिकी डालर और इतनी ही राशि रोग–प्रशमन उपायों पर खर्च करनी होगी।

एड्स रोकथाम के लिए रोग की पहचान, रोग तथा रोगियों की वास्तविकता को स्वीकार करना भी महत्वपूर्ण है ताकि सस्ती दवाएं और उन्हें सभी तक उपलब्ध कराने की सार्वजनिक नीतियां अपनाई जा सकें। हाल ही में कैरेबियाई देशों के स्वास्थ्य मंत्रियों ने महामारी से निबटने की राजनीतिक इच्छा व्यक्त की। उन्होंने यह तथ्य स्वीकार किया कि अगर संक्रमण की वर्तमान दर जारी रही तो पिछले दशकों में हासिल क्षेत्रीय विकास की उपलब्धियां चौपट हो जायेंगी। दानदाता और सरकारें अब कार्य योजनाएं बना रही हैं। इनसे स्थिति में सुधार होने की संभावना है। अफ्रीकी उपसहारा क्षेत्र के देशों के मुकाबले एच आई वी/एड्स का स्तर दक्षिण एशिया में कम है, लेकिन इस बीमारी पर काबू पाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण चुनौती है।

पर्यावरण का विनाश

पर्यावरण का विनाश आज सारी दुनिया की चिंता का विषय बन गया है। संसाधनों की छीनाझपटी और दुरुपयोग हिंसक टकराव का कारण बन रहे हैं। वहीं अबतक जो संसाघन सामुदायिक संपत्ति माने जाते थे, उनके निजी हाथों में पहुंचकर अंधाधुंध इस्तेमाल तथा लूट खसोट से समाज के अभावग्रस्त समुदायों में गरीबी बढ़ी है और उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है।

अनेक अध्ययनों से पर्यावरण और गरीबी के बीच संबंध होने का पता चला है। विश्व बैंक का कहना है कि ''दुनिया के करीब 2.8 अरब लोगों पर–जो कि रोज़ाना दो डॉलर से भी कम पैसों से अपना गुज़र–बसर करते है– पर्यावरण की खराब हालत का अन्य लोगों के मुकाबले अधिक बुरा असर पड़ता है।''[162] इसका एक कारण यह है कि विकासशील देशों के ऊपर कर्ज़ का जो भारी बोझ जमा हो गया है, उसे चुकाने के लिए अक्सर प्राकृतिक संसाधन बेचे जाते हैं या बहुत ही सस्ते दामों में खनन और वनों की कटाई की इजाज़त दे दी जाती है। आज जब विदेशी निवेश आकृष्ट करना अनिवार्य होता जा रहा है, तो ऐसे में राज्य पर्यावरण संरक्षण पर ज़्यादा जोर नहीं दे सकता, भले ही वह उनकी सही तरह से देखभाल करने में सक्षम क्यों न हो। विदेशी मुद्रा कमाने के मकसद से निर्यात के लिए उगाई जाने वाली फसलों से 'खाद्य सुरक्षा में कमी आयी है। प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण से गरीबों के लिए परम्परागत जड़ी–बूटियां खोजना मुश्किल जाता है। एक तो इन लोगों के पास इन जड़ी–बूटियों का कोई अन्य विकल्प भी नहीं है और दूसरी तरफ बौद्धिक संपदा अधिकारों की नयी व्यवस्था ने इन चीजों पर उनके मालिकाना अधिकार को छीन लिया है। यह अभी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है कि क्या गरीब–या उनकी गरीबी से पर्यावरण क्षतिग्रस्त होता है या नहीं। पर्यावरण की दृष्टि से समाज के ऐसे तबके जो ज्यादा कमज़ोर माने जाते हैं, उनमें महिलाएं, बच्चे, आदिवासी और अन्य उपेक्षित लोग शामिल हैं। और विडम्बनात्मक सच्चाई यह है कि वे परियोजनाएं जो समाज के कुछ ज़रूरतमंद समूहों के कल्याण के लिये तैयार की गयी हैं – जो शायद सफल भी होंगी – और वे योजनाएं जो पर्यावरण सुधार के लिए बनायी गयी हैं, इन्हीं समूहों के वातावरण को और बिगाड़ सकती हैं। इस के कारण सामाजिक विषमताएं तथा अंतर बढ़ सकते हैं।

तेल और खनिजों की खोज के कार्यों का विनाशकारी प्रभाव उत्पन्न करने का भी रिकार्ड होता है । इनसे प्राकृतिक संतुलन नष्ट हो जाता है, जल प्रदूषित होता है और खेती की ज़मीन नष्ट हो जाती है। प्रेस जगत में बहुत अधिक आलोचना के बावजूद सरकारों और बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों के लालच की वजह से अंधाधुंध दोहन का यह सिलसिला जारी है। नाइजर नदी के थाले, ओक टेडी और पापुआ न्यूगिनी में पनगुना खानों में जो कुछ हुआ है, वह इसका उदाहरण है। इससे स्थानीय लोगों और पर्यावरण के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है।

एक तरफ औद्योगिक देशों मे रहने वाली दुनिया की 16 प्रतिशत जनसंख्या कुल औद्योगिक कचरे का दो तिहाई हिस्सा उत्पन्न करती है। 'ग्लोबल वार्मिंग' यानी धरती के तापमान में असामान्य बढ़ोतरी के लिए ज़िम्मेदार गैसों में से एक तिहाई भी इन्हीं देशों में उत्पन्न होती हैं और विश्व में खनिज ईंधन का आधे से अधिक हिस्सा ये लोग चट कर जाते हैं। दूसरी तरफ, अपना अस्तित्व बनाए रखने के संघर्ष में गरीब लोग अपने दुर्लभ संसाधनों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करने को मजबूर हो जाते हैं, क्योंकि ''आसपास का पर्यावरण ही उनके संसाधनों का आधार है और उसी से उनकी गुज़र –बसर होती है। इसके अलावा उनके पास कोई चारा भी नहीं होता।''

विश्व स्तर पर जलवायु में बदलाव का असर पहले से गरीबी में जीवन बिता रहे लोगों पर सबसे अधिक पड़ने की आशंका है। राष्ट्रमंडल के कुछ सबसे गरीब देशों के सामने सबसे अधिक खतरा है। बांगलादेश इनमें से सबसे अधिक उल्लेखनीय है। समुद्री तूफानों की वजह

से उसकी 16 प्रतिशत जमीन के नष्ट होने का खतरा है। यह वह इलाका है जहां सबसे अधिक गरीब लोगों की आबादी रहती है। राष्ट्रमंडल के कुछ द्वीपदेशों के लिए तो अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया है, क्योंकि समुद्र का जल स्तर बढ़ने से उनके डूबने की आशंका है। जलवायु में बदलाव का अर्थ है जलवायु में कई तरह के नये या अधिक खतरनाक दुष्प्रभाव, जैसे सूखा और तूफान। इनमें से कई का असर उष्णकटिबंधीय देशों पर तो अधिक होगा ही और सारे संसार के कमज़ोर वर्गों पर भी बुरा असर पड़ेगा।[163]

नदियों पर बनने वाले बांधों की सीमित उपयोगिता और दुष्प्रभावों के बारे में प्रतिकूल प्रचार की वजह से हालांकि यह लगता है कि ये अब उतने 'फैशनेबल' नहीं रह गये हैं, फिर भी अभी राष्ट्रमंडल देशों में आश्चर्यजनक रूप से बड़ी संख्या में बांधों का निर्माण राष्ट्रमंडल देशों की ही वित्तीय सहायता या गारंटी से अब भी हो रहा है। इनके 'विकास संबंधी' चाहे जो लाभ हों, मगर ऐसे कई समुदाय हैं जिनके पर्यावरण, संस्कृति और रोजीरोटी को जलाशय में पानी के भराव से नुकसान हो सकता है। हालांकि उनको होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए कदम उठाये जाते हैं, मगर ये अक्सर अपर्याप्त, सूझ–बूझ की कमी वाले और सांस्कृतिक दृष्टि से अनुचित साबित हुए हैं।[164]

दक्षिण एशिया में पर्यावरण ह्रास : कुछ तथ्य और आंकड़े

वनाच्छादित क्षेत्र का ह्रास

- 20वीं सदी के प्रारंभ में श्रीलंका में तीन–चौथाई भूमि में सघन वन थे। आज इस द्वीप राष्ट्र में वनाच्छादित क्षेत्र 20% से भी कम रह गया है। बड़ी जल–विद्युत परियोजनाओं के निर्माण, उद्योगीकरण की दिशा में व्यापक अभियान और सरकार के गरीबी–हटाओ अभियान के रूप में ग्रामीण समुदाय को फिर से बसाने की अनुचित ढंग से नियोजित योजनाओं के कारण वन–भूमि का ह्रास हुआ है।[165]
- भारत में वनाच्छादित क्षेत्र मात्र 20% है, जबकि इसके लिए आदर्श स्थिति 33% वन–भूमि को माना गया है। अवैध रूप से लकड़ी काटने, खदानों के पट्टे देने, मवेशियों द्वारा अत्यधिक चरायी किए जाने और अन्य विकास गतिविधियों की वजह से वनाच्छादित क्षेत्र कम होता गया है, जिसकी परिणति भूमि–क्षय, रेगिस्तान के प्रसार और देश के कई हिस्सों में अन्य नकारात्मक प्रभावों के रूप में हुई है।[166]

भूमि ह्रास :

- भारत के भू–भाग के एक–चौथाई से अधिक क्षेत्र का प्राकृतिक और मानव घटकों, दोनों की वजह से ही व्यापक ह्रास हुआ है। पाकिस्तान में 6.2 करोड़ हैक्टेयर भूमि में से 86% के गंभीर क्षय के कारण खुश्क भूमि में रूपान्तरित होने की आशंका है।[167] श्रीलंका में भूमि–क्षय के कारण करीब एक–तिहाई ज़मीन पर असर पड़ा है। दक्षिण एशिया में भूमि –क्षय से हर वर्ष 1,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर का नुकसान होता है।[168]

भूमिगत जल–संसाधनों का ह्रास :

- हरियाणा, राजस्थान, पंजाब और गुज़रात के कई हिस्सों में घरेलू और सिंचाई के प्रयोजन के लिए भूमिगत जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया गया है। सन् 2015 तक भारत में एक तिहाई से अधिक ब्लॉक अपने भूमिगत जल–संसाधनों का अत्यधिक दोहन कर चुके होंगे (अर्थात् वर्तमान क्षमता का 85 प्रतिशत से अधिक जल निकाल चुके होंगे)।

वायु प्रदूषण :

- अनुमान है कि विश्व भर में वायु प्रदूषण से होने वाली 8,00,000 मौतों में से 1,50,000 दक्षिण एशिया में होती हैं। प्रदूषित वायु से श्वास संबंधी अनेक बीमारियां होती हैं, जिनके लिए बार–बार और विशेष चिकित्सा उपचार की आवश्यकता पड़ती है। बच्चों और ग्रामीण निर्धनों पर सर्वाधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। भारत के मात्र 12 बड़े शहरों में वायु प्रदूषण से 200 करोड़ अमेरिकी डॉलर मूल्य की उत्पादकता की क्षति होती है और औषधियों पर खर्च बढ़ता है।[169]

समुद्री पारिस्थितिकी का ह्रास :

- कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त जल के बहाव के साथ करीब 1800 टन कीटनाशक बंगाल की खाड़ी में गिरते हैं। तेल टैंकरों की दुर्घटनाओं और रिसाव के कारण करीब 50 लाख टन तेल अरब सागर में मिल जाता है। ये और अन्य प्रदूषक सागरों और हिन्द महासागर में गिरकर मछली संसाधनों को विषाक्त करते हैं, कच्छ वनस्पति (mangrove) का ह्रास करते हैं और समुद्री पारिस्थितिकी प्रणाली के संतुलन को बिगाड़ते हैं।[170]

जैव विविधता का ह्रास :

- धरती की कुल पशु प्रजातियों का 7.31% और पादप प्रजातियों का 10.38% भारत में हैं। 200 से अधिक पादप और इतनी ही संख्या में पशु प्रजातियों का नाम उन प्रजातियों की लाल–सूची में शामिल है, जिनका अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ है। बांगलादेश में 175 पशु प्रजातियां समाप्त होने के कग़ार पर हैं।[171]

शहरीकरण और उसका पर्यावरण पर असर :

- कोलम्बो की 50% से अधिक आबादी तंग बस्तियों और अनाधिकृत कालोनियों में रहती है। 2015 तक करीब 45% श्रीलंकाई शहरों में रह रहे होंगे।[172] सहस्राब्दि के अंत तक 30–35 करोड़ के बीच भारतीय शहरों में रह रहे थे। अनुमान है कि 2015 तक जीविका की तलाश में गांवों से लोगों के शहरों में पलायन के कारण जनसंख्या का आधे से अधिक हिस्सा शहरों में रह रहा होगा। आबादी का तीसरा हिस्सा तंग बस्तियों और अनाधिकृत कालोनियों में रह रहा होगा, जहाँ समुचित जलापूर्ति और स्वच्छता सुविधाएं मुहैया नहीं होंगी। शहरों के सीमित संसाधन–आधार पर दबाव, वायु और ध्वनि प्रदूषण और जल निकायों में गिरने वाले मनुष्यजन्य और औद्योगिक कचरे से भविष्य में पर्यावरण की स्थिति और भी खराब हो जायेगी, जो पहले ही बरबादी के कग़ार पर है।[173]

पर्यावरण ह्रास का आर्थिक प्रभाव :

- वायुमंडल में भारी मात्रा में कार्बन उत्सर्जित करने वाले देशों में अमेरीका, चीन, रूस और जापान के बाद भारत का पांचवाँ स्थान है। वायु और जल प्रदूषण, भूमि–ह्रास, वनाच्छादन में कमी, ताजा जल और समुद्री संसाधनों का अंधाधुंध दोहन और औद्योगिक कचरे का लापरवाही से निपटान, ये सब ऐसे कारण हैं, जिनका आर्थिक प्रभाव पड़ता है। 1995 में अनुमान लगाया गया था कि पर्यावरण ह्रास से भारत के सकल घरेलू उत्पादन (जी डी पी) को 4.53% क्षति पहुंचती है।[174] इस क्षति में अब अधिक बढ़ोतरी हो जाने का अनुमान है।
- पाकिस्तान में रावी नदी के रासायनिक प्रदूषण से मछली उद्योग को 2 लाख अमेरिकी डॉलर मूल्य का नुकसान होने का अनुमान है। पर्यावरण के कुल नुकसान की लागत हर वर्ष 180 करोड़ डॉलर होने का अनुमान है।[175]

जातीय और सामाजिक संघर्ष

वैश्वीकरण और गरीबी व असमानता जैसी समस्याओं को सुलझाने में देशों की नाकामयाबी की वजह से वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ अलगाव और विरोध देखने में आया है। ध्रुवीकरण, असमानताओं और सामाजिक बिखराव की प्रतिक्रियास्वरूप कट्टरपंथी आंदोलन उठ खड़े हुए हैं। नयी पहचान और क्षेत्रीय आकांक्षाओं के लिए आंदोलनों के तेज होने से जातीय और धार्मिक संघर्ष तेज हो गये हैं। लेकिन इन सब में मानवीय गरिमा और मानवाधिकारों की उपेक्षा की जाती है और सीमित संसाधनों को हथियारों तथा सेनाओं पर बर्बाद किया जाता है। यह समस्या राजनेताओं के अवसरवाद, किसी खास समूह के लालच और असहिष्णुता की बढ़ती प्रवृत्ति की वजह से और गंभीर हो गयी है। नतीजा यह होता है कि जातीय और सामाजिक संघर्षों की संख्या और गंभीरता बढ़ती जाती है।

राष्ट्रमंडल में आंतरिक और बाह्य संघर्षों की कोई कमी नहीं है। राष्ट्रमंडल में एकमात्र बाह्य संघर्ष जो बड़े लम्बे समय से चला आ रहा है, वह भारत और पाकिस्तान के बीच है। लेकिन कांगो संघर्ष में कई राष्ट्रमंडल देश अलग अलग तरह से जुड़े हुए हैं। इसका असर इन देशों, खास तौर पर ज़िम्बाब्वे पर दिखाई दिया है जहां अशांति और गरीबी बढ़ रही है।

cyan black

पूर्वोत्तर भारत में जातीय संघर्ष और गरीबी

भारत में पूर्वोत्तर के सात राज्य कम विकसित क्षेत्रों में आते हैं। नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम, असम और अरुणाचल प्रदेश की अर्थव्यवस्था को जातीय संघर्ष और विघटनकारी गतिविधियों के चलते भारी नुकसान उठाना पड़ा है। मणिपुर और त्रिपुरा की आबादी का एक–तिहाई, अरुणाचल प्रदेश में 60% और मेघालय, मिज़ोरम और नागालैंड में 85–95% के बीच जनजातीय लोग रहते हैं। इस क्षेत्र में असम में सबसे ज़्यादा आदिवासी रहते हैं, हालांकि वे राज्य की आबादी का केवल 12.8 प्रतिशत हिस्सा हैं। मैदानी राज्यों की तुलना में कम आबादी वाले पूर्वोत्तर क्षेत्र में 25–30 प्रतिशत के बीच आबादी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन–यापन करती है। औसत प्रति व्यक्ति आय 3,530/– रुपये है, जो 5,440/– रुपये की अखिल भारतीय औसत प्रति व्यक्ति आय के मुकाबले 33 प्रतिशत कम है।[176] असम को छोड़कर इनमें से किसी भी पर्वतीय राज्य में रेलमार्ग नहीं है। बुनियादी सुविधाओं का अभाव, वाणिज्य, व्यापार और विकास गतिविधियों में निवेश की कमी, बढ़ती बेरोजगारी और तत्संबंधी समस्याएं, इस क्षेत्र में विकास के अभाव का कारण और परिणाम, दोनों हैं। इस क्षेत्र की गरीबी का स्तर केवल बिहार (42%), उड़ीसा (47%) और मध्यप्रदेश (37%) से कम है।

सहस्राब्दि के अंत में गरीबी की स्थिति

राज्य	गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोग	राज्य	गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोग
अरुणाचल प्रदेश	33.47%	मिज़ोरम	19.47%
असम	36.09%	नागालैंड	32.67%
मणिपुर	28.54%	त्रिपुरा	34.44%
मेघालय	33.87%		

बोगेनविल में पापुआ न्यूगिनी के साथ संबंधों को लेकर एक दशक से चले आ रहे संघर्ष से भारी तबाही हुई है। इससे स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी तमाम सेवाएं लगभग तबाह हो कर रह गयी हैं। कृषि और अन्य आर्थिक गतिविधियां ठप्प पड़ गयी हैं। एक पूरी की पूरी पीढ़ी शिक्षा सुविधाओं से वंचित होकर रह गयी है और असहिष्णुता की संस्कृति ने जन्म लिया है। सालोमोन और फीजी द्वीपों में जातीय संघर्षों से भी आर्थिक विकास और वितरण व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। अफ्रीका में, खास तौर पर मोज़ाम्बिक, युगांडा और केन्या में भी जातीय संघर्ष से निवेश कम हुआ है, भेदभाव बढ़ा है और अधिकारों का अनेक तरह से उल्लंघन होने लगा है। इससे अर्थव्यवस्था कमज़ोर हुई है और कुछ खास समुदायों के लोग संसाधनों का लाभ उठाने से वंचित होते जा रहे हैं।

लेकिन राष्ट्रमंडल में सबसे बुरी तरह से प्रभावित क्षेत्र दक्षिण एशिया है जहां के लोग दुनिया के निर्धनतम लोगों में गिने जाते हैं। एशिया के अन्य अधिकतर देशों में जोरदार प्रगति हुई है और लोगों का जीवन स्तर लगातार ऊंचा उठ रहा है। लेकिन आंतरिक और बाह्य संघर्षों की वजह से भारत, पाकिस्तान, बांगलादेश और श्रीलंका इस प्रगति से वंचित रहे हैं।[177] बांगलादेश में चटगांव पहाड़ी क्षेत्र को लेकर अशांति के कारण नुकसान हुआ है और भारत के साथ संबंधों में समय–समय पर तनाव उत्पन्न हुआ है। श्रीलंका के उत्तर में तमिलों के एक वर्ग की स्वायत्तता या अलग देश की मांग की वजह से वर्षों से अशांति का माहौल बना हुआ है। इसमें कई हजार लोग मारे गये हैं, संपत्ति को भारी क्षति पहुंची है, देश की अर्थव्यवस्था धीमी पड़ गयी है और साक्षरता व स्वास्थ्य के क्षेत्र में आम तौर पर जो उपलब्धियां प्राप्त कर ली गयी थीं, उनमें गिरावट आयी है। देश के कुशल और प्रतिभाशाली नागरिक बड़ी संख्या में देश छोड़कर चले गये हैं। पाकिस्तान में शिया और सुन्नियों के झगड़े, मोहाजिर कौमी मूवमेंट के संघर्ष और पख्तूनों व बलूचों की अलग देश की मांग ने अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर डाला है। बड़ी तादाद में लोग बम धमाकों और इसी तरह की हिंसा के शिकार हुए हैं। संघर्ष वाले इन सब क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों पर अक्सर प्रहार होता रहा है। भारत में साम्प्रदायिक दंगे और हिंसा मानों जिन्दगी का हिस्सा बन चुके हैं। कश्मीर में हिज़्बुल मुजाहिदीन और लश्करे तैयबा जैसे अलगाववादी संगठनों और पूर्वोत्तर में असम के बोडोलैंड तथा अन्य आंदोलनों के कारण अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। इससे लाखों लोगों की रोजी–रोटी छिनी है और संपत्ति तबाह हुई है। भारत

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

और पाकिस्तान आजादी के बाद से ही कश्मीर को लेकर किसी न किसी तरह के संघर्ष में उलझे रहे हैं। इन सब देशों में इस तरह की युद्ध जैसी गतिविधियों की वजह से बच्चों को सेना में जबरन भर्ती होने को मजबूर होना पड़ा है, महिलाओं के साथ बलात्कार की घटनाएं हुई हैं और मानव अस्तित्व के लिए परिस्थितियां अनुकूल नहीं रह गयी हैं। इनसे उत्पादक गतिविधियों के लिए इन्सान की क्षमता समाप्त होती जाती है और लाखों लोग, जो अन्यथा अपने ही प्रयासों से अच्छा जीवन व्यतीत कर सकते थे, गरीबी के चंगुल में फंस गये हैं।

करीब एक दशक के विराम के बाद सन् 2000 में सारी दुनिया में सैन्य खर्च में भारी बढ़ोतरी हुई है। सबसे अधिक वृद्धि अफ्रीका और दक्षिण एशिया में हुई है। वास्तविक आंकड़ों के रूप में यह बढ़ोतरी अफ्रीका में 37 प्रतिशत और दक्षिण एशिया में 23 प्रतिशत रही है। 2002 में देशों द्वारा 80,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर या विश्व के सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 2.5 प्रतिशत धन हथियार खरीदने पर खर्च किया गया।[178] सैन्य साज–सामान पर सबसे ज्यादा खर्च करने वाले प्रथम 15 देशों में ब्रिटेन और भारत शामिल हैं – दोनों राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं।[179] इन संघर्षों का एक परिणाम यह निकला है कि दक्षिण एशिया विश्व के सर्वाधिक सैन्यकृत क्षेत्रों में से एक बन गया है। इस क्षेत्र के देशों ने 2002 में 1700 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक धन हथियारों पर खर्च किया।[180] मात्र एक तरह का सैन्य उपकरण–सुखोई–30, मल्टीरोल फाइटर एयरक्राफ्ट (यानी बहुउद्देश्यीय लड़ाकू विमान)–खरीदने के भारत के समझौते से देश के बजट पर भारी दबाव पड़ने की संभावना है, जो पहले ही संकट के दौर से गुज़र रहा है।[181] परमाणु शस्त्रागार के रखरखाव पर 15 अरब अमेरिकी डॉलर खर्च करने पड़ रहे हैं, जिसे भुखमरी झेल रहे करोड़ों लोगों को भोजन उपलब्ध कराने सहित, अधिक उत्पादक गतिविधियों पर खर्च किया जा सकता है।

छोटे हथियारों और हल्की शस्त्र प्रणालियों के अवैध व्यापार के विभिन्न पहलुओं के बारे में हाल में हुए संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन में मानव सुरक्षा के लिए एक अन्य गुप्त खतरे की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया। यह खतरा है दुनिया भर में करीब 50 करोड़ छोटे हथियारों का जो अवैध और गुप्त रूप से रखे जा रहे हैं।[182] हथियारों का 40 प्रतिशत व्यापार अवैध रूप से होता है। लेकिन इस से भी ज्यादा हथियार गैर–कानूनी बाज़ार में पहुंच जाते हैं। ये हल्के अवैध हथियार और छोटी शस्त्रास्त्र प्रणालियां तनाव वाले इलाकों में चुम्बक की तरह खिंची चली जाती हैं जिससे जातीय संघर्ष बढ़ते हैं और इस प्रक्रिया में सीमित संसाधन बरबाद होते हैं। सस्ते दामों पर उपलब्ध हथियार तो कभी कभी एक बार के भोजन के बराबर दामों पर या फिर एक वक्त की रोटी के बदले में आसानी से मिल जाते हैं। इससे इन देशों की राज्यसत्ता कमज़ोर होती है। दक्षिण एशिया में 7.5 करोड़ आग्नेय–अस्त्रों में से 80 फीसदी नागरिकों के हाथ में हैं–इन हथियारों में से तीन चौथाई भारत और पाकिस्तान में हैं।[183] अनुमान है कि बांगलादेश में 50,000 अवैध छोटे हथियार हैं जो अपराधियों के हाथों में हैं। संघर्ष के समाधान के लिए चूंकि हल्के हथियारों का इस्तेमाल किया जाता है इसलिए उस देश में हर रोज औसतन 4 लोगों की जान जाती है और 10 घायल होते हैं।[184] वैध हो या अवैध, हथियारों का व्यापार बहुत बड़ा है। जिन देशों में इस तरह के हथियारों का पता लगाने और उनपर नियंत्रण के लिए कोई कारगर प्रणाली नहीं है और जो देश सीमा पार से ऐसे हथियारों की तस्करी को रोकने में असफल हैं, वहां यह खतरा और अधिक है। हथियार चाहे कानूनी तौर पर बेचे जा रहे हों या गैर–कानूनी तौर पर, इनका व्यापार काफी बड़ा है। दुनिया में हथियारों का सबसे बड़ा व्यापारी अमरीका है। सम्मेलन में अमरीका अवैध हथियारों की समस्या का सबसे अधिक सामना कर रहे अफ्रीकी देशों, कनाडा और भारत जैसे राष्ट्रमंडल देशों के इन हथियारों पर पाबंदी लगाने के प्रयासों को विफल करने में कामयाब रहा है। हथियारों की समस्या से ग्रस्त देश चाहते थे कि समस्या के समाधान के लिए सम्मेलन में कोई कठोर कार्य योजना सामने आये। इससे अवैध हथियारों पर नियंत्रण के प्रयासों को और शीघ्रता तथा निश्चितता के साथ आगे बढ़ाने के काम में सहायता मिलती। बहरहाल, इस विषय पर अपनी तरह के इस पहले सम्मेलन से एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई है जिससे इस मुद्दे पर और अधिक ध्यान दिया जाएगा।

जातीय और सामाजिक संघर्ष वाले क्षेत्रों में आग्नेय अस्त्रों से घायल व्यक्तियों को हमेशा समय पर तथा समुचित चिकित्सा देखभाल नहीं मिलती। चिकित्सा देखभाल के अभाव में उनके आंशिक या अस्थायी विकलांग होने का खतरा रहता है और वे अन्य सबल लोगों के समान जीविका अर्जित करने की क्षमता खो बैठते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि सार्वजनिक सेवाओं में गिरावट और दीर्घावधि की सशस्त्र हिंसा के बीच सीधा संबंध है। सरकार द्वारा प्रदान की जा रही स्वास्थ्य, शिक्षा और नगरीय सेवाओं में व्यवधान आता है, सार्वजनिक और निजी निवेश कम हो जाता है और व्यापार तथा वाणिज्य को क्षति पहुंचती है।[185] गोलीबारी के बीच फंसे पीड़ित व्यक्तियों, खासकर बच्चों और महिलाओं पर भय का मानसिक असर पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों में मानव विकास को कई तरह की क्षति पहुंचती है। सबसे बुरा असर गरीबों पर पड़ता है।

अध्याय –3

गरीबी दूर करने के लिए अधिकार आधारित दृष्टिकोण

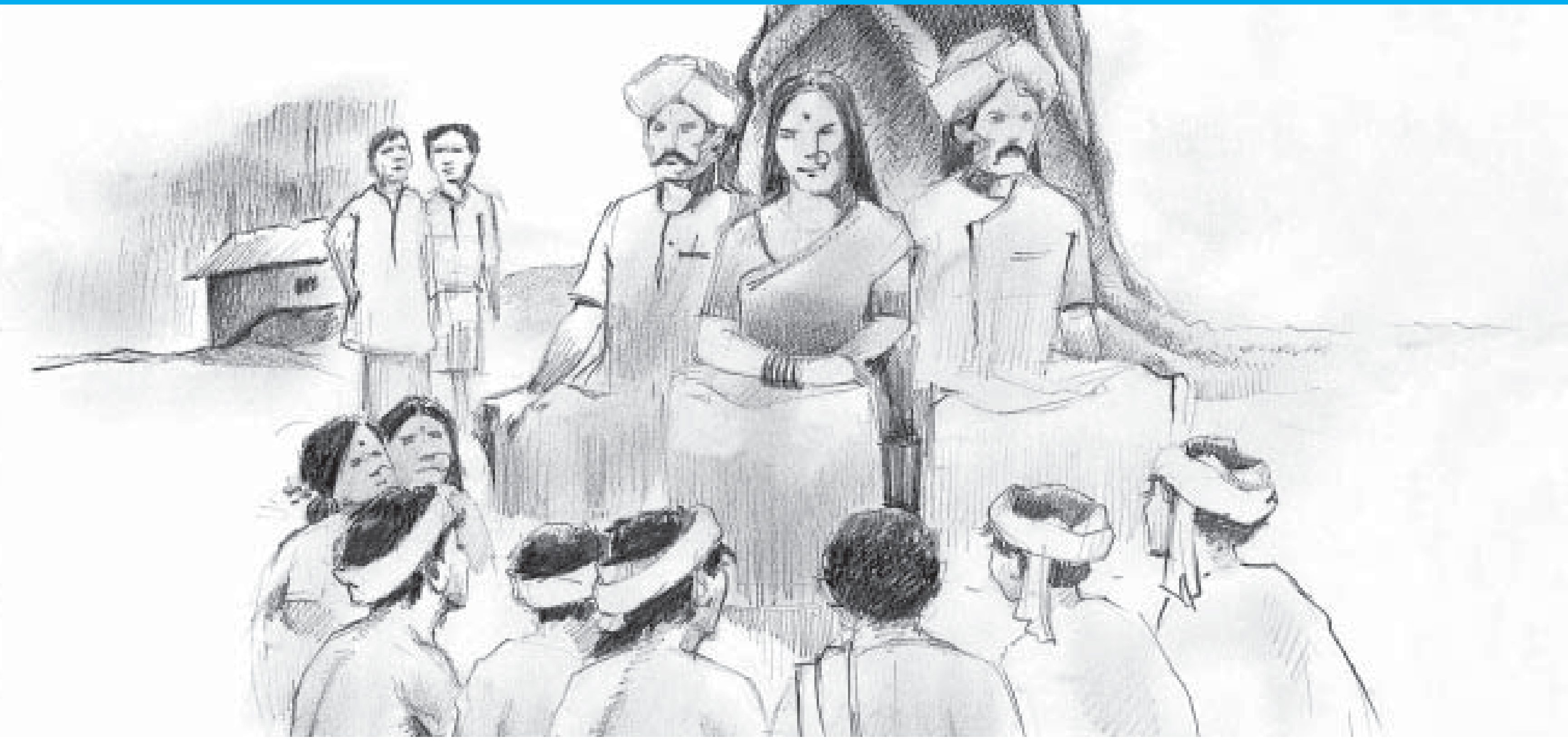

पिछले अध्यायों में यह दर्शाया गया कि गरीबी मानवाधिकारों के हनन और उन पर अमल करने में विफलता का नतीजा है। गरीबी दूर करने के नाम पर अब तक जो उपाय किए गए, वे मुख्यतः बाज़ार परिचालित विकास की धारणा से प्रभावित और तदर्थ बुद्वि का परिणाम थे। वे समाधान थे ही नहीं।

दान हमेशा अनुग्रह और उपकार के स्तर पर रहता है, इससे अधीनता बढ़ती है, गरीबों की कथित खामियों के बारे में भ्रान्त धारणाओं को बल मिलता है, साथ ही अमीरों को उनके बारे में शिकायत करने का आधार मिलता है और दानदाताओं (donors) को अपना वैधानिक दायित्व पूरा करने से इंकार करने को न्यायोचित ठहराने का अवसर मिल जाता है। बाज़ार पर वैचारिक निर्भरता एक अन्तर्निहित लक्ष्य पर टिकी हुई है, जिसमें व्यक्ति की लाभ पाने की कामना और अन्ततः उसके लालच को महिमा मंडित किया जाता है। यह मुनाफा–संचालित व्यवस्था (profit-driven system) है, जिस पर अगर नियंत्रण नहीं किया गया तो वह समुदायों को छिन्न–भिन्न और नष्ट कर देगी। इससे कमजोरी और असुरक्षा की स्थिति पैदा होती है और यह सामान्य मूल्यों पर आधारित नहीं है, क्योंकि इसमें मनुष्य को वस्तुओं, श्रम या उपभोक्ताओं के रूप में देखा जाता है।

दूसरी ओर, गरीबी दूर करने के लिए जो समाधान मानवाधिकारों की बुनियाद पर सोचे गए हैं, वे एक ऐसा स्पष्ट विकल्प प्रदान करते हैं, जिसे पितृवत कल्याण पर आधारित दृष्टिकोण या बाज़ार से रचनात्मक परिणाम की उम्मीद पर आधारित दृष्टिकोण, दोनों के ही स्थान पर इस्तेमाल किया जा सकता है। अधिकारों पर आधारित नज़रिया गरीबी दूर करने के उस नज़रिये से मेल नहीं खाता जिसमें थोड़ा–थोड़ा करके लाभ पहुंचाने की कोशिश की जाती है। इससे मानवाधिकार उपेक्षित होते हैं। दूसरी तरफ, अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण यह स्वीकार नहीं करता कि गरीबी दूर करने को बाज़ार का आकस्मिक सह–उत्पाद समझा जाये।

e:\chri-talisman report\final files\p9_91.pmd

cyan black

इसमें गरीबों को भागीदारी और अधिकार देने को प्राथमिकता दी जाती है, लोकतांत्रिक पद्धतियों पर बल दिया जाता है और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय, राष्ट्रों, वाणिज्यिक क्षेत्र और स्थानीय समुदायों और संगठनों से उम्मीद की जाती है कि वे मानवाधिकारों का सम्मान व अनुपालन करें और उन्हें प्रोत्साहित करें। यह नज़रिया विश्व समाज के नैतिक और वैधानिक दायित्वों पर बल देता है ताकि न्याय और समानता पर आधारित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था सुनिश्चित की जा सके जिसमें सभी समूह और व्यक्ति सम्मानपूर्वक जी सकें। यह मानव–मात्र की समानता के मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित है। यह विभिन्न आकांक्षाओं और हितों वाले व्यक्तियों और समुदायों के बीच संतुलन कायम करता है और उनके बीच सुलह–सफाई का रास्ता है। इस तरह यह उन अतीव आर्थिक या सामाजिक नीतियों और विचारधाराओं की तरफ झुकाव से रोकता है जो वैश्वीकरण के अनेक आचरणों और औचित्यों में समाविष्ट हैं।

यह शासन में सभी नागरिकों की भूमिका को मान्यता प्रदान करने की आवश्यकता पर बल देता है। इस सिद्धान्त के मूल्यों की सहज रूप से अधिकतर लोग प्रशंसा कर सकते हैं। वास्तव में मानवाधिकार सामाजिक और राजनीतिक संगठन का आधार प्रदान कर सकते हैं। जिन समुदायों को जीवन की बुनियादी जरूरतों से वंचित रखा गया हो, उन्हें एक संतोषजनक जीवन का अधिकार देने की अपील बड़ी ही व्यापक और समर्थ बनाने वाली है। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों का विचार, समान अवसर और जीवन की बुनियादी जरूरतें पूरी किए जाने के दावों के लिए एक वैध भूमिका निभा सकता है। विविध हितों के एक 'पिटारे' से भिन्न मानवाधिकार एक सुसम्बद्ध, जटिल व्यव्स्था का निर्माण करते हैं, जो सार्वभौम मूल्यों पर आधारित है।

गरीबी उन्मूलन का अधिकार आधारित नज़रिया हमें विकास के वास्तविक प्रयोजनों के प्रति सचेत करता है। मानवीय विकास के सभी पहलुओं को हासिल करने पर ज़ोर देता है। इन पहलुओं में रोज़गार, आहार, स्वास्थ्य देखभाल, साक्षरता, भागीदारी, मुक्त जीवन, संगठन बनाने और एकजुट होने के अधिकारों का संरक्षण शामिल है। यह दृष्टिकोण हमें उन दायित्वों का स्मरण कराता है जो सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा पूरे किए जाने हैं ताकि वे ऐसी नीतियां और संस्थान कायम करें, जिनमें व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों के प्रयासों के माध्यम से इन अधिकारों को हासिल किया जा सके।

वैश्वीकरण की विचारधारा और बाज़ारों के सामने आ रहे प्रभाव, मानवाधिकार मानदंडों के विपरीत हैं और विडम्बना यह है कि वे इतने शक्तिशाली हैं कि उनका मुकाबला मानवाधिकारों की विचारधारा से ही किया जा सकता है, जो अधिक प्रभावशाली है क्योंकि इसे सार्वभौम श्रेष्ठता का दर्जा प्राप्त है, जिसका विकास पिछले वर्षों में बहस, परिष्कार, पुनरावृत्ति और सहमति के जरिए हुआ है। आवश्यकता सिर्फ मानवाधिकारों की सर्वोच्चता दोहराने और सभी स्तरों पर उनकी ताकत बढ़ाने की है ताकि वैश्वीकरण के अधिक हानिकारक असर पर नियंत्रण किया जा सके और मानव गरिमा की रक्षा और उसे प्रोत्साहित करने की दिशा में काम किया जा सके।

यह सही है कि हर प्रकार के अधिकार के महत्व की अलग–अलग व्याख्याएं हैं, क्योंकि 'अच्छे समाज' की अलग–अलग परिकल्पनाएं की गई हैं। प्रतिस्पर्धी प्रतिमानों के होते हुए कभी कभी मानवधिकारों का समूचा क्षेत्र विवादग्रस्त लगता है, खासकर इसलिए कि निहित स्वार्थों के कारण व्यवहार में मानवाधिकारों की परस्पर निर्भरता तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के समान दर्ज़ा नहीं दिया जाता।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक माहौल में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों का चुनिन्दा इस्तेमाल करने के बारे में शिकायतें की गयी हैं जो कुछ हद तक जायज़ हैं। जैसे की नमनशील राजनैतिक और आर्थिक सांझेदारों को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से अन्य देशों का नाम उछालने या बदनाम करने के लिए हों; या अपने देश के लाभ के लिए विदेशी बाज़ारों को जबरन खुलवाने के लिए हों; या भौगोलिक आधिपत्य स्थापित करने की दृष्टि से विदेशी नीति का एक तंत्र के रूप में इस्तेमाल करने के लिए हों; अथवा ऐसी शर्तें लागू करवाने के लिए जो शक्तिशाली औद्योगिकी हितों का संरक्षण करने के बारे में हों।

अलग–अलग समय पर भिन्न–भिन्न विचारधाराओं को उचित ठहराने के लिए अलग–अलग अधिकारों का इस्तेमाल किया जाता है–इनमें कोई व्यक्तिगत उद्यम और लाभ पर आधारित होता है, तो कोई सामाजिक न्याय और भागीदारी पर। हमेशा ऐसा नहीं होता कि किसी विचारधारा का विभाजन, जैसा कि नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से सम्बद्ध अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

गरीबों के पक्ष में एक आवाज़

गरीबी दूर करने के प्रति अधिकार आधारित दृष्टिकोण में गरीबों की भागीदारी पर बल दिया गया है, ताकि नीति निर्माण प्रक्रिया में उनकी आवाज़ का ध्यान रखा जा सके।

यह पता लगाने के लिए कि निर्धनों का गरीबी और उसके समाधान के बारे में क्या कहना है, दक्षिण अफ्रीकी मानवाधिकार आयोग और लिंग समानता आयोग ने गरीबी के बारे में नौ प्रान्तों में लगातार 10 सुनवाइयों के दौरान गरीबों का आह्वान किया कि वे गरीबी के बारे में अपने विचार रखें। इन सुनवाइयों में करीब 10, 000 लोगों और समुदायों को हिस्सा लेने के लिए एकजुट किया गया। 35 दिन तक चली सुनवाई में करीब 600 लोगों ने मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किये। इसके अंतर्गत भोजन, रोज़गार, भूमि, ग्रामीण विकास, आवास और शहरी विकास, सामाजिक सेवाएं, स्वास्थ्य शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और पर्यावरण जैसे मुद्दों पर सुनवाई हुई। बड़ी संख्या में लोगों ने जिन सिफारिशों पर हस्ताक्षर किये, उम्मीद है कि सरकार उन पर गरीबी उन्मूलन की अपनी नीतियों और कार्यक्रमों में ध्यान देगी।

इसी प्रकार नाइजीरिया में, विजन ऑव डेवलेप्मेंट प्रोजेक्ट अभियान के अंतर्गत देशभर में लोगों का सर्वेक्षण करके गरीबी के बारे में उनके विचार जानने की कोशिश की गयी। उनसे पूछा गया कि वे अपने हालत के बारे में क्या सोचते हैं और उसमें सुधार के लिए क्या किया जाना चाहिए। भारत में, केरल में विकास योजनाएं राज्यभर में लम्बे विचार–विमर्श और सर्वेक्षणों के बाद तैयार की जाती हैं।

1999 में युगांडा में गरीबी मूल्यांकन कार्यक्रम के दौरान पता चला कि लोग गरीबी को ''बहुआयामी–अधिकारहीनता और बुनियादी भौतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साधनों का अभाव'' [186]– मानते हैं। कामनवैल्थ फाउंडेशन द्वारा 45 राष्ट्रमंडल देशों में भागीदार संगठनों के सहयोग से कराए गए नागरिक समाज के एक सर्वेक्षण के नतीजों में यह तथ्य उद्घाटित हुआ कि बेहद गरीब व्यक्ति को भी इस बात का अहसास है कि बेहतर शासन और बेहतर समाज का कितना महत्व है, लेकिन उसे लगता नहीं कि कोई सुनने वाला है।[187]

प्रत्येक सर्वेक्षण से पता चलता है कि लोगों का मानना है कि गरीबी की समस्या बेहतर शासन की कमी के कारण बनी हुई है, किन्तु यह जानना मात्र पर्याप्त नहीं है। स्वयं सरकारें और राष्ट्रमंडल उस लॉबी को अपेक्षकृत कम महत्व देते हैं, जिसमें बहुसंख्य आबादी शामिल हैं और अमीर तथा शक्तिशालियों के छोटे समूह की बात पर अधिक ध्यान दिया जाता हैं।

अधिकारों के प्रसंविदा के अलग–अलग होने का अर्थ है, कि विचारधाराओं की विभाजन रेखा के परे एक ओर नागरिक और राजनीतिक अधिकार स्थित हैं और दूसरे किनारे पर आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार। यह विभाजन, वर्ग भेद और आर्थिक वस्तु स्थिति के कारण भी सकता है। उदाहरण के लिए, सम्पत्ति का अधिकार अमीर और गरीब दोनों के लिए महत्वपूर्ण है, लेकिन गरीब की सम्पत्ति की रक्षा नहीं की जाती; सम्पत्ति के संरक्षण का सवाल केवल तभी उठता है जब उसे गरीब से लेकर अमीर के हवाले कर दिया गया हो। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अवधारणा पर 17 वीं और 18 वीं सदियों में पश्चिम में जबरदस्त आन्दोलन उठा था, लेकिन इन अधिकारों का लक्ष्य एक नये उभरते हुए वर्ग के शासन के दावे को वैधता प्रदान करना और अंततः उसे स्वीकार्य बनाना था। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की धारणा आज उसी तरह की भूमिका अदा कर सकती है और उपेक्षित तथा अधिकारहीन वर्गों और समुदायों के जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं और समान अवसरों के दावों को वैधता प्रदान की जा सकती है। इस तरह मानवाधिकारों का दायरा कारगर बनाने के लिए नीति निर्माताओं को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को अधिक जोरदार ढंग से मान्यता देनी होगी।

हालांकि मानवाधिकार नियमों के इस्तेमाल और उन पर अलग–अलग मात्रा में जोर दिये जाने को लेकर विवाद बने हुए हैं, लेकिन अविभाज्य मानवाधिकारों के समूचे आदर्श में निहित मूल्यों की प्रधानता उन्हें एक सर्वोच्च वैधता प्रदान करने वाली शक्ति बनाती है। गिने–चुने देश ऐसे हैं जो मानवाधिकारों में निहित मूल्यों अथवा इन अधिकारों पर निगरानी और उनके संरक्षण के लिए किये गये अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या राष्ट्रीय प्रबंधों का विरोध करते हैं। इन अधिकारों के क्षेत्र और मूल्यों के बारे में व्यापक समझौता करना संभव हुआ और विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं और विभिन्न धर्मों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं से सम्बद्ध अनेक देशों द्वारा महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय

समझौतों का अनुसमर्थन भी किया गया है। लेकिन यह व्यापक समझौता ज्यादातर शब्दांडबर तक ही सीमित होता है। पर अत्याचारी राज्यों के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा कार्रवाई करने के पक्ष में भी यह कारगर हुआ है। इतना ही नहीं, चुने हुए अधिकारों की बुनियाद चाहे धार्मिक हो या धर्म–निरपेक्ष, इस बात पर व्यापक सहमति है कि अधिकार मानवमात्र में अंतर्निहित हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। जो लोग मानवाधिकारों पर निरन्तर नुक्ताचीनी करते हैं, और उन्हें थोपी गयी मूल्य प्रणाली बतलाते हैं, वे भी समानता और भागीदारी की सार्वभौम अवधारणाओं को गम्भीर चुनौती नहीं देते। इन्हीं अवधारणाओं पर मानवाधिकार आधारित हैं।

इन अधिकारों पर सहमति का आधार यह अवधारणा है कि मानवाधिकारों का उद्देश्य मानव की गरिमा की रक्षा करना है, भले ही इस गरिमा के स्रोत के बारे में अलग–अलग विचार क्यों न हों। मानवाधिकार की धारणा मानव गरिमा को सर्वोपरि रखती है और चूंकि गरिमा जीवन की स्वायत्तता और बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा किये जाने के साथ गहरे से जुड़ी है, अतः इसका संबंध गरीबी के कारणों और उन्हें दूर किये जाने से भी जुड़ा हुआ है।

मानवाधिकारों की रूढ़िवादी व्यवस्था ने भी माना है कि सभी प्रकार के अधिकार यानि–सामाजिक, आर्थिक, नागरिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकार–परस्पर निर्भर और अविभाज्य हैं। इस बात की पुष्टि 1993 में हुए विश्व मानवाधिकार सम्मेलन सहित कई अवसरों पर की गई है। 'अविभाज्यता और परस्पर निर्भरता' में निहित अधिकारों के संश्लेषण को विकास के अधिकार में पूरी तरह स्पष्ट किया गया है। इसके केन्द्र में मानव को रखा जाता है और उसे विकास का सक्रिय कर्ता समझा जाता है। आर्थिक और राजनीतिक अधिकार अपने में पूर्ण नहीं हैं; मानवीय संभावनाओं को हासिल करने के लिए दोनों की आवश्यकता है। चूंकि इन अधिकारों का संबंध व्यक्ति की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और मानवता के विभिन्न आयामों के साथ है, अतः उनकी अविभाज्यता परस्पर अंतर और प्रतिस्पर्धा के बीच संतुलन कायम करके बनाये रखी जाती है।

गरीबी के कारण और परिणाम तथा उस पर काबू पाने के लिए सुझाये गये उपायों में मानवाधिकारों की परस्पर निर्भरता और अविभाज्यता सबसे अधिक सामने आती है। जो गरीब हैं, आर्थिक या सामाजिक रूप से हाशिए पर हैं, वे ही नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने में सबसे अक्षम हैं। उन्हें कोई भौतिक सुरक्षा उपलब्ध नहीं है; वे जनमत या नीतियों को प्रभावित नहीं कर सकते; अपने को शोषण अथवा अनुचित व्यवहार से बचाने के लिए कानून या अदालतों में नहीं पहुंच सकते और उनकी भागीदारी की कोई संभावना नहीं है। ये सब बातें उनके अवसरों, आहार, मकान, स्वास्थ्य देखभाल, रोज़गार और शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यकताओं तक उनकी पहुंच को सीमित बनाती हैं और उनका जीवन दुर्भर हो जाता है।

अधिकारों की परस्पर निर्भरता स्पष्ट है और उस पर अमर्त्य सेन ने अकाल और सूखे के बारे में किये गये अपने बहुचर्चित लेख में प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि: ''किसी लोकतांत्रिक राज्य में नियमित चुनाव, निर्भीक पत्रकारिता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रताओं के रूप में उपलब्ध विविध राजनीतिक स्वतंत्रताओं को सूखों की समाप्ति के पीछे वास्तविक ताकत समझा जाना चाहिए। फिर लगता है स्वतंत्रताओं की एक श्रेणी–आलोचना, प्रकाशन, मतदान की स्वतंत्रताएं–प्रायः अन्य प्रकार की स्वतंत्रताओं–भूख तथा सूखे से बचने की स्वतंत्रता–से जुड़ी हैं।''[188] गरीबी के संदर्भ में दोनों प्रकार के अधिकारों का अर्थ है गरीबों को सशक्त बनाना। आज सामाजिक न्याय के बिना लोकतंत्र स्वयं खतरे में है, जबकि सामाजिक न्याय नागरिकता के अधिकारों का पालन किये बिना हासिल नहीं किया जा सकता। वास्तव में अधिकारों का दायरा गरीबी उन्मूलन की दिशा में एक उचित संतुलित दृष्टिकोण उपलब्ध कराता है।

असल में मानव विकास, जो गरीब की क्षमताओं को बढ़ाने पर बल देता है, और मानवाधिकारों के बीच एक प्राकृतिक सहजीविता है। यह बात संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम–यू एन डी पी की मानव विकास रिपोर्ट से मेल खाती है, जिसमें कहा गया है कि मानव विकास और मानवाधिकार मिलकर काम करते हैं। रिपोर्ट के अनुसार :

''अगर मानवीय विकास समुदाय के सदस्यों की क्षमताओं और स्वतंत्रताओं में बढ़ोतरी पर ध्यान केन्द्रित करता है, तो मानवाधिकार व्यक्तिगत और सामूहिक एजंटों के क्रियाकलापों और इन क्षमताओं और स्वतंत्रताओं को पाने के लिए बनाई सामाजिक व्यवस्थाओं पर किए जाने वाले दावे हैं।''[189]

मानव विकास विचारधारा में अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण के लिए कई उपयोगी सबक हैं। जब मानवाधिकार की सोचमात्र प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करने के जाल में फंस जाए तब मानव विकास नतीजों पर ध्यान केन्द्रित करने में मदद करता है। मानव विकास में इस बात पर बल दिया जाता है कि अधिकारों और कर्त्तव्यों के साथ संसाधनों, विवशताओं और क्षमताओं का लेखा–जोखा रखा जाना चाहिए। मानव विकास के लिए परिवर्तन ज़रुरी है और इसलिए गतिशील दृष्टिकोण ज़रुरी है, पर मानवाधिकार संबंधी सोच में उसका अभाव है।

हालांकि हम जानते हैं कि मानवीय विकास, मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता और मानवीय क्षमताओं से सम्बद्ध है, लेकिन उसमें वह टकराव कहीं दिखाई नहीं देता जो अधिकारों व दायित्वों के सवालों पर सोचने में दिखता है। इस तरह मानव विकास, मानवाधिकारों के मुकाबले अधिक सुविधाजनक ढांचा तैयार करता है। मानव विकास अवधारणा के साथ दायित्वों को जोड़ने के लिए हमें यह कहना होगा कि मानव के सिर्फ अधिकार ही नहीं हैं, बल्कि अन्य लोगों का यह दायित्व भी है कि उनका सम्मान किया जाए, उन्हें पूरा किया जाए और उन अधिकारों को बढ़ावा दिया जाए। यहां कुछ लोग तकलीफ महसूस करते हैं क्योंकि जब यह कहा जाता है कि कुछ दायित्व (दूसरे शब्दों में 'ज़िम्मेदारियां') भी हैं, तो लगने लगता है कि अगर उन्हें पूरा नहीं किया गया तो दोष (culpability) व्यक्ति या व्यवस्था में मौजूद है।

गरीबी उन्मूलन के साथ मानवाधिकारों को जोड़ने का एक महत्वपूर्ण निहितार्थ यह है कि इसमें उत्तरदायित्व की अपेक्षा की गयी है। जब घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में सत्ता असंतुलित हो, तो उत्तरदायित्व की धारणा सर्वाधिक उपेक्षित लोगों के समुदायों के पक्ष में जाती है। भले ही व्यक्तिगत स्तर पर अनेक लोग कानूनी रूप में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किसी मंच का इस्तेमाल न कर पायें, लेकिन उत्तरदायित्व की संस्कृति की मौजूदगी–शुरू से अंत तक–सभी के कार्यों को विवेकपूर्ण बनाती है। इससे उनकी नीतियों और कार्यपद्धतियों में ज़िम्मेदारी की भावना भरी जा सकती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे संगठन इस धारणा का प्रतिरोध करते हैं और वास्तव में उन्होंने यह दर्शाया है कि एसएपीज़ जैसी नीतियों से प्रभावित अधिसंख्य लोगों पर उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु लोगों और राष्ट्रों का संगठन होने के नाते उत्तरदायित्व की भावना को राष्ट्रमंडल को एक संगठन के रूप में स्वयं के लिए और अपने सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए अवश्य स्वीकार करना होगा। यह धारणा अप्रभावी, अलोकतांत्रिक और दूर से नियंत्रित करने वाली धारणा के ठीक विपरीत है।

अगर विकास अनुग्रह और सहायता का परिणाम है और अधिकार हासिल करने का नतीजा नहीं है, तो इसमें दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि सहायता वापिस लिये जाने की स्थिति में विकास के पलटने का खतरा है और दूसरे वह मानव गरिमा की अवधारणा के प्रति उतना संवेदनशील नहीं है, जितना कि मानवाधिकारों को पूरा करके मूर्त रूप दिया जाने वाला विकास होता है। इस दृष्टिकोण में मानव को विकास के केन्द्र में रखा जाता है और मानवाधिकार विकास के साधन और लक्ष्य दोनों ही होते हैं। इसमें अन्य बातों के मुकाबले मानवाधिकारों को प्राथमिकता दी जाती है और उन्हें कानूनों, नीतियों तथा प्रशासनिक उपायों की गुणवत्ता और यहां तक कि वैधता का पैमाना समझा जाता है। अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण में व्यक्तित्वहीन और अमूर्त बाज़ार पर दायित्व आरोपित नहीं किया जाते, इसमें विभिन्न कर्तव्य–धारियों को सीधे जवाबदेह बनाया जाता है।

जिस तरह एसएपीज और बड़ी परियोजनाएं लोगों से सलाह मशविरा किये बगैर थोप दी गयीं, उससे पता चलता है कि विकास नीतियां और संसाधनों का आवंटन यदि मानवाधिकारों के दृष्टिकोण पर आधारित नहीं होगा, तो उससे मानव कल्याण अथवा सामाजिक स्थिरता बढ़ाने में कोई मदद नहीं मिलेगी। वस्तुस्थिति यह है कि अधिकारों की व्याख्या वकीलों तक सीमित रह गई है और विकास की बातें अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों तक। जो स्थिति अपेक्षित है इसे 'मेन्स्ट्रीमिंग' अर्थात मुख्यधारा में शामिल कराने जैसे शब्दों में कहा जा सकता है। गरीबी दूर करने के लिए मानवाधिकारों के ढांचे का उपयोग कार्य क्षमता और सभी नीतियों तथा कार्यों की समीक्षा के माध्यम के रूप में अवश्य किया जाना चाहिए। इसे जनसेवा का सिद्धांत और दक्षता तथा ईमानदारी की धारणा का आधार बनाया जाना चाहिए।

e:\chri-talisman report\final files\p9_91.pmd

वास्तव, में गरीबी दूर करने में अधिकारों के ढांचे के महत्व के बारे में सहमति बढ़ती जा रही है। मौजूदा रुकावटों और समस्याओं के अधिकतर विश्लेषणों में लोकतंत्रीकरण, समानता, भागीदारी और अधिकार प्रदान करने जैसे उपायोग सुझाये जाते हैं। महिलाओं, बच्चों, जनसंख्या और सामाजिक विकास संबंधी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के प्रस्तावों तथा संधि–निकायों के कार्यों से भी यही झलकता है। इसे विस्तार से समझने के लिए एक ऐसे सम्मेलन का उदाहरण प्रस्तुत करना उचित होगा, जिसमें इस तरह के समझौते पर सहमति हुई थी। सामाजिक विकास संबंधी कोपनहेगन घोषणा (1995) में सामाजिक विकास खासकर गरीबी और सामाजिक बहिष्करण की समस्याओं का हल करने के लिए मानवाधिकारों और लोकतंत्र पर काफी ज़ोर दिया गया था। असल में, विकास के अधिकार से सम्बद्ध घोषणा को छोड़कर इस घोषणा में किसी भी अन्य अंतर्राष्ट्रीय घोषणा के मुकाबले अधिक शिद्दत से मानवाधिकारों को विकास के केन्द्र में रखा गया। उदाहरण के लिए, इसमें कहा गया कि समाज के सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र और पारदर्शी तथा ज़िम्मेदार सरकार और प्रशासन सामाजिक और जनकेन्द्रित स्थायी विकास का अपरिहार्य आधार हैं।[190] इसमें आगे कहा गया कि ''महिलाओं की पूर्ण भागीदारी के बिना सामाजिक और आर्थिक विकास का लक्ष्य टिकाऊ ढंग से नहीं प्राप्त किया जा सकता और महिलाओं तथा पुरूषों के बीच समानता और भागीदारी अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए एक प्राथमिकता है और वास्तव में इसे आर्थिक और सामाजिक विकास के केन्द्र में रखा जाना चाहिए।''[191]

कोपनहेगन घोषणा और कार्यक्रम की केन्द्रवर्ती विषयवस्तु में वर्णित प्रथम सिद्धान्तों और लक्ष्यों में ऐसे ''सामाजिक विकास के राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य'' के प्रति वचनबद्धता व्यक्त की गयी है, ''जो मानव गरिमा, मानवाधिकारों, समानता, सम्मान, शांति, लोकतंत्र, परस्पर दायित्व और सहयोग, तथा विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों के प्रति पूर्ण आदर पर आधारित है।''[192] महत्वपूर्ण बात यह है कि सरकारों के बीच ''लोकतंत्र, मानव गरिमा, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एकता, सहिष्णुता, अहिंसा, बहुलता के स्वीकार (pluralism) और राष्ट्रों के भीतर तथा राष्ट्रों के बीच विविधता के पूर्ण सम्मान के साथ भेदभाव रहित व्यवस्था को बढ़ावा देने'' पर सहमति हुई।[193] उन्होंने सभी मानवाधिकारों और विकास के अधिकार सहित सभी के लिए मूलभूत स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान को बढ़ावा देने तथा यह सुनिश्चित करने का संकल्प लिया कि शोषित और कमज़ोर व्यक्तियों और समूहों को सामाजिक विकास में भागीदार बनाया जाएगा।[194] इसमें सभी लोगों, खासकर औपनिवेशिक या विदेशी प्रभुत्व के अन्य रूपों या विदेशी आधिपत्य में रह रहे लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार[195] और जनजातीय लोगों ''की अस्मिता, परम्पराओं, सामाजिक संगठनों के रूपों और सांस्कृतिक मूल्यों का पूर्ण सम्मान करते हुए'' उनके आर्थिक और सामाजिक प्रयासों में सहायता करने का विशेष रूप से उल्लेख किया गया।[196] कोपनहेगन घोषणा के प्रथम संकल्प का अंतिम पैरा ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इसमें कहा गया है कि (सभी हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र) ''मूलभूत मानव विकास के अभिन्न अंग के रूप में विकास को सार्वभौम और अविच्छिन्न अधिकार सहित उन सभी मानवाधिकारों की, जो सार्वभौम, अविभाज्य, परस्पर निर्भर और परस्पर सम्बद्ध हैं, फिर से पुष्टि करते हैं, उन्हें बढ़ावा देते हैं और उनका सम्मान, सुरक्षा और उन पर अमल करने का प्रयास करने के लिए संकल्प करते हैं।

गरीबी दूर करने के लिए अधिकारों के महत्व के बारे में यह उल्लेखनीय सहमति अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, जिस पर अमल करते हुए हमें राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक नीतियों के ढांचे के रूप में मानवाधिकारों की संभावनाओं की खोज करनी होगी।

अध्याय –4

मानवाधिकारों का ढांचा

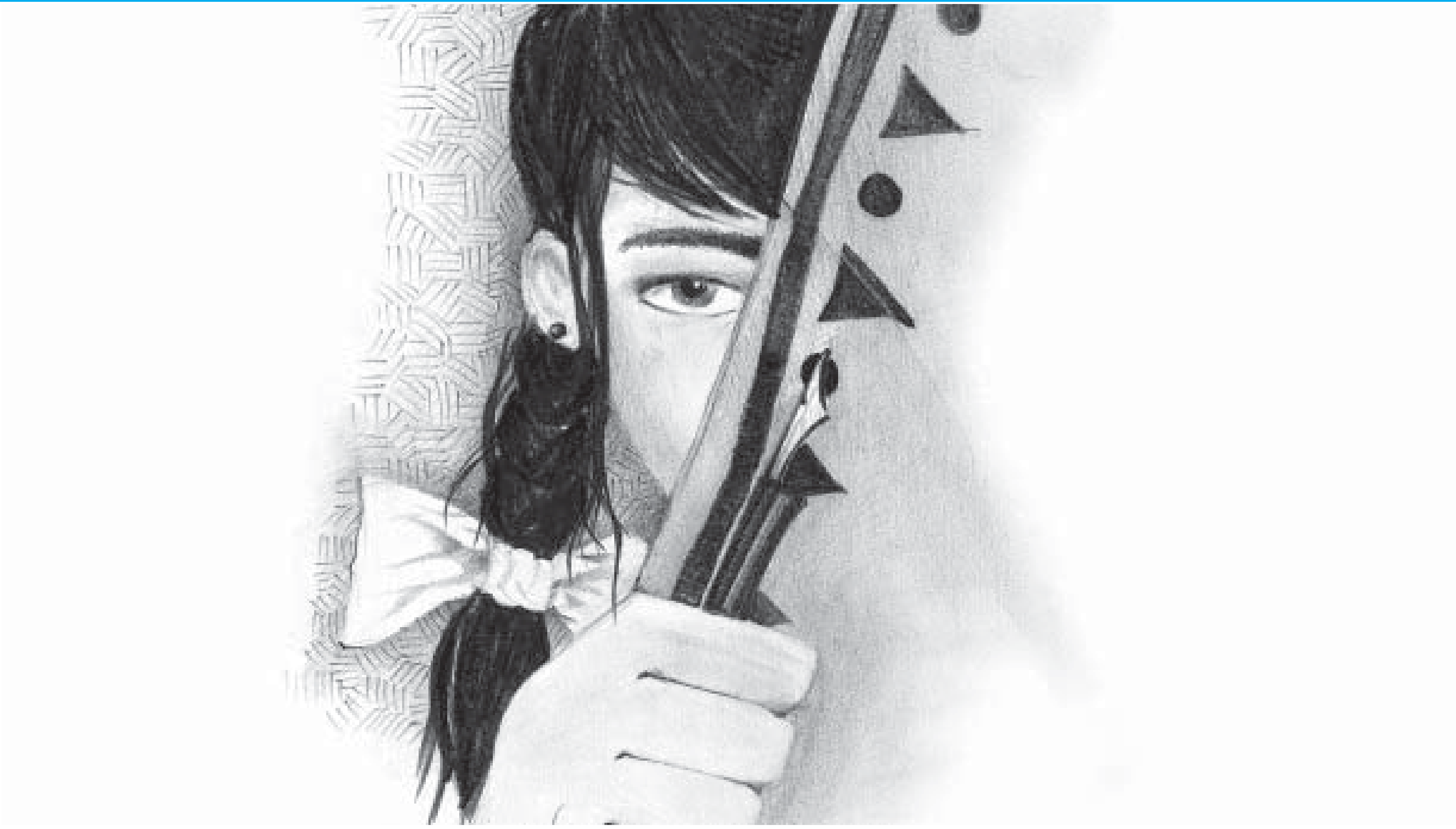

मानवाधिकारों की विश्वव्यापी व्यवस्था

मानवाधिकारों की व्यवस्था सही मायने में अंतर्राष्ट्रीय रूप ले चुकी है। इससे एक नयी अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता का जन्म हुआ है। चूंकि अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आम राय से बने हैं, इसलिए इन्हें पूरी दुनिया में मान्यता मिली हुई है।

यह आम सहमति अंतराष्ट्रीय स्तर पर पहले ही नैतिक मान्यता और/या कानूनी तौर पर लागू होने वाले समझौतों का रूप ले चुकी है। मानवाधिकारों और गरीबी उन्मूलन के बारे में राष्ट्रमंडल ने जो वक्तव्य प्रस्तुत किए हैं और जो शपथ ले रखी हैं, वे इन देशों की नीतिगत आंतरिक तथा अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं को दर्शाते हैं। वैसे तो 'राष्ट्रमंडलीय मानवाधिकार' जैसी कोई चीज़ नहीं है, लेकिन इसके सदस्य देशों ने न सिर्फ संयुक्त राष्ट्र के समझौतों पर हस्ताक्षर कर रखे हैं, बल्कि वे यूरोपीय मानवधिकार समझौता, मानव एवं समुदाय के अधिकारों पर अफ्रीकी समझौता तथा अमेरीकी मानवाधिकार समझौता से उभरी क्षेत्रीय मानवधिकार व्यवस्थाओं के प्रति भी जवाबदेह हैं।

ये सब वचनबद्धताएं नीति–निर्माताओं के लिए सुपरिचित आधार बनने चाहिए। लेकिन नागरिकों के दैनिक जीवन में मानवाधिकार संबंधी मानदंडों के लगातार उल्लंघन; राष्ट्रमंडल तथा इन देशों के सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग में मानवाधिकारों की नैतिक अनिवार्यता और कानूनी बाध्यता के बारे में आम राय की कमी और नागरिकों को अधिकार संपन्न बनाने वाले वैकल्पिक ढांचे के बारे में जानकारी के न होने के कारण यह जरूरी हो जाता है कि राज्यों को नागरिकों के प्रति उनके उत्तरदायित्वों और इस संबंध में उनकी वचनबद्धता के बारे में बार–बार बताया जाए। खास तौर पर गरीबों को इस बारे में बताया जाना चाहिए, क्योंकि उनके पास जानकारी की उसी तरह कमी है जिस तरह अन्य भौतिक आवश्यकताओं की।

हालांकि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को मानवाधिकारों के महत्व का अहसास होने लगा है, लेकिन अधिक ज़ोर नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर ही दिया जा रहा है। सही है कि इन मानवाधिकारों पर विश्व भर में कड़ाई से अमल करने से गरीबी दूर करने में निश्चित

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

रूप से मदद मिलेगी, लेकिन यह भी ज़रुरी है कि सरकार और अंतर्राष्ट्रीय संगठन, जिनमें राष्ट्रमंडल भी शामिल है, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को मान्यता दें और उन्हें लागू करें क्योंकि ये अधिकार स्वाभाविक रूप से मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से संबंधित हैं।

मानवाधिकारों की विश्वयापी व्यवस्था के कई घटक हैं। इनमें से वर्तमान ढांचे के तीन सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं: विभिन्न स्तर जिन पर अधिकारों को परिभाषित और संरक्षित किया जाता है; अधिकारों का लाभ उठाने वाले और गारंटी देने वाले; और इन अधिकारों को लागू करने, इनकी देखरेख करने और इन पर कार्रवाई सुनिश्चित करने वाला तंत्र और तौर–तरीके।

अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर

अधिकारों की विश्वव्यापी प्रणाली अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित है। संयुक्त राष्ट्र के गठन के बाद से ही मानवाधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय कानूनों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र (यूएन चार्टर) में तमाम मानवाधिकरों के संरक्षण और संवर्धन के बारे में सदस्य राष्ट्रों की बचनबद्धता प्रकट की गयी। संयुक्त राष्ट्र ने इस क्षेत्र में सन् 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को मंजूरी देकर पहल की थी। तब से अब तक सदस्य राष्ट्रों ने अनेक समझौतों को स्वीकार किया है और उनका अनुमोदन किया है। संयुक्त राष्ट्र ने आपस में संबद्ध संधि–संगठनों की एक जटिल व्यवस्था और मानवाधिकारों पर निगाह रखने वाली संस्थाओं का एक नेटवर्क कायम किया है। मानवाधिकारों के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख कार्यों में शामिल हैं: आम राय कायम करना, मानदंड निर्धारित करना, राष्ट्रों की क्षमता को बढ़ावा देना और इस बात की देखरेख करना कि राज्य किस सीमा तक विभिन्न समझौतों के तहत अपनी वचनबद्धता का निर्वाह कर रहे हैं। राज्यों द्वारा अपने ही नागरिकों के उत्पीड़न जैसी विशेष परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्र सीधे हस्तक्षेप भी कर सकता है, भले ही इसके लिए सशस्त्र सेना की ही आवश्यकता क्यों न पड़े। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार उच्चायुक्त (UN High Commissioner for Human Rights) के 20 क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो अधिकारों के संरक्षण पर निगरानी रखते हैं और तकनीकी सहायता उपलब्ध कराते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों संबंधी समझौतों और संस्थाओं का विकास यूरोपीय मानवधिकार समझौते (European Convention on Human Rights) पर आधारित व्यवस्था की स्थापना के साथ–साथ हुआ। इसे क्षेत्रीय स्तर पर मानवाधिकारों के संरक्षण का पहला प्रयास कहा जा सकता है। इस पर यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय (European Court of Human Rights) द्वारा अमल किया जाता है। तब से अब तक उत्तर और दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में मानवाधिकारों संबंधी क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ निर्मित की गयी हैं, हालांकि इन व्यवस्थाओं के अधिकार क्षेत्र और कार्यान्वयन के तौर–तरीके अलग अलग हैं। हाल में यूरोपीय सुरक्षा एवं सहकार संगठन (Organisation for Security and Cooperation in Europe) के तत्वाधान में एक अन्य 'क्षेत्रीय' व्यवस्था कायम की गई है जिसमें कनाडा भी शामिल है। इस संगठन ने मानवाधिकारों के बारे में राज्यों को समझा–बुझा कर राजी करने के तौर–तरीके विकसित किये हैं।

क्षेत्रीय व्यवस्था के कई फायदे हैं। इनसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का बोझ काफी कम हो जाता है और ये मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाले देश के पड़ोसी मित्र देशों द्वारा उस पर दबाब डलवा सकती हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण फायदा यह भी है कि ये व्यवस्थाएँ मानवाधिकारों के बारे में सरकारों का रवैया क्या हो, इस बारे में अपने क्षेत्र के सदस्य देशों की आम राय को दर्शाती हैं। एशिया–प्रशांत और ऑस्ट्रेलेशिया क्षेत्र में इस तरह के क्षेत्रीय संगठनों के न होने का कारण शायद यह है कि इन देशों में आम राय कायम नहीं हो पायी है। नतीजा यह हुआ है कि मानवाधिकार संबंधी क्षेत्रीय प्रणालियां एकसमान नहीं हैं। इस संबंध में यूरोप की क्षेत्रीय मानवाधिकार प्रणाली में सबसे अच्छा तालमेल है और वह निश्चित रूप से सबसे अधिक कारगर भी है।

तीसरा स्तर है, राष्ट्रीय स्तर। मानवाधिकार संबंधी मानदंडों को कानूनी जामा पहनाने के लिहाज से यह सबसे महत्वपूर्ण स्तर है। यह कार्य संवैधानिक गारंटियों और अनुपूरक कानूनों तथा अंतर्राष्ट्रीय या क्षेत्रीय समझौतों को लागू करके किया गया है। जहां मानवाधिकार संबंधी मानदंड स्वतः ही किसी देश के कानून का हिस्सा नहीं बनते, वहां एक बार संधि का अनुसमर्थन हो जाने पर वह देश अपने कानूनों को संधि के अनुसार बनाने को बाध्य होता है। लेकिन हस्ताक्षर के समय कभी कभी कुछ देश समझौते के एक–दो उपबंधों के बारे में

अपनी आपत्तिसंबंधी टिप्पणी के साथ अपनी स्वीकृति देते हैं और इस तरह समझौता आंशिक रूप से लागू हो जाता है। अधिकारों के उल्लंघन के अधिकतर मामले सबसे पहले राष्ट्रीय अदालतों या अन्य मानवाधिकार संस्थाओं में दायर किये जाते हैं। यही वह स्तर है जहां मानवाधिकारों की असली लड़ाई शुरू होती है और इसका प्रतिरोध भी शुरू होता है।

विभिन्न स्तरों को समझौतों की एक व्यवस्था के रूप में समन्वित किया जाता है जो राष्ट्रीय स्तर पर तो लागू होते हैं, मगर जिनपर निगरानी क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है। इसके अलावा, राष्ट्रीय सरकारें और न्यायपालिकाएं क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों द्वारा की गयी अधिकारों की व्याख्या का सम्मान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संधियों में मानवाधिकारों को सम्मिलित किये जाने से मानवाधिकारों का दायरा बढ़ा है। इससे अंतर्राष्ट्रीय कानून के स्वरूप, उद्देश्य और कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। इसने व्यक्ति और उसके अधिकारों को केन्द्रीय मुद्दा बना दिया है। कोई राज्य अपने नागरिकों से कैसा बरताव करता है, यह उसका आंतरिक मामला माना जाता था। राज्य की संप्रभुता (sovereignty) की अवधारणा से राज्यों को मानवाधिकार के हनन के मामले में बाहरी हस्तक्षेप से पूरी तरह सुरक्षा मिल जाती थी और यहां तक कि बाहर से कोई टिप्पणी भी नहीं की जा सकती थी। संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र के अनुसार राज्य की संप्रभुता और उसके घरेलू मामलों में बाहरी हस्तक्षेप न करना, अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की आधारशिला हैं। लेकिन समस्त मानवाधिकारों की रक्षा और उन्हें बढ़ावा देने की अनिवार्यता ने 'घरेलू' मामले की धारणा अब बदल दी है।

अपने नागरिकों के मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाले देशों की आलोचना करने के अन्य देशों, क्षेत्रीय व्यवस्थाओं और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अधिकार को अब अधिकाधिक मान्यता मिलने लगी है। अक्सर जातीय संघर्षों के कारण गृहयुद्ध छिड़ने जैसी घटनाओं ने राज्यों के मामलों में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की भागीदारी बढ़ा दी है। यह भागीदारी मानवीय हस्तक्षेप के रूप में बड़े पैमाने पर तो अभिव्यक्त हुई ही है, कई अन्य रूपों में भी सामने आयी है, जैसे मध्यस्थता, सुलह–समझौता, मानवाधिकारों के लिए सम्मान बढ़ाने और इनके संवर्धन की राष्ट्रीय क्षमता को और सुदृढ़ करने, संधि के उत्तरदायित्वों के अनुपालन पर निगाह रखने और प्रतिबंध लगाने आदि के रूप में। उत्पीड़न और इसी तरह के अन्य अपराधों के लिए राष्ट्राध्यक्षों को किसी तरह की दण्डरक्षा न दिये जाने और अंतर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय (International Criminal Court) के गठन से इस प्रवृत्ति को और बढ़ावा मिला है।

अधिकारों के लाभार्थी

वैसे तो किसी देश में मानवाधिकर परम्परागत रूप से वहां के नागरिकों के लिए सीमित रहे हैं, लेकिन काफी बड़ी संख्या में देश अब गैर–राजनीतिक अधिकारों को अपने यहां रहने वाले सभी लोगों को देने लगे हैं। फिर भी बहुत से देशों के संविधानों में अब भी इनका दायरा सीमित है और प्रवासियों के साथ भेदभाव बरता जाता है। जहां तक अंतर्राष्ट्रीय समझौतों का सवाल है, उनका रवैया दोहरा रहा है। एक ओर तो वे कहते हैं कि केवल राजनीतिक अधिकार नागरिकों तक सीमित हैं, और दूसरी ओर, वे प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार दिलाने के बारे में व्यापक दृष्टिकोण अपनाने में असमर्थ लगते हैं। आज जब दुनिया में वैश्वीकरण का बोलबाला है तो अधिकारों को नागरिकों तक सीमित रखना, खास तौर पर जब नागरिकता की परिभाषा संकुचित जाति या नस्लों के आधार पर तय की जाती है–लोगों द्वारा अपने अधिकारों के उपयोग में बहुत बड़ी बाधा है।

जब तक अधिकार नागरिकता से जुड़े हुए थे, तब तक अधिकारों और दायित्वों संबंधी मानदंडों के बारे में एक सुनिश्चित अवधारणा मौजूद थी जो सब पर सटीक उतरती थी। लेकिन नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (International Covenant on Civil & Political Rights - आई सी सी पी आर) और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights - आई सी ई एस सी आर) को, जिसके तहत सबको मानवाधिकार प्रदान किए गए, मंजूरी मिलने के तुरंत बाद अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने खास व्यक्तियों के समूहों की ओर ध्यान देना प्रारंभ किया।

सामूहिक अधिकारों (group rights) की धारणा को कमज़ोर समुदायों, खास तौर पर अल्पसंख्यकों, के बारे में चिंता से बढ़ावा मिला। जातीय अल्पसंख्यकों, महिलाओं, बच्चों, आदिवासियों और प्रवासी मजदूरों के संरक्षण के लिए समझौते कायम किए गए। वैसे तो सामूहिक अधिकार मोटे तौर पर वही हैं जो इन दो समझौतों में बताए गए हैं, मगर ये पक्के तौर पर कार्रवाई करने, विशेष नीतियां बनाने, संरक्षण

cyan black

देने वाले संगठन बनाने और नेटवर्किंग के लिए भी आधार उपलब्ध कराते हैं।

मानवाधिकारों की पुरानी परम्परा के अनुसार केवल व्यक्तियों को अधिकार प्राप्त हैं। जो लोग इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं, उन्हें सामूहिक अधिकारों को लेकर बेचैनी होती है। इसी से विकास के अधिकार जैसे नये विचारों को लेकर प्रतिरोध भी उत्पन्न होता है। मगर बहुजातीय समाजों में सामूहिक अधिकारों की धारणा ने खास महत्व हासिल कर लिया है। फीजी जैसे कुछ देशों के मामले में तो इसने समाज को संगठित करने वाले ताने–बाने का रूप ले लिया है।

अधिकतर वैधानिक प्रणालियों में निगमों और इसी तरह की अन्य संस्थाओं को भी ऐसे 'मानव' अधिकार दिये गये हैं जो उनके लिए अहमियत रखते हैं और जिन्हें वे इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन आलोचक शिकायत करते हैं कि निगमों को मानवाधिकार दिया जाना इस अवधारणा का दुरुपयोग है।

कर्तव्यधारक

राज्य को परम्परागत रूप से मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए उत्तरदायी संस्था के रूप में देखा जाता रहा है। इसके प्रमुख दायित्वों में मानवाधिकारों का सम्मान करना, उनको बढ़ावा देना, उनका संरक्षण करना और *तमाम* मानवाधिकारों के उद्देश्य को प्राप्त करना शामिल हैं। *मानवाधिकरों के सम्मान* के लिए जरूरी है कि राज्य ऐसे आचरण न करें जिससे लोग अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं, जैसे अत्याचार, अल्पसंख्यक संस्कृति के स्कूलों को बंद करना या मनमाने तरीके से लोगों की बोलने की या मुक्त रूप से आने जाने की आज़ादी पर पाबंदी लगाना। *अधिकारों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देने* के तहत मानवाधिकारों की शिक्षा को बढ़ावा देना और मानवाधिकारों को समर्थन देने वाली संस्थाओं जैसे मानवाधिकार आयोग को मदद देना आदि गतिविधियां आती हैं। यह सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं का उत्तरदायित्व है।

अधिकारों के संरक्षण के दायित्व के तहत राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह सार्वजनिक अधिकारियों या अन्य व्यक्तियों और समूहों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ लोगों की रक्षा करे। आपराधिक कानून का अधिकतर हिस्सा इसी दायित्व पर आधारित है। इसे पूरा करने के लिए राज्य को कारगर तरीके से कानून और व्यवस्था की हिफ़ाज़त करनी चाहिए। इसके उदाहरणों में पुलिस बल को मानवाधिकारों के बारे में प्रशिक्षित करना, सुचारु रूप से काम करने वाली और पर्याप्त संसाधन–संपन्न स्वतंत्र न्यायपालिका तथा मानवाधिकार आयोग की व्यवस्था करना, अन्य लोगों के अधिकारों का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ कारगर प्रतिबंध लगाना, पर्यावरण के संरक्षण के लिए कानून बनाना और दवाओं और औषधियों की बिक्री तथा उपयोग के बारे में कायदे–कानून बनाना शामिल हैं। इस दायित्व को पूरा करने के लिए जरूरी है कि राज्य के संरक्षित वन–क्षेत्र या ज़मीन जिस पर जनसमुदाय परम्परागत रूप से रहते आये हैं, उन्हें वहाँ से बेदख़ल न किया जाए।

अधिकारों को पूरा करने की ज़िम्मेदारी का मतलब है कि राज्य यह सुनिश्चित करे और आवश्यक कदम उठाये कि जिन लोगों की पहुंच अधिकारों तक नहीं है, वे भी इनका लाभ उठा सकें। स्वास्थ्य, शिक्षा और आहार, मुफ़्त कानूनी सहायता सेवा आदि के लिए सब्सिडी, बेघर लोगों को अपना मकान बनाने के लिए रियायती दर पर जमीन और निर्माण–सामग्री उपलब्ध कराना तथा अन्य रचनात्मक नीतियां अपना कर मानवाधिकारों के लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

चूंकि मानवाधिकार प्रणाली राज्य के दायित्वों पर आधारित है, इस व्यवस्था से वे गैर–सरकारी तत्व जिनके कामकाज का असर मानवाधिकारों पर पड़ता है–परे रह जाते हैं। मानवाधिकारों को लागू करने के बारे में अधिकतर कानूनी कार्रवाई राज्यों द्वारा अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित होती है। लेकिन अब मानवाधिकार प्रणाली उन शक्तिशाली गैर–सरकारी तत्वों को अपने दायरे में लाने की कोशिश कर रही है जिनके क्रियाकलापों के कारण गरीबी पैदा होती है या सामाजिक उपलब्धियाँ उलट जाती हैं। मानवाधिकार व्यवस्था निजी क्षेत्र, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और अन्य राज्यों को (जिनकी किसी देश, देशों के मानवाधिकार की परिस्थितियों में विशेष रूप से रुचि हो) अपने साथ लेकर चलने का प्रयास कर रही है। लेकिन इन संगठनों का दायित्व ठीक–ठीक क्या होगा, यह स्पष्ट होना अभी बाकी है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

कार्यान्वयन और निगरानी

अधिकारों को लागू करने का कार्य मुख्य रूप से राज्य की ज़िम्मेदारी है। इन्हें लागू करने वाली संस्थाएं प्राथमिक तौर पर राष्ट्रीय स्तर की होती हैं। आम बात यह है कि अधिकार न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से अदालतों द्वारा कार्यान्वित किये जाते हैं। हाल के वर्षों में अन्य संस्थाएं, जैसे लोक–आयुक्त (Ombudsman), मानवाधिकार आयोग या समानता आयोग अतिरिक्त संरक्षण देने वाली संस्थाओं के रूप में स्थापित हुए हैं। ये अदालतों के मुकाबले कुछ कम प्रतिद्वंद्विता वाली प्रक्रिया अपनाते हैं और मध्यस्थता व सुलह–समझौते का प्रयास करते हैं। इन संस्थाओं तक पहुंचना अदालतों के मुकाबले अधिक आसान व सस्ता है और इसमें औपचारिकताएं भी कम हैं। ये संस्थाएं कई तरह के कार्य करती हैं और मानवाधिकारों के बारे में सूचना तथा शिक्षा देना भी इनके काम के दायरे में आता है। ये मानवाधिकारों की राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति की भी निगरानी कर सकते हैं और वार्षिक तथा खास विषयों पर आधारित रिपोर्ट तैयार करती हैं। मगर मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों का निपटारा करने की ज़िम्मेदारी अंतिम रूप से अदालतों की होती है और मानवाधिकार संबंधी प्रावधानों की व्याख्या भी वही करती हैं।

जो देश मानवाधिकार संबंधी किसी क्षेत्रीय व्यवस्था के सदस्य हैं, उनके यहां क्षेत्रीय आयोग या अदालतें महत्वूपर्ण पूरक–भूमिका निभा सकती हैं। यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय की भूमिका इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यूरोपियन कन्वेंशन की व्याख्या अंतिम रूप से उसी के द्वारा की जाती है और राष्ट्रीय सरकारों व अदालतों को उन्हें मानना पड़ता है। जो देश क्षेत्रीय व्यवस्था के सदस्य हैं, उनके लिए क्षेत्रीय स्तर पर निगरानी का काम भी किया जाता है।

अधिकारों को लागू करने में अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की बहुत कम भूमिका है। फिर भी, हाल में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यान्वयन की दिशा में कुछ कदम उठाये गये हैं। इसके लिए भूतपूर्व यूगोस्लाविया और रवांडा में युद्धसंबंधी अपराधों की सुनवाई के लिए न्यायाधिकरण गठित किया गया है और सन् 1998 में रोम में हुए समझौते के तहत शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय अपराध–न्यायालय की स्थापना की जानी है।

इसके बावजूद, अधिकारों के संरक्षण और कार्यान्वयन की निगरानी के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली महत्वपूर्ण, या और स्पष्ट शब्दों में कहें तो संभावित रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। निगरानी के दो रूप होते हैं: एक तो मूलतः राजनीतिक है और संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग व इससे संबद्ध प्रणाली के दायित्व के अंतर्गत आता है। इसका उदाहरण है विशेष निरीक्षक (Special Rapporteurs) जो समस्याग्रस्त देशों पर कड़ी निगाह रखते हैं और आयोग को जानकारी देते है। इसके अलावा गैर–न्यायिक हत्याओं, गुमशुदगी और महिलाओं के खिलाफ हिंसा जैसे विशेष क्षेत्रों में जांच पड़ताल कर जानकारी देते हैं। दूसरा रूप कुछ अधिक 'न्यायिक' है और यह कार्य विशेषज्ञों, स्वतंत्र समितियों–जैसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार समिति (Committee on Economic, Social and Cultural Rights) द्वारा किया जाता है। इस समिति की नियुक्ति मानवाधिकार समझौतों के तहत मानवाधिकारों के बारे में राज्यों की वचनबद्धता की पूर्ति की निगरानी के लिए की जाती है। इसके अलावा जहां वैकल्पिक आचार–नियम (Optional Protocol) होते हैं – जैसा कि हाल में महिलाओं के प्रति हर तरह का भेदभाव समाप्त करने संबंधि समझौता (Convention on the Elimination of All forms of Discrimination Against Women - सी ई डी ए डब्ल्यू) के तहत बनाया गया है, वहां व्यक्ति और कभी कभी राज्य जैसे हर तरह के जातीय भेदभाव की समाप्ति करने संबंधी समिति (Convention on the Elimination of All forms of Racial Discrimination - सी ई आर डी) की तरह की समितियों के समक्ष शिकायतें सुनवाई के लिए ला सकते हैं। सी ई आर डी के तहत अगर राज्य मध्यस्थता के जरिए समस्या को सुलझाने में विफल रहते हैं तो दोनों में से कोई भी मामले को अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) में भेज सकता है। वे इनका फैसला मानने को बाध्य होंगे।

अधिकतर प्रमुख समझौतों में राज्यों द्वारा समितियों को समय–समय पर रिपोर्ट पेश करने की व्यवस्था है। यही वह मुख्य साधन है जिसके जरिए संधि के प्रति किसी राज्य की वचनबद्धता के बारे में उसके कार्यनिष्पादन पर निगाह रखी जाती है। जहां शिकायत की प्रक्रिया निर्धारित है, वहां भी संस्था के फैसले पर कड़ाई से अमल नहीं हो पाता, हालांकि इससे समिति को समझौते के प्रावधानों की व्याख्या करने, संरक्षित अधिकारों का दायरा बताने तथा उल्लंधन की सीमा बताने का मौका मिल जाता है। मानवाधिकारों के बारे में आई सी सी पी आर के अंतर्गत गठित संयुक्त राष्ट्र की समिति के कार्यों का यह एक खास तौर से महत्वपूर्ण पहलू है। बच्चों के अधिकारों के

संयुक्त राष्ट्र के साथ कार्यकलाप

गैर–सरकारी संगठन सरकारों की निगरानी के तौर पर और समझौते संबंधी समितियों को अपनी नीति तैयार करने के काम में मदद के उद्देश्य से उनके समक्ष अपना पक्ष उपयोगी तरीके से प्रस्तुत कर सकते हैं।

कनाडा में गरीबी उन्मूलन संबंधी गैर–सरकारी संगठनों में से एक ने सन् 1998 में सी ई एस सी आर के समक्ष कुछ विचार प्रस्तुत किए। यह रिपोर्ट कनाडा में अकेली माताओं जैसे नाजुक समूहों के उपयुक्त जीवन स्तर के अधिकार पर सामाजिक सुरक्षा कानून को रद्द किये जाने के असर के बारे में थी। कनाडा सरकार के उत्तर पर विचार के बाद समिति ने निष्कर्ष निकाला कि संबंधित कानून को रद्द करने से ''कनाडा में वंचित वर्गों के नैतिक, राजनैतिक तथा सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में प्रमाणित अधिकारों पर कई तरह के बुरे असर पड़े हैं।'' इसमें आगे कहा गया है कि ''समिति को इस बात का खेद है कि सामाजिक अधिकारों के बारे में प्रांतीय सरकारों को बेरोक–टोक विवेकाधिकार देकर कनाडा सरकार ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिस से प्रसंविदाओं के मानदंड कमज़ोर पड़ सकते हैं और प्रभावी उत्तरदायित्व में भारी कमी आयी है।''[197] इसमें कनाडा की प्रांतीय सरकारों की इस बात के लिए भी आलोचना की गयी है कि उन्होंने अदालतों मे चल रहे मुकदमों में अपनी दलीलों में कनाडा में अधिकारों और स्वतंत्रताओं के घोषणापत्र की इस तरह व्याख्या की जिससे जिन लोगों के सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ था, वे न्यायिक प्रतिकार से वंचित रहे; और यह तर्क भी दिया कि आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को ''सिद्धांतों और उद्देश्यों'' के निचले स्तर पर नहीं लाना चाहिए।

समझौते (Child Rights Convention - सी आर सी) के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र बालकोष (यूनिसेफ) और संयुक्त राष्ट्र की अन्य एजेंसियां समीक्षा तथा सिफारिश करने के कार्य में मदद करती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की निगरानी वाली भूमिका की पूरी क्षमता का उपयोग अभी नहीं हो पा रहा है। अब तक संयुक्त राष्ट्र और संधि संगठनों को सीमित संसाधन उपलब्ध कराये गये हैं। इनमें से बहुत से तो साल में केवल एक या दो बार ही एक पखवाड़े या लगभग इतने ही दिनों की बैठक कर पाते हैं। उनके पास पर्याप्त सचिवालयी सहायता भी उपलब्ध नहीं है और अनुपालन के लिए तो कोई व्यवस्था ही नहीं है।

राष्ट्रमंडल के पास हरारे घोषणा के सिद्धांतों के ''गंभीर और लगातार'' उल्लंघन से निपटने के लिए एक प्रणाली है जिसके अंतर्गत मानवाधिकारों संबंधी तमाम अंतर्राष्ट्रीय मानदंड आ जाते हैं। राष्ट्रमंडल देशों के मंत्रिस्तरीय कार्य दल (Commonwealth Ministerial Action Group) चक्रानुक्रम में विदेश मंत्रियों का एक समूह है जो अपने कार्यक्षेत्र की बड़ी सीमित व्याख्या करता है। यह असंवैधानिक तरीके से लोकतांत्रिक सरकार का तख्ता पलटे जाने की स्थिति में ही कार्रवाई करता है। कभी कभी इसने अन्य मामलों में भी कार्रवाई की है, जैसे कि गाम्बिया के मामले में उसने इस देश का निरीक्षण किया था। इस दल के द्वारा उठाये जाने वाले कदमों में सामूहिक अस्वीकृति से लेकर देश की सदस्यता समाप्त करने जैसे उपाय शामिल हैं। राष्ट्रमंडल मंत्रियों के कार्य दल के कार्यक्षेत्र की इस समय राष्ट्रमंडल उच्चस्तरीय समीक्षा–दल द्वारा समीक्षा की जा रही है।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की सारवस्तु

मानवाधिकारों की इस तरह व्याख्या करना कि वे नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार तथा सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों की दो अलग धाराओं में बंटे हुए हैं उनकी भ्रामक व्याख्या करना होगा। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक अधिकार दूसरे अधिकार से जुड़ा हुआ है और सभी अधिकार एक सम्पूर्ण समग्रता का निर्माण करते हैं। लेकिन इस खंड में हम उन अधिकारों का जिक्र नहीं करेंगे जो मुख्य रूप से नागरिक और राजनीतिक किस्म के हैं क्योंकि ये सुपरिचित हैं और सी एच आर आई की पिछली रिपोर्टों में इनका विश्लेषण किया जा चुका है। यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि वे किसी आदमी की व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं और भौतिक सुरक्षा, अभिव्यक्ति और विश्वास की स्वतंत्रता, सार्वजनिक मामलों में भाग लेने के राजनीतिक अधिकार, संघ बनाने और उन्हें संचालित करने के अधिकार, समानता के अधिकार, और कानून की विधिसंगत प्रक्रिया

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार–बुनियादी मानदंड

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा और आई सी सी पी आर के साथ–साथ, आई सी ई एस सी आर अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार प्रणाली में शामिल है। इनका पालन सभी हस्ताक्षर करने वाले देशों को करना पडता है। आई सी ई एस सी आर वर्ष 1966 में पारित किया गया था, परन्तु न्यूनतम अपेक्षित 35 देशों की अभिपुष्टि के बाद इसे 1976 में लागू किया गया। बाद में इसे अन्य कई और देशों की स्वीकृति भी मिली। दक्षिण एशिया में पाकिस्तान, भूटान और मालद्वीप ने अभी तक इस प्रसंविदा पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

आई सी ई एस सी आर में निम्नलिखित सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारो के बुनियादी मानदंड निर्धारित किए गए हैं।[201] इनकी प्राप्ति को सुनिश्चित करना राज्यों का कर्त्तव्य है। उनकी यह ज़िम्मेदारी भी है कि वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार समिति (सी ई एस सी आर) को आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करें क्योंकि यह समिति समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में इन अधिकारों के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में हुई प्रगति पर नज़र रखती है।

काम का अधिकार (अनुच्छेद 6)

- प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार चुने/स्वीकृत काम के माध्यम से जीविका कमाने का अधिकार है।

राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह तकनीकी एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन और प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा नीतियाँ उपलब्ध कराने के लिए कदम उठाये ताकि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास अबाध रूप से हो सके। राज्य का यह भी दायित्व बनता है कि हर एक को पूर्ण एवं उत्पादनकारी रोज़गार उपलब्ध कराते समय उसकी मौलिक राजनीतिक व आर्थिक स्वतंत्रताओं का संरक्षण करें।

काम से जुड़े हुए अधिकार (अनुच्छेद 7)

- प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि उसे काम करने का उचित व अनुकूल माहौल मिले जिसमें शामिल हैं–
  - ❖ सभी कामगारों को न्यायोचित मज़दूरी।
  - ❖ बिना किसी भेदभाव के समान मूल्य के काम का समान पारिश्रमिक।
  - ❖ महिलाओं को समान मूल्य के काम पर समान मज़दूरी तथा उनके काम करने का वातावरण पुरुषों के समतुल्य होना।
  - ❖ अपना तथा अपने परिवार के समुचित निर्वाह के अवसर।
  - ❖ काम करने के लिये सुरक्षित एवं स्वस्थ माहौल।
  - ❖ सबको अपने रोज़गार में वरिष्ठता व योग्यता के आधार पर उच्चतर स्तर पर बढ़ने के समान अवसर।
  - ❖ आराम, अवकाश और काम के समय की उचित सीमा तथा नियतकालिक छुट्टियों के भुगतान के साथ–साथ सार्वजनिक छुट्टियों के लिए पारिश्रामिक।

काम से उपजे हुए अधिकार (अनुच्छेद 8)

- प्रत्येक व्यक्ति को स्वेच्छा से मज़दूर संघ बनाने या उसमें शामिल होने का अधिकार है।
- देश के कानूनों के तहत हड़ताल करने का अधिकार है।
- मज़दूर संघों को राष्ट्रीय महासंघ बनाने और उन्हें स्वेच्छा से चलाने का अधिकार है बशर्ते कि वह कानून द्वारा उल्लिखित उन सीमाओं में काम करें जो लोकतांत्रिक समाज में लोक–व्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में आवश्यक हैं या दूसरों के अधिकार व स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए अनिवार्य हैं। राष्ट्रीय महासंघ को अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठनों से जुडने का अधिकार होगा।

सामाजिक सुरक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 9)

- प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है।

परिवार के प्रति राज्य का दायित्व (अनुच्छेद 10)

- राज्य को चाहिए कि वह समाज की स्वाभाविक और मौलिक इकाई – परिवार को अधिकतम सुरक्षा व सहायता दे।

- बच्चे के जन्म से पहले और बाद में माता की समुचित अवधि तक विशेष सुरक्षा की जानी चाहिए। काम करने वाली महिलाओं को इस अवधि के दौरान सवेतन छुट्टी या पर्याप्त सामाजिक–सुरक्षा लाभों के साथ छुट्टी दी जानी चाहिए।
- बच्चों को शोषण से बचाना चाहिए तथा भेदभाव किए बिना सहायता पहुँचानी चाहिए। हानिकारक व जोखिमपूर्ण कामों मे बाल–श्रमिकों का उपयोग करने वाले के विरूद्ध दण्डनीय कार्यवाही होनी चाहिए। आयुसीमा निर्धारित की जानी चाहिए ताकि कम आयु के बच्चों को रोज़गार देना निषिद्ध व कानूनन् दण्डनीय हो सके।

समुचित जीवन स्तर का अधिकार (अनुच्छेद 11)

- प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए और अपने परिवार के लिए समुचित जीवन स्तर प्राप्त करने का अधिकार है जिसमें शामिल हैं – रोटी, कपड़ा और मकान तथा निरन्तर बेहतर होती जीवन की परिस्थितियाँ।
- प्रत्येक व्यक्ति को भूख से मुक्त रहने का अधिकार है।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं तथा अंतर्राष्ट्रीय सहायता द्वारा लोगों को पौष्टिकता के संबंध में जानकारी प्राप्त कराये और आहार के उत्पादन, संरक्षण एवं वितरण के तरीकों में सुधार लाये। यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए राज्य का दायित्व बनता है कि वह कृषि व्यवस्था में सुधार करे ताकि प्राकृतिक संसाधनों का सबसे बेहतर उपयोग किया जा सके।

स्वास्थ्य का अधिकार (अनुच्छेद 12)

- प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्य स्तर को हासिल करने का अधिकार है।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह मातृ–प्रसव और नवजात शिशु की मृत्युदर को कम करने हेतु कदम उठाये तथा बच्चे के स्वास्थ्य के विकास को सुनिश्चित करे। राज्य का यह कर्त्तव्य भी है कि वह पर्यावरण और औद्योगिक स्वच्छता के सभी पहलुओं में सुधार करने, महामारी, विशेषक्षेत्री बीमारी, व्यावसायिक व अन्य बीमारियों से बचाव, उनकी रोकथाम व उपचार को सुनिश्चित करने तथा ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए कदम उठाये जिससे प्रत्येक रोगी व्यक्ति को उचित चिकित्सा व देखभाल मिले।

शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 13 और 14)

- प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है।
- प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य व निःशुल्क होगी।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह एक विस्तृत कार्य–योजना बनाये व अपनाये जिससे निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की प्राप्ति तर्कसंगत अवधि में संभव हो सके। उक्त अवधि का निर्धारण कार्य–योजना में ही होगा। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह सभी के लिए उनकी योग्यता के आधार पर माध्यमिक शिक्षा (तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा सहित) और उच्चतर शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था कराये।

राज्य का कर्त्तव्य है कि हर शैक्षणिक स्तर पर विद्यालयों का विकास सुनिश्चित करे, शिक्षावृत्ति की पर्याप्त व्यवस्था बनाए और शिक्षकों के रहन–सहन संबंधी मामलों में निरंतर सुधार लाये।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह माता–पिता की अपने बच्चे के लिए उन विद्यालयों को चुनने की स्वतन्त्रता का सम्मान करे जो राज्य द्वारा समय–समय पर निर्धारित न्यूनतम शैक्षिक मानकों को पूरा करते हैं। अपने मतानुसार अपने बच्चों की धार्मिक व नैतिक शिक्षा सुनिश्चित कराने के माता–पिताओं के अधिकार का सम्मान करना राज्य का दायित्व है।

सांस्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद 15)

- प्रत्येक व्यक्ति को सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार है।
- प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक उन्नति व उसके व्यावहारिक लाभों का उपभोग करने का अधिकार है।
- लेखकों, वैज्ञानिकों, कलाकारों इत्यादि के कापीराईट और पेटेंट अधिकारों की सुरक्षा राज्य द्वारा की जानी चाहिए।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह वैज्ञानिक अनुसंधान व सृजनात्मक कार्यों के लिए जरूरी स्वतंत्रता को कायम रखे।

का संरक्षण करते हैं। यहां मुख्य जोर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की बहुआयामी व्यवस्था पर है। एक महत्वूपर्ण और स्वतः सिद्ध और स्पष्ट बात यह है कि ये अधिकार अपने आप में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के कुछ पहलुओं को भी समेटे हुए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर

संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र की प्रस्तावना में आर्थिक और सामाजिक प्रगति और स्वतंत्रता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में जीवन के बेहतर स्तर तथा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के उपयोग के प्रति सदस्यों को वचनबद्ध करती महासभा (General Assembly) पर इस बात का दायित्व है कि वह आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य के क्षेत्र[199] में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देगी।[200] संयुक्त राष्ट्र पर भी यह सामान्य उत्तरदायित्व है कि वह जीवन के उच्चतर स्तर, पूर्ण रोज़गार और आर्थिक व सामाजिक प्रगति व विकास की स्थितियों को बढ़ावा देगा। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की प्रस्तावना में एक लक्ष्य ''भय और अभाव'' से मुक्ति का भी रखा गया है।[201]

इस घोषणा पत्र के कई प्रावधानों में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को व्यक्ति की गरिमा और उसके व्यक्तित्व के मुक्त विकास के लिए अनिवार्य बताया गया है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के काम के अधिकार को मान्यता देने के साथ साथ न्यायोचित और समुचित वेतन देने, अपने और अपने परिवार के लिए मानवीय गरिमा के अनुकूल जीवन तथा जरूरत होने पर अन्य सामाजिक सुरक्षाएं उपलब्ध कराने की बात कही गयी है।[202] अनुच्छेद–25 में प्रत्येक व्यक्ति और उसके परिवार के कल्याण के लिए उचित जीवन स्तर के अधिकार के साथ–साथ आहार, कपड़ा, आवास और चिकित्सा सुविधा, सामाजिक सेवाओं; बेरोज़गारी, बीमारी, अक्षमता, वैधव्य, वृद्धावस्था और अपाहिज होने की स्थिति में रोज़गार न रहने पर सुरक्षा के अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी है। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार दिया गया है जिससे कि उसके व्यक्तिव का पूर्ण विकास हो और मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति आदर की भावना सुदृढ़ हो।[203] अंत में घोषणा पत्र में यह बात स्वीकार की गयी है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज के सांस्कृतिक जीवन में मुक्त रूप से भाग लेने, कलाओं का आनंद लेने और वैज्ञानिक प्रगति तथा इसके लाभों में भागीदार बनने का अधिकार है।[204] परिवार को, जो कि ''समाज की स्वाभाविक और मौलिक इकाई'' है, राज्य और समाज से संरक्षण पाने का अधिकार है।[205] घोषणा पत्र की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें लिंग, जाति या सामाजिक उद्‌गम का भेदभाव किए बिना सभी लोगों की समानता की बात कही गयी है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने अपने आप को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रति वचनबद्ध किया है जिसमें इन तथा अन्य अधिकारों को साकार किया जा सके।[206] आई सी ई एस सी आर समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले तमाम देशों ने इन संकल्पों का विस्तार किया है और इन्हें अनिवार्य रूप से लागू करने योग्य बनाया है। इन अधिकारों का व्यापक परिप्रेक्ष्य आत्म–निर्णय में है जिसके बल पर समस्त जन ''स्वतंत्र रूप से अपना राजनीतिक दर्जा निर्धारित कर सकते हैं और मुक्त रूप से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का रास्ता अपना सकते हैं।[207]

विकास के अधिकार के बारे में संयुक्त राष्ट्र की घोषणा (UN Declaration on the Right to Development) में कहा गया है कि ''विकास का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसे मनुष्य से अलग नहीं किया जा सकता। इसी के बल पर प्रत्येक मनुष्य और जन आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास में भागीदार बन सकते हैं, उसमें योगदान कर सकते हैं और इसका आनंद उठा सकते हैं, इसी से वे सभी मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का पूरी तरह लाभ उठा सकते हैं।''[208] इसमें यह भी कहा गया है कि मनुष्य ''विकास का केन्द्र बिन्दु है और उसे विकास के अधिकार में सक्रिय भागीदारी करने के साथ–साथ इसका भरपूर लाभ भी उठाना चाहिए''।[209] हालांकि सभी मनुष्यों की विकास के प्रति ज़िम्मेदारी बनती है, लेकिन राज्यों का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह उपयुक्त राष्ट्रीय विकास नीति बनाए जिससे तमाम आबादी और समस्त लोगों के कल्याण में वृद्धि हो। विकास में सक्रिय, स्वतंत्र और उद्‌देश्यपूर्ण तरीके से भाग लेकर और इससे होने वाले फायदों के उचित वितरण का वे लाभ उठाएं।''[210]

कुछ पश्चिमी देशों की सरकारों ने विकास के अधिकार को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा है। लेकिन विकास के अधिकार की घोषणा करने वाला दस्तावेज विकास की व्यापक और मानववादी परिभाषा देने के लिहाज से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार यह एक ''व्यापक

विकास का अधिकार – संक्षेप में

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने विकास के अधिकार के घोषणापत्र को 1986 में अपनाया। 1998 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (UN Commission on Human Rights) की सिफारिशों के आधार पर आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् ने एक अनुवर्ती प्रणाली को रूप देते हुए एक कार्यदल का गठन किया। यह कार्यदल अपनी वार्षिक बैठक में विकास के अधिकार को साकार करने में सदस्य देशों के प्रयास और उपलब्धियों की समीक्षा करता है। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार उच्चायुक्त (UN High Commissioner for Human Right) द्वारा नियुक्त एक स्वतन्त्र विशेषज्ञ (इस समय प्रो. अर्जुन सेनगुप्ता) ने विचार–विमर्श के लिए तथा इस अधिकार के कार्यान्वयन हेतु अन्य सिफारिशों को कार्यदल के प्रत्येक सत्र में प्रस्तुत किया है। मानवाधिकार उच्चायुक्त उन देशों को तकनीकी सहायता देता है जो अपने नागरिकों के विकास के अधिकार को कार्यन्वित करने के लिए कार्यदल की सहायता चाहते हैं। कार्यदल का कार्यकाल वर्ष 2004 तक बढ़ा दिया गया है। स्वतन्त्र विशेषज्ञ द्वारा प्रस्तुत की गई आवधिक रिपोर्टों के आधार पर विकास के अधिकार के मूल सिद्धांत का सार इस प्रकार है।[211]

विकास का अधिकार –

- लोगों का अपने प्राकृतिक संसाधनों पर पूर्ण प्रभुत्व के अभिन्न अधिकार को स्वीकारता है;
- विकास हेतु समान अवसर को स्वीकारता है जो व्यक्ति व राष्ट्र दोनों के लिए लाभपूर्ण है;
- भेदभाव के बिना, निष्पक्ष रूप से विकास के अधिकार पर आधारित प्रणाली को अपनाता है। विकास की प्रक्रिया में पारदर्शिता होनी चाहिए; कर्तव्यधारकों को अपने काम के प्रति जवाबदेह बनना चाहिए और विकास के मामलों में निर्णय लेने की एवं कार्यान्वयन की प्रक्रिया में लोगों की सूचना–संपन्न भागीदारी होनी चाहिए तथा विकास के लाभ सबको न्यायसंगत रूप से मिलने चाहिए।
- विकास की प्रक्रिया ऐसी हो जिसके अंतर्गत सभी मानवाधिकार समान रूप से न कि अलग–थलग तरीके से साकार हों। विकास के अधिकार में प्रगति का दावा उन परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता जहां एक या अधिक राजनीतिक अधिकारों का हनन हुआ हो; या फिर एक अधिकार की पूर्ति के लिए अन्य अधिकारों पर अंकुश लगाया गया हो जैसे – अन्न के अधिकार या स्वास्थ्य के अधिकार को पाने के लिए शिक्षा के अधिकार को किनारे कर दिया गया हो। नागरिक को प्राप्त किसी भी मानवाधिकार में किसी भी स्तर पर कोई भी विकृति नहीं होनी चाहिए;
- प्रत्येक राज्य को विकासात्मक नीतियों को सूत्रबद्ध करने का अधिकार व कर्त्तव्य प्रदान करता है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अन्य कर्ताओं का कर्त्तव्य इस प्रक्रिया में निम्नलिखित रूप से सहायता देना है–
    - ❖ विकास के अधिकार की प्राप्ति के लिए मिल–जुलकर अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय वातावरण बनाना;
    - ❖ विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को आपसी सहयोग द्वारा दूर करना;
    - ❖ अंतर्राष्ट्रीय विकासात्मक नीतियों को सूत्रबद्ध करने के लिए ऐसे कदम उठाना जिससे विकास के अधिकार की पूर्ण प्राप्ति में सहायता मिले;
- सभी नागरिकों को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से विकास की ज़िम्मेदारी सौंपता है जिसमें मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रता और साथ ही साथ समुदाय के प्रति उनके कर्त्तव्यों का ध्यान रखा जाता है। उन्हें विकास को बढ़ावा देने और संरक्षण देने के लिए एक उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बनानी होगी;
- विकासशील देशों और विकसित देशों व दाता (डोनर) एजेंसियों के बीच विकास के समझौते की परिकल्पना करना, जिसमें विकास के अधिकार की पूर्ण प्राप्ति के लिए कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने की ज़िम्मेदारी विकासशील देशों पर होगी। विकसित देशों व दाता एजेंसियों की ज़िम्मेदारी होगी कि वे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्त सम्बंधी सभी भेदभाव पूर्ण नीतियों और बाधाओं को दूर करें तथा विकासात्मक नीतियों को लागू करने में हुए अतिरिक्त खर्चे के भार को बाँट लें।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य समस्त जनसंख्या और प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में सुधार लाना है'' ताकि ''समस्त मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का लाभ उठाया जा सके''। यह अधिकारों के विभिन्न सूत्रों के बीच तालमेल कायम करने के लिए एक आधार प्रदान करता है और ऐसी स्थितियों की ओर संकेत करता है जिसमें सब प्रकार के अधिकारों को पाया जा सके।

लेकिन यह भी ज़रूरी है कि इस अधिकार के प्रति उत्साह को नियंत्रण में रखें, क्योंकि इसे कई ऐसे देशों ने बढ़ावा दिया है जिनकी मानावाधिकारों के बारे में वचनबद्धता संदिग्ध है। इसकी विस्तृत रूपरेखा का उपयोग मानवाधिकार सुनिश्चित करने के राष्ट्रों के दायित्व से बचने या उसे भुलाने में आसानी से किया जा सकता है। इस तरह मानवाधिकारों के संरक्षण में असफलता के लिए किसी और कारण को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और मानवाधिकारों के पालन संबंधी राष्ट्रीय रिकार्ड की अंतर्राष्ट्रीय जांच भी टाली जा सकती है। जहां तक घोषणा का सवाल है, इसमें कोई नये अधिकार नहीं जोड़े गये हैं। विभिन्न प्रकार के अधिकारों के बीच संतुलन बनाने का रास्ता सुझाने में इसकी उपयोगिता या नये शक्तिशाली घटकों के माध्यम से वैश्वीकरण के दौर से गुज़र रही दुनिया में अधिकारों की रक्षा करने के लिहाज से इसकी क्षमता बड़ी सीमित है। लेकिन आम राय और संशोधन से यह मानवाधिकारों के बारे में समन्वित दृष्टिकोण अपनाने के लिए अच्छा आधार बन सकता है।

अन्य अंतर्राष्ट्रीय समझौते

आई सी ई एस सी आर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का बुनियादी ढांचा प्रस्तुत करने वाला समझौता है। लेकिन अन्य संगठन भी विशिष्ट समूहों के लिए इन्हीं अधिकारों की व्यवस्था करते हैं। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार उन अन्य प्रमुख समझौतों के साथ जुड़े हुए हैं जो मानवाधिकारों के समूचे ढांचे में शामिल हैं। ये समझौते विभिन्न समुदायों की सदियों से परंपरागत रूप से कमज़ोर व असुरक्षित स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनकी विशेष आवश्यकताओं, विशिष्टताओं और कमज़ोरियों को दूर करने के लिए बनाए गए हैं।

ये सब समझौते अपने पूरे विस्तार में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के एक समन्वित ढांचे के रूप में हैं, जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के लाभार्थियों का ध्यान रख जाता है। फिर भी, यह ढांचा दो अन्य समझौतों के बिना पूरा नहीं होता। इनमें से दो सबसे महत्वपूर्ण समझौते हैं: सी ई डी ए डब्ल्यू और सी आर सी।

सी ई डी ए डब्ल्यू (1979) महिला–अधिकारों का एक घोषणा पत्र उपलब्ध कराता है। यह महिलाओं के खिलाफ़ भेदभाव को व्यापक संदर्भ में रखता है और इस बात की पहचान करता है कि ''इस तरह का भेदभाव महिलाओं को पुरुषों के बराबर देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने में बाधाएँ पैदा करता है। इस कारण समाज तथा परिवार का विकास और समृद्धि पूरी तरह से नहीं हो पाती है और महिलाओं को अपने देश तथा मनुष्य जाति की सेवा में अपने अंदरूनी सामर्थ्यों का उपयोग करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।''[212] इसमें एक महत्वपूर्ण बात यह स्वीकार की गयी है कि ''गरीबी की स्थिति में भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण, रोज़गार के अवसर और अन्य आवश्यकताएं पूरा करने में महिलाओं की सबसे अधिक उपेक्षा होती है।'' इसलिए राज्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे ''सभी क्षेत्रों में, खास तौर पर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में महिलाओं का संपूर्ण विकास व उन्नति सुनिश्चित करने के लिए कानूनी उपायों सहित तमाम उपयुक्त कदम उठाएं जिससे उन्हें मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रताओं के मामले में पुरुषों के बराबर का मौका मिले और वे निश्चित रूप से इनका लाभ उठा सकें।''[213] एक अन्य अनुच्छेद में इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु ठोस कार्रवाई के लिए राज्यों को प्राधिकृत किया गया है।[214] हस्ताक्षर करने वाले राज्य महिलाओं और पुरुषों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवहार के तौर–तरीकों में बदलाव लाने के लिए संकल्पबद्ध हैं ताकि ऐसे पूर्वाग्रह और परम्पराएं समाप्त हों जिनसे स्त्री या पुरुष के लिए समाज में खास तरह की भूमिका का निर्धारण होता हो या जिससे किसी को हीनता का अहसास होता हो।[215] उन्हें ऐसे सभी उपाय करने चाहिए जिनसे महिलाओं की खरीद–फरोख्त और शोषण व वेश्यावृत्ति पर रोक लगे।[216] उन्हें यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि महिलाओं को राजनीतिक और नागरिक अधिकारों के बारे में पुरुषों के समान दर्जा मिले।[217] इसी तरह महिलाओं को

शिक्षा,[218] रोज़गार,[219] स्वास्थ्य[220] और आर्थिक व सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर के अधिकारों की गारंटी दी गयी है, खास तौर पर परिवार संबंधी लाभों, बैंक ऋणों, चीज़ें गिरवी रखने और अन्य प्रकार के वित्तीय ऋणों और मनोरंजन, खेलकूद व सांस्कृतिक जीवन से संबंधित गतिविधियों में बराबरी का हकदार माना गया है।[221]

सी ई डी एडब्ल्यू महिलाओं को कानून के समक्ष पूरी समानता प्रदान करता है और उन्हें अनुबंध (contract) करने और संपत्ति के लेनदेन का अधिकार भी देती है।[222] महिलाओं को विवाह और पारिवारिक जीवन के क्षेत्र में भी अधिकार हैं, जिसमें स्वतंत्र रूप से जीवन साथी के चुनाव का अधिकार और अपनी इच्छा व पूरी रजामंदी से विवाह का अधिकार भी शामिल हैं। इसके अलावा पारिवारिक संपत्ति के प्रबंधान में पूरी समानता और विवाह के लिए निर्धारित न्यूनतम आयु सीमा पूरी होने से पहले विवाह करने से इन्कार का अधिकार भी शामिल है।[223] इस समझौते में राज्यों से अपेक्षा की गयी है कि वे ग्रामीण महिलाओं द्वारा महसूस की जाने वाली खास समस्याओं और अर्थव्यवस्था के गैर–मौद्रिक क्षेत्र (non-monetised sector) में उनके योगदान सहित परिवार के आर्थिक अस्तित्व को कायम रखने में उनके द्वारा निभाई जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिका का ध्यान रखें। परिणामस्वरूप, उन्हें कृषि ऋण और आर्थिक सहायता, समस्त सामुदायिक गतिविधियों में भागीदारी, प्रशिक्षण और साक्षरता तथा स्व–सहायता समूहों व सहकारी संस्थाओं के रूप में संगठित होने के भी पक्के इंतजाम किये जाने चाहिए ताकि वे रोज़गार और स्व–रोज़गार के माध्यम से आर्थिक अवसरों का समान रूप से फायदा उठा सकें। मोटे तौर पर, राज्यों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि महिलाएं भागीदारी और समुचित जीवन स्थितियों, खास तौर पर आवास, स्वच्छता, बिजली, पानी की आपूर्ति, परिवहन और संचार की सुविधाओं सहित तमाम अधिकारों का लाभ उठा सकें।[224]

सी आर सी मानवाधिकारों संबंधी समस्त समझौतों में से ऐसा समझौता है जिसका सबसे अधिक अनुसमर्थन किया गया है। इसमें इस बात को मान्यता दी गयी है कि ''दुनिया के तमाम देशों में बच्चों को अत्यंत कठिन स्थितियों में रहने को मजबूर होना पड़ रहा है'' और उनके ऊपर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता हैं।[225] समझौते के केन्द्रीय विषय अनुच्छेद 3.1 में इस प्रकार बताया गया है :

बच्चों से संबंधित तमाम गतिविधियों में, चाहे वे सामाज कल्याण की सार्वजनिक या निजी संस्थाओं द्वारा संचालित की गई हों या फिर न्यायिक अदालतों, प्रशासनिक अधिकारियों और विधायी संस्थाओं द्वारा, मुख्य विषय बच्चों के हित ही होंगे।

यह महसूस करते हुए कि प्रत्येक बच्चे को जीवन का जन्मजात अधिकार प्राप्त है, राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए सहमत हैं कि ''बच्चों की उत्तरजीविता और विकास अधिक से अधिक हो।''[226] बच्चे के लिए राष्ट्रीयता की सुनिश्चित व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि उसके सामने राज्यहीनता की स्थिति उत्पन्न न हो और इसके साथ ही उसकी पहचान के विकास और संरक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।[227] समझौते के केन्द्रीय विषयों में से एक है – परिवार की एकता और संरक्षण तथा परिवार को सहायता, क्योंकि जैसा कि (समझौते की) प्रस्तावना में कहा गया है कि परिवार ''समाज का मूलभूत समूह है और अपने सभी सदस्यों, खास तौर पर बच्चों के लिए विकास और खुशहाली का स्वाभाविक माहौल उपलब्ध कराता है।'' इस तरह के संरक्षण और सहायता से परिवार को ''समाज में अपनी जिम्मेदारियों को ठीक तरह से निभाने में मदद मिलेगी।'' कई ऐसे प्रावधान किये गये हैं जिनका उद्‌देश्य परिवार का भरण पोषण करना और बच्चे का उसके माता–पिता से अलगाव रोकना है, बशर्ते ऐसा अलगाव किसी न्यायिक संस्था द्वारा बच्चे के हित में न बताया गया हो, उदाहरण के लिए, जब माता–पिता बच्चे को बिगाड़ रहे हों।[228] सी आर सी बच्चों को उनके सामान्य नागरिक, कानूनी, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों का आश्वासन दिलाता है, साथ ही यह विस्तार से यह भी स्पष्ट करता है कि इन्हें बच्चों के विशेष संदर्भ में किस तरह लागू किया जाना चाहिए। इस तरह शारीरिक और भावनात्मक सुरक्षा के अधिकार को नया रूप दिया गया है और माता–पिता, कानूनी वारिस या बच्चे की देखरेख के लिए ज़िम्मेदार उसके अभिभावक के संरक्षण के दौरान बच्चे को सभी तरह की शारीरिक और मानसिक हिंसा, पीड़ा या दुर्व्यवहार, उपेक्षा या उपेक्षापूर्ण व्यवहार, बुरा सलूक या शोषण (इसमें यौन शोषण भी शामिल है) से सुरक्षा प्रदान की गयी है।[229] स्वास्थ्य के अधिकार में स्पष्ट किया गया है कि राज्यों को शिशु और बाल–मृत्यु दर कम करने के लिए कदम उठाने चाहिए। माताओं को प्रसव से पूर्व और इसके बाद स्वास्थ्य की देखभाल की सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए और ऐसे रीति–रिवाज़ों को समाप्त कर देना चाहिए जिनसे बच्चो के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।[230] बच्चों को आर्थिक शोषण तथा ऐसे किसी भी कार्य से संरक्षण का पूरा अधिकार है जो उनके स्वास्थ्य या विकास के लिए जोखिम वाला या नुकसानदेह हो सकता है।[231] बच्चों को मादक पदार्थों के

cyan black

गैर कानूनी इस्तेमाल,[232] यौन शोषण और तस्करी से भी बचाया जाना चाहिए।[233] सी. ई. डी. ए.डब्ल्यू. के विपरीत सी. आर. सी. सांस्कृतिक माहौल और बच्चों के अधिकारों को लेकर ख़स तौर पर उत्सुक है।[234] प्रत्येक बच्चे को उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त जीवन स्तर का अधिकार है।[235]

अन्य कमज़ोर समूहों, जैसे मूलनिवासी,[236] जातीय अल्पसंख्यक,[237] मजदूरों[238] और शरणार्थियों[239] की विशेष संवेदनशीलता की ओर भी मानवाधिकार व्यवस्था का ध्यान गया है। उनके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि अनेक अधिकारों पर जोर दिया गया है जिन्हें नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के साथ समन्वित करने से यह सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी कि इन समूहों के खिलाफ भेदभाव न होने पाये। मानवाधिकार व्यवस्था की यह भी कोशिश है कि इन समूहों को रचनात्मक कार्रवाई (affirmative action) या विशेष संरक्षण का लाभ मिले। उन्हें रोज़गार, आवास, शिक्षा और जीवन की अन्य सुविधाएँ उपलब्ध हों ताकि वे अपने समाज के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में पूर्ण सदस्य के रूप में भाग लें।

क्षेत्रीय स्तर

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के नाम हैं: मानव एवं समुदाय के अधिकारों पर अफ्रीकी समझौता तथा अमेरीकी मानवाधिकार समझौता और यूरोपियन सामाजिक घोषणपत्र। इनपर संबंधित क्षेत्रों के बहुत से देशों ने हस्ताक्षर कर दिये हैं।

मानव एवं समुदाय के अधिकारों पर अफ्रीकी समझौता

इस अधिकारपत्र को राष्ट्रमंडल के सभी अफ्रीकी देशों की मंजूरी मिली हुई है। इसमें आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को उच्च प्राथमिकता दी गयी है। इसकी प्रस्तावना में विकास के अधिकार की ओर ध्यान देने का आग्रह करते हुए तमाम अधिकारों के आपस में एक दूसरे से जुड़े होने की बात पर जोर दिया गया है।

चार्टर में ''समानता पर आधारित और संतोषजनक स्थितियों में'' काम करने के अधिकार;[240] शिक्षा के अधिकार,[241] ''शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की बेहतरीन स्थिति'' पाने का अधिकार;[242] ''संस्कृति'' के अधिकार[243] और ''परिवार'' के अधिकार[244] की गारंटी दी गयी है। सभी लोगों को आत्मनिर्णय के अधिकार की भी गारंटी दी गयी है जिसके अंतर्गत राज्यों की आपसी सहमति से अपनी सम्पत्ति और प्राकृतिक संसाधानों का आजादी से लेनेदेन करने या उपयोग का अधिकार भी दिया गया है। ''हर तरह के विदेशी आर्थिक शोषण, खास तौर पर एकाधिकार पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के शोषण को समाप्त करने'' पर हस्ताक्षर करने वाले राज्य सहमत हैं ''ताकि नागरिक प्राकृतिक संसाधनों से होने वाले फायदों का भरपूर लाभ वे उठा सकें''।

चार्टर मे अफ्रीकी मानव तथा समुदाय अधिकार आयोग (African Commission on Human and Peoples' Rights) के गठन की बात कही गयी है। इस आयोग को प्रोत्साहन और संरक्षण संबंधी कई कार्य सौंपे गये हैं। इनमें शामिल हैं: राष्ट्रीय स्तर की मानवाधिकार संस्थाओं को बढ़ावा देना; सरकारों को सिफारिशें देना; राष्ट्रीय कानून का प्रस्तावित करना; किसी देश, अफ्रीकी एकता संगठन (African Union) या उसके द्वारा मान्यता प्राप्त किसी अन्य संगठन के अनुरोध पर अधिकारपत्र यानी चार्टर की व्याख्या करना; तथा अफ्रीकी एकता संगठन द्वारा सौंपा गया कोई भी अन्य कार्य। सदस्य देशों की आपसी शिकायतों के बारे में भी व्यवस्था की गयी है। इसके अंतर्गत अगर स्थानीय स्तर पर सभी उपाय पूरे हो जाते हैं तो आयोग शिकायतों की जांच कर सकता है और अपनी रिपोर्ट संबंधित देशों और अफ्रीकी एकता संगठन को देता है। अगर कुछ बुनियादी शर्तें पूरी हों तो कुछ व्यक्तियों द्वारा या सामूहिक रूप से भी शिकायत की जा सकती है। लेकिन इस मामले में आयोग को सिर्फ सलाह देने का अधिकार ही है। शिकायतों की जांच के लिए ज़िम्मेदार आयोग की यह मशीनरी अब तक बेअसर सी रही है। लेकिन 1998 में मंजूर एक करार के जरिए इसे मजबूत किया गया है। इसके अंतर्गत अफ्रीकी मानव तथा समुदाय अधिकार न्यायालय (African Court on Human and Peoples' Rights) का गठन किया गया है। इसे सामाजिक और आर्थिक अधिकारों सहित अधिकारपत्र में बताए गए सभी अधिकारों को लागू करने का अधिकार सौंपा गया है।[245] करार को क्रियाशील होने के लिए 15 देशों की सहमति होना जरूरी है। जनवरी 2001 तक केवल 4 देशों ने इस करार का अनुसमर्थन किया था जिनमें राष्ट्रमंडल से एकमात्र देश गाम्बिया शामिल है।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

अमेरिकी मानवाधिकार समझौता

अमेरिकी समझौते पर दस्तखत करने वाले राष्ट्रमंडल देशों में बारबाडोस, डोमिनिका, ग्रेनाडा, जमैका और ट्रिनिदाद व टोबैगो शामिल हैं। समझौते में शामिल देशों को ''अमेरिकी राज्यों का संगठन'' (Organisation of American States) के घोषणापत्र द्वारा निर्धारित और ब्यूनस आयर्स के करार द्वारा संशोधित आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक मानदंडों में निहित अधिकारों को वास्तविकता में बदलने'' का पक्का इंतजाम करने की ज़िम्मेदारी भी सौंपी गयी है।[246]

अमेरिकी प्रणाली में आयोग और न्यायालय दोनों की व्यवस्था है। आयोग का कार्य मुख्य रूप से अधिकारों को बढ़ावा देना है, लेकिन वह किसी देश या किसी समूह या व्यक्ति की राज्य द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतें भी स्वीकार कर सकता है (बशर्ते वह राज्य इसके अधिकार क्षेत्र को मान्यता दे चुका हो)। आयोग का काम शिकायतों को दोस्ताना तरीके से सुलझाना है। अगर वह ऐसा नहीं कर पाता तो वह शिकायत की जांच कर सकता है और संबद्ध पक्षों को अपनी गुप्त रिपोर्ट दे सकता है। इंटर अमेरिकन कोर्ट ऐच्छिक अधिकारक्षेत्र (optional jurisdiction) वाला संगठन है जिसके फैसले अनिवार्य और ऐच्छिक, दोनों तरह के होते हैं। हाल में, आयोग ने एक गैर–सरकारी संगठन टोलेडो माया कल्चरल काउन्सिल से बेलीज़ के खिलाफ एक शिकायत स्वीकार की है जिसमें घने बरसाती वनों में बड़े विदेशी निगमों को लकड़ी की कटाई और तेल–खोज के लिए रियायतें दिये जाने पर आपत्ति प्रकट की गयी है और कहा गया है कि इससे स्थानीय माया समुदायों के अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया है। बेलीज़ के सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस मामले में कोई सुनवाई न करने की वजह से यह कदम उठाया गया। अगर यह आरोप साबित हो जाता है तो यह माना जाएगा कि बेलीज़ ने मानवाधिकारों के संरक्षण के वादे का उल्लंघन किया है।

यूरोपीय सामाजिक घोषणापत्र

जिन राष्ट्रमंडल देशों ने यूरोपीय मानवाधिकार समझौते (यूरोपियन कन्वेंशन ऑव ह्यूमन राइट्स) और सामाजिक घोषणापत्र पर दस्तखत किए हुए हैं, वे हैं : ब्रिटेन, माल्टा और साइप्रस।

सामाजिक घोषणापत्र को काउन्सिल ऑव यूरोप ने 1961 में स्वीकृति प्रदान की। इसका मकसद था यूरोपीय मानवाधिकार के प्रयासों में मदद देना जिसमें कोई आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार शामिल नहीं थे। (हालांकि यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय – European Court of Human Rights– ने अपनी व्याख्याओं में संधि में कुछ अधिकारों को शामिल होने पाया था।) इसका उद्देश्य ग्रामीण और शहरी दोनों ही तरह की आबादी के जीवन स्तर में सुधार करना और अधिकारों के ढांचे के अंतर्गत सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देना है। ख़ास तौर पर समझौता मज़दूरों के अधिकारों की सुरक्षा करता है। इनमें पूर्ण रोज़गार से जुड़े अनेक अधिकार, जैसे काम करने के लिए सुरक्षित और स्वास्थ्यप्रद माहौल का अधिकार, संघ बनाने का अधिकार और सामूहिक रूप से अपनी मांगें रखने का अधिकार शामिल हैं। इसके अलावा महिला मज़दूरों के लिए विशेष संरक्षण; शारीरिक और नैतिक जोखिमों से बच्चों और किशोरों की रक्षा; व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार; उच्चतम स्वास्थ्य का स्तर पाने का अधिकार और उनके आश्रितों के लिए सामाजिक सुरक्षा; और पर्याप्त संसाधनों से वंचित किसी भी व्यक्ति के लिये सामाजिक और स्वास्थ्य संबंधी सहायता तथा सामाजिक कल्याण सेवाओं को प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच के दायरे में लाने जैसे अधिकार शामिल हैं। अशक्त, अपंग लोगों तथा माताओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान हैं और समाज की बुनियादी इकाई के रूप में परिवार को ''अपना पूर्ण विकास सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सामाजिक, कानूनी और आर्थिक संरक्षण'' का अधिकार दिया गया है।''

घोषणा पत्र राज्यों को ''अंतर्राष्ट्रीय संधि के वैधानिक दायित्व''[247] सौंपता है। लेकिन इस दायित्व के निर्वाह पर निगाह रखने के लिए गैर–न्यायिक तरीके बनाये गये हैं। प्रत्येक देश से प्राप्त होने वाली द्विवार्षिक रिपोर्टों के आधार पर निगरानी का काम किया जाता है। सबसे पहले विशेषज्ञों की एक समिति, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को भी आमंत्रित किया जा सकता है, रिपोर्टों की जांच करती है। समिति की रिपोर्टों और टिप्पणियों की एक उप–समिति द्वारा समीक्षा की जाती है। यह उप–समिति सरकारी सामाजिक समिति (Governmental Social Committee) के सदस्य राज्यों की सरकारों द्वारा गठित की जाती है। राष्ट्रीय रिपोर्ट और विशेषज्ञों की

टिप्पणियों के साथ अपनी रिपोर्ट मंत्रियों की समिति को भेजती है। मंत्रियों की समिति दो तिहाई बहुमत से '' अनुबंध करने वाले प्रत्येक पक्ष (contracting party) के लिए आवश्यक सिफारिशें करती है।''[248] मंत्रियों की समिति का एक लाभ यह भी है कि उसे परामर्श सभा (Consultative Assembly) के विचारों का फायदा भी होता है क्योंकि विशेषज्ञों की टिप्पणियां उनके पास भी रहती हैं।[249]

यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय ने बड़े दिलचस्प और कारगर तरीके से नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के बीच आपसी तालमेल बिठाने का प्रयास भी किया है। उसने घोषणा की है कि ''यूरोपीय मानवाधिकर संधि जिन नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के निर्धारण का कार्य कर रही है, उनमें से कई के सामाजिक और आर्थिक निहितार्थ भी हैं। समझौते की व्याख्या सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के दायरे में पहुंच सकती है, केवल इसी तथ्य के आधार पर इस तरह की व्याख्या के खिलाफ कोई अंतिम निर्णय नहीं करना चाहिए। उस क्षेत्र को संधि के दायरे में आने वाले क्षेत्र से अलग करने के लिए कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है।''[250]

विभिन्न अधिकारों के बीच दिखाई देने वाली टकराव की स्थिति के बावजूद आर्थिक अधिकारों की रक्षा कैसे की जा सकती है, इसका एक अच्छा उदाहरण यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय ने प्रस्तुत किया है। एक मामले में उसने पर्यावरण के नुकसान और उससे उत्पन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के एक गंभीर मामले को व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के संरक्षण के अधिकार का उल्लंघन ठहराया है और संपत्ति के अधिकार की तरह के अन्य अधिकारों के दायरे को सीमित करने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार का पक्ष लिया। एक अन्य उदाहरण में एक मकान मालिक द्वारा किराया नियंत्रण कानून को दी गयी चुनौती को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि संबंधित सरकार आवास के अधिकार का संरक्षण कर रही है।[251]

दक्षिण एशिया

दक्षिण एशिया में नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा करने व उन्हें बढ़ावा देने के लिए क्षेत्रीय प्रणाली नहीं है। सार्क का घोषणापत्र[252] जो सदस्य देशों जैसे बांगलादेश, भूटान, मालद्वीप, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका के बीच आर्थिक व तकनीकी सहयोग का आधार निर्धारित करता है, अपने लक्ष्यों में मानवाधिकारों की पूर्ति का उल्लेख नहीं करता। परन्तु कमज़ोर समूह, विशेषकर महिलाओं व बच्चों के अधिकारों के बढ़ रहे उल्लंघनों से प्रेरित होने के कारण सार्क देशों ने अधिकारों के सरंक्षण की व्यवस्था को अपने सहयोग क्षेत्र में जोड़ा है। जनवरी 2002 में दो प्रपत्रों पर हस्ताक्षर किए गए थे– एक बच्चों के कल्याण में वृद्धि के लिए और दूसरा महिलाओं व बच्चों की तस्करी के खिलाफ संघर्ष करने और उसे रोकने के लिए। बाल कल्याण समझौते में सी.आर.सी. में स्वीकृत बच्चों के सभी अधिकार पहचाने गए हैं तथा उनकी पूर्ति की ज़िम्मेदारी सार्क के देशों पर डाली गयी है।[253] उन्हें बाल–विकास संबंधी एक राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू करने के लिए कहा गया है जिसके प्राथमिक लक्ष्य–क्षेत्र कुपोषण, बीमारी और शिक्षा हैं।[254] यह सुनिश्चित करना राज्यों का कर्त्तव्य है कि बच्चों की शोषण, भेदभाव, हिंसा और अवैध व्यापार से कानूनन रक्षा की जाए। उनका यह भी दायित्व बनता है कि वे शिक्षा के माध्यम से बाल–मज़दूरी को दूर करने तथा इससे होने वाली आमदनी के नुकसान के लिए संबंधित परिवारों को मुआवज़े के तौर पर सामाजिक सुरक्षा प्राप्त कराने के लिए कार्यवाही करें।[255] यह सुनिश्चित करना भी राज्य की ज़िम्मेदारी है कि बच्चों तक सभी जानकारियाँ पहुँचे तथा उन्हें अपनी तकलीफों को बताने के लिए उचित अवसर प्राप्त हो।[256]

इस समझौते के प्रावधानों को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए राज्य को नया कानून बनाना पडेगा या वर्तमान कानूनों में संशोधन करना पडेगा।[257] यह समझौता राज्य को इन प्रावधानों के पालन के लिए राजनीतिक प्रतिबद्धता व सहयोग देने का कर्त्तव्य सौंपता है।[258] तथापि इस समझौते में एक कमी है, इसमें संयुक्त राष्ट्र के समझौतों के तहत निरीक्षण करने वाले संधि निकायों की भांति कार्य की प्रगति का निरीक्षण करने वाली प्रणाली नहीं है। इसके अतिरिक्त, उन राज्यों के विरुद्ध व्यक्तिगत शिकायत करने की कोई व्यवस्था नहीं है जो समझौते में दिए गए अपने कर्त्तव्यों को पूरा नहीं करते। समझौते को लागू करने से पहले उसे सभी सातों देशों की अभिपुष्टि अवश्य मिलनी चाहिए।

दूसरा समझौता घोषित करता है कि वेश्यावृत्ति के लिए तस्करी, बुनियादी मानवाधिकारों का उल्लंघन है। इसका लक्ष्य सार्क देशों में परस्पर सहयोग को बढ़ाना है जिससे महिलाओं व बच्चों के अवैध व्यापार का अंत हो, पीड़ित अपने देश में वापस भेजे जा सके और

उनका पुनर्वास हो।[259] राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अवैध व्यापार, इसमें सहायता करने वाले, दुष्प्रेरित करने वाले और आर्थिक सहायता देने वाले को कानून के तहत कड़ी सजा दे।[260] ये अपराध दोषियों के प्रत्यार्पण के लिए पर्याप्त कारण माने गए हैं। जिन देशों के बीच प्रत्यार्पण संधि पहले से मौजूद नहीं है, उनके लिए यह समझौता प्रत्र्यापण का आधार बनेगा।[261] राज्यों का कर्त्तव्य है कि वे अवैध व्यापार और इस समझौते के प्रावधानों के प्रति कानून लागू करने वाली एजेंसियों और न्यायतंत्र को संवेदनशील बनाए। उन्हें चाहिए कि वे तस्करी करने वाली एजेंसियों, संस्थानों, व्यक्तियों, उनके तरीकों व मार्गों के बारे में एक–दूसरे को जानकारी दें ताकि इस समस्या से और प्रभावी रूप से लड़ा जा सके।[262] अवैध व्यापार रोकने और उससे लड़ने में गैर–सरकारी संगठनों के योगदान की प्रशंसा की गयी है तथा पीड़ितों को संरक्षण देने के उनके प्रयासों में राज्यों को सहायता देने के लिए कहा गया है।[263] यह समझौता सार्क राज्यों के अधिकारों का एक क्षेत्रीय कार्यदल बनाने की व्यवस्था करता है जिससे इसके प्रावधानों के कार्यान्वयन में सुविधा हो और उनकी प्रगति के संबंध में आवधिक समीक्षा की जा सके।[264] इस पर्यवेक्षी प्रणाली के संगठनात्मक पहलूओं को सुलझाना अभी बाकी है। समझौते को लागू करने के लिए उसे सभी देशों की अभिपुष्टि अवश्य मिलनी चाहिए।

वेश्यावृत्ति पर अपना ध्यान सीमित कर लेने के कारण यह समझौता दक्षिण एशिया में फैली अवैध मानव व्यापार की बड़ी समस्या पर ध्यान नहीं देता। बंधुआ मज़दूरी, घरेलू कामकाज और निर्माण–कार्य तथा होटलों, दुकानों व गैरजों में काम कराने के लिए पुरुषों, महिलाओं व बच्चों का अवैध व्यापार एक देश से दूसरे देश में किया जाता है। इनका व्यापार भीख मँगाने, अंग–व्यापार, मादक द्रव्यों की तस्करी और अन्य अमानवीय कार्यों के लिए भी किया जाता है। समझौता इन गैर–कानूनी पहलूओं पर ध्यान नहीं देता।

राष्ट्रीय स्तर

अप्रत्यक्ष कार्यान्वयन

प्रारंभिक राष्ट्रीय संविधानों में नागरिकों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा के प्रावधान नहीं हुआ करते थे। लेकिन यह परम्परा तब कुछ हद तक टूटी जब राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles of State Policy) को सन् 1950 में भारतीय संविधान में अपनाया गया। यह नई परंपरा राष्ट्रमंडल देशों के संविधान में पहुंची और अब तो नीति निर्देशक सिद्धान्त कई देशों के संविधानों में पाये जाते हैं। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को शामिल करने की प्रेरणा और उनमें निहित सामाजिक और आर्थिक न्याय की समझ की जड़ें भारतीय राष्ट्रीयता और आधुनिक भारत की उस परिकल्पना में बड़े गहरे समाई हुई हैं जिसका सपना आज़ादी के समय देखा गया था। संविधान की आत्मा कहे जाने वाले राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत उन लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो हमारे संविधान निर्माताओं ने निर्धारित किये।

एक ऐसे देश में जो उपनिवेशवादी दासता से उबर रहा हो और जहां सामाजिक स्तरीकरण व लिंग–संबंधी असमानताएं हों, बंधुआ मज़दूरी की पुरानी परम्परा हो तथा बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और निरक्षरता का बोलबाला हो; नीति निर्देशक सिद्धांतों से अपेक्षा की जाती है कि राज्य की नीतियों और कार्यों से आमदनी, सामाजिक स्तर और अवसरों संबंधी असमानताएं न सिर्फ व्यक्तियों में, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के समूहों के बीच में भी कम होंगी।

समतापरक समाज के निर्माण के लिए राज्य को यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी नागरिकों को समुचित आजिविका का अधिकार हो तथा संसाधनों के स्वामित्व एवं वितरण और भौतिक संसाधनों के नियंत्रण से आम आदमी के हितों का बेहतरीन तरीके से संरक्षण हो। आर्थिक प्रणाली इस तरह से कार्य करे कि संपत्ति या उत्पादन के साधनों के चंद लोगों के हाथों में सिमट जाने से सबके साझा हितों को नुकसान न पहुंचे।

शोषण से रक्षा और उपेक्षित वर्गों के संरक्षण के लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि नागरिकों को आर्थिक मजबूरियों की वजह से ऐसे व्यवसाय न अपनाने पड़ें जो उनकी आयु और शक्ति के लिए अनुचित है। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों का शोषण न हो तथा बच्चों को खास तौर पर विकास का पूरा मौका मिले। अन्य नीति निर्देशक सिद्धांत जरुरतमंदों के लिए मुफ्त कानूनी सहायता, जीवन यापन के लिए समुचित मज़दूरी की गारंटी, सदियों से उपेक्षित जातियों, जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों को संरक्षण;

स्वास्थ्य और पौष्टिकता के स्तर में सुधार; 14 साल तक के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था; स्थानीय सरकारों में लोगों की और उद्यमों के प्रबंधन में मज़दूरों की भागीदारी के अधिकार; पर्यावरण के संरक्षण और उसमें सुधार तथा वनों व वन्य जीवों की रक्षा की बात करते हैं।

इसके अलावा, कुछ अन्य नीति निर्देशक सिद्धांत भी हैं जिनमें घोषणा की गयी है कि ''आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर राज्य काम के अधिकार, शिक्षा के अधिकार और बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी, अक्षमता और अन्यायपूर्ण अभाव के मामलों में सार्वजनिक सहायता सुनिश्चित करने के लिए कारगर प्रावधान करेगा।''

हालांकि नीति निर्देशक सिद्धांतों को अदालत के जरिए लागू नहीं कराया जा सकता, लेकिन ''देश के शासन में इनका बड़ा महत्व है। राज्य का यह दायित्व होगा कि वह इन सिद्धांतों का कानून बनाते समय उपयोग करे।''[265] कई वर्षों से संविधान की व्याख्या करने वाली अदालतों द्वारा नीति निर्देशक सिद्धांतों का उपयोग सरकार के लिए दिशानिर्देश तय करने के लिए किया गया है। उन्हें कानूनी तौर पर लागू होने वाले ऐसे सिद्धांतों के रूप में कभी नहीं देखा गया जिन्हें अधिकारों की तरह अनिवार्य रूप से लागू किया जा सके।

लेकिन धीरे धीरे बदलाव आया है और अब यह महसूस किया जाने लगा है कि ''मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों के बीच तालमेल और संतुलन हमारे संविधान के बुनियादी ढ़ाँचे (basic structure) की एक अनिवार्य विशेषता है।''[266] नीति निर्देशक सिद्धांतों में लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, जबकि मौलिक अधिकार उन साधनों का निर्धारण करते हैं, जिनसे ये लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें।[267] अब भारत में स्थिति यह है कि प्रवर्तनीय (enforceable) मौलिक अधिकारों की व्याख्या नीति निर्देशक तत्वों के आलोक में होनी चाहिए और जब भी संभव हो इन सिद्धांतों की व्याख्या मौलिक अधिकारों के साथ की जानी चाहिए।

भारत में मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं का दायरा, जिसका निमार्ण व्यक्ति की पाश्चात्य एवं उदारतावादी परंपरा से प्रभावित होकर किया गया था, अब काफी विस्तृत हो गया है। उदाहरण के लिए, अदालतों ने जीवन के अधिकार की बड़ी व्यापक परिभाषा दी है जिससे इसका अर्थ सिर्फ पशुओं की तरह अपना अस्तित्व बनाए रखना न होकर कहीं अधिक व्यापक हो गया है।[268] मानवीय गरिमा के साथ जीना और जीवन के लिए आवश्यक न्यूनतम जरूरतों, जैसे पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक आहार, वस्त्र और आवास सुविधा, पढ़ने–लिखने और अपने विचारों को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करने की सुविधा, मुक्त रूप से घूमने–फिरने तथा अन्य लोगों के साथ मिलने–जुलने की स्वतंत्रता का होना भी इसके अंतर्गत शामिल है।[269] जीवन के अधिकार में कुछ और बातें जोड़ते हुए अदालत ने स्पष्ट रूप से नीति निर्देशक सिद्धान्तों में स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा सुविधा तथा काम करने के लिए न्यायोचित व मानवीय माहौल उपलब्ध कराने को भी शामिल कर लिया है।[270] इसी में हाल ही में चिकित्सा सेवाओं, खास तौर पर आपात स्थितियों में चिकित्सा सेवा की गारंटी को भी शामिल किया गया है। राज्य वित्तीय अड़चनों की वजह से मानव जीवन को सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराने के अपने संवैधानिक दायित्व से बच नहीं सकता।[271]

भारत के उदाहरण से प्रोत्साहित होकर बांगलादेश के सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन के अधिकार का अपने संवैधानिक संदर्भ में और विस्तार किया है और इसे जीवन तथा जीवन का पूरा आनंद लेने के लिए शरीर की रक्षा तक सीमित नहीं रखा है, बल्कि इसमें अन्य बातों के साथ साथ आम लोगों के स्वास्थ्य और दीर्घजीवन के संरक्षण को भी जोड़ दिया है।[272]

इन ज़ोरदार प्रयासों के बावजूद, न्यायपालिका न तो इतनी सक्षम है कि आर्थिक और सामाजिक लाभों के अधिकार[273] को सुस्थापित कर सके और न उसकी इस कार्य में दिलचस्पी है। खास तौर पर, भारत या बांगलादेश में तो वह सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को मान्यता देने वाले फैसलों को लागू करने में भी असफल रही है। मौलिक अधिकारों की वृद्धि या उन की बदलती या बढ़ती हुई व्याख्या का खयाल न रखते हुए, नीति निर्देशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों में समाहित करने से उनको कोई ठोस कानूनी आधार नहीं मिल जाता और न ही इन्हें कानूनी तौर पर सीधे लागू करने योग्य बनाया जा सकता है।

भारत में अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून लागू करने में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका

भारत ने आई सी सी पी आर और आई सी ई एस सी आर को 1979 में अभिपुष्टि दे दी थी। तब से इन अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में स्वीकृत अधिकार देश के न्यायालयों में प्रवर्तनीय हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को स्थापित करने के लिए 1993 में संसद द्वारा पारित मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम इन प्रसंविदाओं में मौजूद सभी मानवाधिकारों की प्रवर्तनीयता को पहचानता है।[274] इस धारा की संकुचित व्याख्या की जाए तो सी ई डी ए डब्ल्यू, सी आर सी और सी ई आर डी जैसे अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार समझौते भारतीय न्यायालयों के अधिकार–क्षेत्र के बाहर रह जाते हैं। परंतु, सर्वोच्च न्यायालय सरकार को उसके द्वारा अभिपुष्टित सभी अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार समझौतों और अब तक उसके द्वारा हस्ताक्षरित अन्य घोषणाओं के अनुसार नागरिकों के राजनीतिक, आर्थिक, नागरिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा व पूर्ति करने के उसके कर्त्तव्यों के विषय में समय–समय पर याद दिलाता रहता है। सर्वोच्च न्यायालय ने आजीविका, आवास, न्यायोचित मज़दूरी, सामाजिक सुरक्षा, सुरक्षित वातावरण व सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे मानवाधिकारों को संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 की व्याख्या करते समय मौलिक अधिकारों का दर्ज़ा दिया है। ये संवैधानिक प्रावधान प्रत्येक नागरिक को समानता व भेदभाव से मुक्ति तथा जीवन व स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों से वर्तमान मौलिक अधिकारों की अर्थव्याप्ति में विस्तार हुआ है। यह भारतीय न्यायतंत्र में हाल ही में आई एक नई प्रवृत्ति है। निम्नलिखित चुनिंदा उद्घोषणाएं इस नये विकास की संकेतक है।[275]

आवासन का अधिकार

"आई सी ई एस सी आर के अनुच्छेद 11(1) के अनुसार राज्य नागरिक के और उसके परिवार के यथोचित जीवन स्तर के अधिकार – जिसमें रोटी, कपड़ा और मकान तथा जीवन परिस्थितियों में निरन्तर सुधार शामिल हैं, – का सम्मान करते हैं।" राज्य इन अधिकारों की प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त कदम उठायेंगे। गरीबों के पक्के आवास और निवास का अधिकार जिसे आई सी ई एस सी आर के अनुच्छेद 19(1)(म) में स्वीकार किया गया है, तब तक एक भ्रामक सपना बनकर रह जाएगा जब तक राज्य उनके लिए रोटी, कपड़ा और मकान का प्रबंध नहीं करेंगे जो उन्हें अपने जीवन को सार्थक रूप से गरिमा के साथ जीने के लिए ज़रूरी हैं — अतः राज्य के लिए अनिवार्य है कि वह अपने या अपनी संस्थाओं द्वारा चलाई गई आवास योजना के तहत उनके आर्थिक स्तर के अनुसार गरीबों को स्थाई आवास दिलाये जिससे वह आसान किश्तों में कीमत का भुगतान कर सके तथा संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ड.) और 21 में आश्वासित स्थाई आवास के अधिकार को प्राप्त कर सके।"

(*पी.जी.गुप्ता बनाम गुज़रात सरकार व अन्य* मामले में के. रामास्वामी, एस. मोहन और एन. वेंकटाचेला जेजे)

न्यायोचित मज़दूरी और समान कार्य के लिए समान मज़दूरी का अधिकार

"सरकार अपने वर्चस्वशाली होने का लाभ नहीं उठा सकती है व किसी मज़दूर को अनियमित मज़दूर के रूप में काम करने के लिए मजबूर नहीं कर सकती है——। अन्य विकल्प न होने के कारण यह मज़दूर कम मज़दूरी पर काम कर रहा है। सरकार को एक आदर्श नियोजक बनना चाहिए। अलग–अलग दरों पर मज़दूरी देने के लिए अनियत मज़दूरों का वर्गीकरण — तर्कसंगत नहीं है। यह आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार के अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 7 की विचारधारा के विपरीत है जो सभी राज्यों को न्यायोचित मज़दूरी व समान कार्य के लिए समान मज़दूरी की व्यवस्था करने का उपदेश देता हैं।"

(*भारतीय डाक तार मज़दूरी मंच के माध्यम से डाक एवं तार विभाग के तहत नियोजित अनियमित दिहाड़ी मज़दूरी बनाम भारत संघ* मामले में ई.एस.वेंकटारामैया और एस. रंगनाथन जेजे)

सामाजिक सुरक्षा का अधिकार

"आई सी ई एस सी आर का अनुच्छेद 7 प्रत्येक व्यक्ति को न्यायोचित व अनुकूल कार्य–माहौल के अधिकार की प्राप्ति के प्रति समान रूप से आश्वस्त करता है। यह अधिकार न केवल पर्याप्त पारिश्रमिक व उचित मज़दूरी की गारंटी देता है बल्कि प्रसंविदा के अन्य प्रावधानों के अनुसार मज़दूर व उसके परिवार को गरिमापूर्ण जीवन का आश्वासन देता है। सामाजिक सुरक्षा लोगों के सामाजिक–आर्थिक न्याय का एक

cyan black

पहलू है तथा जीविका का एक माध्यम है। अपीलकर्त्ता या बीमा क्षेत्र के अन्य किसी भी अधिकारी का सार्वजनिक कर्त्तव्य बनता है कि वह अपनी नीतियाँ ऐसी न्यायोचित, उचित व तर्कपूर्ण नियम व शर्तों के अनुरूप तैयार करे जिससे वह समाज के सभी स्तरों के पात्र व्यक्तियों को बीमा सुरक्षा प्रदान कर सके। पात्रता की शर्तें संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार व नीतिनिर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार हों।"

(*एल.आई.सी. भारत बनाम उपभोक्ता अनुसंधान एवं शिक्षा केन्द्र* मामले में के. रामास्वामी और एन. वेंकटाचला)

विकास का अधिकार

"विकास के अधिकार (1986) की सफल संयोजन सभा में एक सक्रिय भागीदार होने के नाते तथा घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने वाली एक पार्टी होने से भारत का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक, नागरिक व सांस्कृतिक अधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के अनुरूप ही अपनी वैधानिक या व्यवस्थापक नीतियों को सूत्रबद्ध करे, विशेष रूप से, गरीब, दलित व आदिवासियों के लिए जैसा भारत के संविधान के अनुच्छेद 38, 39 के साथ अनुच्छेद 46 में निर्देशित किया गया है। यह अनुच्छेद 21 में मान्यता प्राप्त जीवन के अधिकार से जुडा हुआ है। इन नियमित प्रयत्नों से जीवित रहने का मौलिक अधिकार तर्कपूर्ण हो जाएगा। इस के ज़रिए अपनी योग्यता को पूर्ण रूप से साकार करने का अभिन्न मानवाधिकार प्राप्त होगा; जीवन–स्तर में वृद्धि हो पायेगी; योग्यता बढ़ेगी और गरिमा तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के साथ समानता के स्तर पर जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलेगा।''

(*समता बनाम आंध्र प्रदेश राज्य* मामले में के. रामास्वामी, एस. सागी़र अहमद जे.बी. पट्टनायक जेजे)

बाल अधिकार

''अनुच्छेद 36 (सी आर सी) दर्शाता है कि राज्य बच्चों के कल्याण के किसी भी पहलू के प्रतिकूल होने वाले सभी प्रकार के शोषणों से उन्हें बचायेगा। निस्संदेह सरकार ने इस समझौते के प्रावधानों को क्रमशः कार्यान्वित करने की शर्त पर पुष्टीकृत किया था, परंतु उस के कारण सरकार संविधान के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति अपने प्रशासनिक दायित्वों से छुटकारा नहीं पा सकती *जे.पी. उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य* [(1993) 1 एससीसी 645] मामले में, संविधान खंडपीठ ने 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को मौलिक अधिकार माना– पेय जल के अधिकार को एक मौलिक अधिकार माना जाता है, जीवन के तर्कसंगत अधिकार को एक मौलिक अधिकार माना जाता है। बच्चे इन मौलिक अधिकारों के लिए समान रूप से हकदार हैं। अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि वह संविधान के अनुच्छेद 39(ङ) और (च) के अंतर्गत सुविधाएँ व अवसर उपलब्ध कराये तथा गरीबी व आवारागर्दी के कारण उनके बचपन को शोषण से बचाये।"

(*बंधुआ मुक्ति मोर्चा इत्यादि बनाम भारत संघ व अन्य* मामले में के. रामास्वामी व एस. सागी़र अहमद जेजे)

महिलाओं के अधिकार

संसद ने *मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम,* 1993 में बनाया। अनुच्छेद 2(ख) मानवाधिकार को इस प्रकार परिभाषित करता है "प्रत्येक व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता और गरिमा से संबंधित वे अधिकार जो संविधान द्वारा स्वीकृत हैं, अंतर्राष्ट्रीय घोषणापत्रों में शामिल हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।" इसके द्वारा सी ई डी ए डब्ल्यू में दिए गए सिद्धान्त और विकास के सहवर्ती अधिकार भारतीय संविधान और मानवाधिकार अधिनियम के अभिन्न अंग बन गए है और प्रवर्तनीय हैं। नीति–निर्देशक सिद्धान्त और मौलिक अधिकार मानव के व्यक्तित्व के विकास और भेदभाव खत्म करने के लिए प्रथम आधार हैं, परन्तु यह घोषणापत्र इसमें शीघ्र कार्यान्वयन की अत्यावश्यकता को जोड़ देता है। इसलिए राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह सी ई डी ए डब्ल्यू के अनुच्छेद 2(च) और सम्बद्ध अनुच्छेदों का अनुपालन करके भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 के अधिदेशाधीन लिंग आधारित सभी भेदभावों को रोके। राज्य को सभी उपयुक्त उपाय करने चाहिए। इनमें ऐसे वर्तमान कानूनों, अधिनियमों, प्रथाओं व रिवाजों में संशोधन करना भी शामिल है जिनमें महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव होता है।"

(*सी. मसिलमणि मुदलीयार व अन्य बनाम आइडोल ऑव स्वामीनाथास्वामी, स्वामीनाथास्वामी थिरुकोइल व अन्य* मामले में जे.बी पट्टनायक, के. रामास्वामी और एस. सागिर अहमद जेजे)

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

फिर भी अदालतों ने उनका अच्छा उपयोग किया है। नीति निर्देशक सिद्धांतों की रक्षा करते समय अदालतें यह सुनिश्चित करने की कोशिश करती हैं कि सरकार द्वारा उन्हें अस्वीकार करने से पहले विधिसम्मत प्रक्रिया का पालन हुआ हो। अदालतों ने नीति निर्देशक सिद्धांतों का उपयोग सरकारों, विधायिकाओं और प्रशासकों को सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के निर्देश देने के लिए आधार के रूप में किया है। उन्होंने नीति निर्देशक सिद्धांतों का उपयोग मौलिक अधिकारों के दायरे को सीमित करने के लिए ऐसी स्थितियों में किया है, जब मौलिक अधिकारों पर अमल से नीति निर्देशक सिद्धांतों से मिले संरक्षण के लिए खतरा उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, जीवन निर्वाह मज़दूरी और काम करने के लिए अच्छी स्थितियों के बारे में जो नीति निर्देशक सिद्धांत हैं, उनका उपयोग न्यूनतम मज़दूरी कानून (*Minimum Wages Act*) द्वारा लगाई गई पाबंदियों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया।

भारतीय न्यायालयों ने निर्णय किया है कि यद्यपि नीति निर्देशक सिद्धांतों को अदालतों के जरिए लागू नहीं किया जा सकता और न्यायालय विधायिका या कार्यपालिका को उन्हें लागू करने को नहीं कह सकते, लेकिन एक बार उनके अनुसार कानून बन जाने पर अदालतें राज्य को कह सकती हैं कि वे कानून को लागू करें, खास तौर पर उन स्थितियों में जब इन्हें लागू न करने से मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है। कभी कभी न्यायालयों ने और आगे बढ़ कर किसी अधिकार को नीति निर्देशक सिद्धांत का आधार दिया है। उदाहरण के लिए, शिक्षा के बारे में व्याख्या दी गयी है कि ''देश के प्रत्येक बच्चे/नागरिक को 14 वर्ष की उम्र का होने तक मुफ्त शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।''[276] आनुकल्पिक रूप में उन्होंने नीति निर्देशक सिद्धांतों का उपयोग करके राज्य को निजी संस्थाओं की गतिविधियों के विनियमन की ज़िम्मेदारी सौंप दी है। इसके उदाहरण हैं, मज़दूरों की राय के बिना किसी कम्पनी को बंद करने से रोकना या राज्यों के ऊपर निजी कॉलेजों के शुल्क ढांचे का निर्धारण करने के लिए कानून पारित करने का दायित्व डालना ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि ऊंची शुल्क दर के कारण गरीब विद्यार्थी इन कॉलेजों से पूरी तरह से बाहर न रह जाएं।

कुल मिलाकर, अदालतों ने नीति निर्देशक सिद्धांतों का उपयोग कई अच्छे कानूनी उपायों के तौर पर किया है। उदाहरण के लिए, ज़रूरतमंद समुदायों की सहायता के लिए कल्याण निधि बनाना या राज्य को ऐसे माता–पिता को रोज़गार देने को कहना जिनके बच्चे ऐसा न करने पर जोखिम वाली स्थितियों में कार्य करने को मजबूर हो जाएंगे। इस तरह अदालतों ने दावा किये जाने योग्य (justiciable) और दावा न किये जाने योग्य (non-justiciable) अधिकारों के बीच के अंतर को काफी कम कर दिया है और आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों को और सुदृढ़ बना दिया है।

राष्ट्रमंडल के अनेक देशों, जैसे घाना, नामीबिया, युगांडा, नाइजीरिया, पापुआ न्यूगिनी और श्रीलंका ने नीति निर्देशक सिद्धांत प्रणाली को अपनाया है। युगांडा के 1995 के संविधान में नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत स्त्री–पुरुष समानता, उपेक्षित वर्गों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व, बुजुर्गों का कल्याण और देखरेख, विकास का अधिकार तथा शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, साफ व सुरक्षित पेय जल, अच्छा आवास, पर्याप्त वस्त्र, खाद्य सुरक्षा और पेंशन व रिटायरमेंट संबंधी फायदे उपलब्ध कराने जैसी बातें शामिल की गयी हैं। घाना के संविधान में राज्य से अपेक्षा की गयी है कि वह भ्रष्ट तौर–तरीकों और सत्ता के दुरुपयोग को रोकेगा, पर्यावरण का संरक्षण करेगा, लोगों को भागीदारी का अधिकार देगा, नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा की व्यवस्था करेगा, रोज़गार में लगे सभी लोगों की सुरक्षा और कल्याण की व्यवस्था करेगा, देश के सभी भागों में और सभी स्तरों पर मुक्त, अनिवार्य और सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध कराएगा और स्वदेशी संस्कृतियों को बढ़ावा देगा। हालांकि अधिकतर मामलों में नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करवाने के लिए अदालत में दावा नहीं किया जा सकता, लेकिन कुछ मामलों में वे जिस तरह से बाध्यकारी हैं उससे वे अनिवार्य कानूनी ज़िम्मेदारी बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, घाना के संविधान में कहा गया है कि नीति निर्देशक सिद्धान्त ''सभी नागरिकों, संसद, राष्ट्रपति, न्यायपालिका, राज्य परिषद, मंत्रिमंडल, राजनीतिक दलों और अन्य संस्थाओं व व्यक्तियों को संविधान या किसी अन्य कानून को लागू करने अथवा उसकी व्याख्या करने या कोई भी नीतिगत निर्णय लेने अथवा उसे लागू करने तथा न्यायोचित व स्वतंत्र समाज के निर्माण में दिशा निर्देश देने का कार्य करेंगे।''[277] राष्ट्रपति को साल में कम से कम एक बार संसद को उन कदमों के बारे में बताना होता है जो दिशानिर्देशों, खास तौर पर मूल मानवीय अधिकारों, सुदृढ़ अर्थव्यवस्था, रोज़गार के अधिकार, अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं के अधिकार और शिक्षा के अधिकार पर अमल के लिए उठाए गए हैं।''[278]

cyan black

भेदभाव के शिकार न बनने का अधिकार सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को लागू करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी अधिकार के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय ने ऐलान किया है कि सरकार की ओर से स्वास्थ्य की देखभाल के कार्यक्रम चलाने वाले अस्पताल अगर मूक–रोगियों को संकेत भाषा में बातचीत समझाने वालों की सेवाएं नहीं दे पाते हैं तो यह अधिकारों के घोषणापत्र की धारा 15 में बताऐ गए वस्तुतः समानता के अधिकार का उल्लंघन है।[279] अदालत ने कहा हैः यह सिद्धांत कि ''आम जनता के लिए प्रबंधित सेवाओं को उपेक्षित समूहों को समान रूप से उपलब्ध कराने की दिशा में ठोस कदम न उठाए जाना अपने आप में भेदभादपूर्ण बर्ताव है'', मानवाधिकार क्षेत्र में व्यापाक रूप से स्वीकार किया गया है।[280] अदालत ने अपना पिछला दृष्टिकोण भी दोहराया कि ''सरकार से यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जा सकती है कि वह धारा 15 के दायरे में आने वाले लोगों या समूहों को समानता का अधिकार दिलाने के लिए कदम उठाए''।[281]

इस तरह आई सी ई एस सी आर की तकनीकी और प्रक्रिया संबंधी कमियों और राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के मार्ग में आने वाली कमियों व प्रक्रियात्मक अड़चनों को दूर करने की व्यापक संभावनाएं हैं। उदाहरण के लिए, समानता की अवधारणा सकारात्मक कार्रवाई (affirmative action) का आधार है। उपेक्षित और वंचित लोगों की भलाई पर ध्यान केन्द्रित करने को अब कई अंतर्राष्ट्रीय समझौते (जैसे आई सी ई एस सी आर, सी ई डी ए डब्ल्यू और विकास का अधिकार) काफी महत्व देने लगे हैं। राष्ट्रमंडल के कई देशों के संविधानों में राज्य से इस बात की अपेक्षा की गयी है या अनुरोध किया गया है कि वे सकारात्मक कार्य नीतियां बनाएं। हालांकि आम तौर पर इन पर अमल अनिवार्य नहीं होता, फिर भी ये भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा का आधार तो प्रदान करती ही हैं।

भारत और दक्षिण अफ्रीका दो उत्कृष्ट उदाहरण हैं जहां कुछ खास जातीय या सामाजिक समूहों के साथ अतीत में हुए अन्याय को नैतिक और राजनीतिक दृष्टि से पहचान कर इस स्थिति के सुधार के लिए राज्य का दायित्व निर्धारित किया गया है। फीजी के हाल के संविधान[282] में सरकार को यह नैतिक दायित्व सौंपा गया है कि वह अधिक गरीब समुदायों और समूहों के लिए प्राथमिकता वाली नीतियों के तहत योजनाएं और कार्यक्रम बनाए। राष्ट्रमंडल के कई अन्य देशों, जैसे मलेशिया, कनाडा और आस्ट्रेलिया ने भी प्राथमिकताओं वाली नीतियां बनायी हैं।

प्रत्यक्ष कार्यान्वयन

नीतिनिर्देशक सिद्धांतों को लागू करने में भारत में आई समस्याओं को देखकर तथा इस अहसास के कारण कि सभी प्रकार के अधिकार आपस में एक दूसरे पर निर्भर हैं और उनको अलग नहीं किया जा सकता तथा सभी अधिकारों के कुछ पहलुओं को कानूनी तौर पर लागू किया जा सकता है, कुछ देशों ने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को कानूनी तौर पर प्रत्यक्ष रूप से लागू करने योग्य बना दिया है। युगांडा ने सन् 1995 के अपने संविधान में सब नागरिकों के शिक्षा, संस्कृति, काम करने के लिए सुरक्षित और स्वास्थ्य के अनुकूल माहौल, बच्चों के सामाजिक–आर्थिक अधिकारों तथा अल्पसंख्यकों व विकलांगों के अधिकारों को कानूनी तौर पर लागू करने योग्य बनाया। फीजी के 1997 के संविधान में मानवाधिकारों संबंधी प्रावधानों की व्याख्या करते समय अदालतों को मानवाधिकारों के बारे में वर्तमान विवेक और आचरण को ध्यान में रखने के लिए प्रेरित किया गया है। कुल मिलाकर जहां तक कानूनी तौर पर लागू करने और आर्थिक, समाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से जोड़ने का सवाल है, सबसे दूरगामी प्रावधान दक्षिण अफ्रीका के संविधान में पाये जाते हैं।

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में सम्मिलित आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को तीन मुख्य प्रकारों में बांटा जा सकता है।[283] पहली श्रेणी में बच्चों के सामाजिक, आर्थिक अधिकार; प्रत्येक व्यक्ति का बुनियादी शिक्षा का अधिकार (जिसमें प्रौढ़ों के लिए बुनियादी शिक्षा भी शामिल है); और बंदी एवं कैदियों के सामाजिक–आर्थिक अधिकार शामिल हैं। इन अधिकारों के बारे में राज्य को पूरा दायित्व सौंपा गया है। इनको निरंतर मूर्तिमान करते चले जाने के रास्ते (progressive realisation) में संसाधनों की कमी को बहाना नहीं बनाया जा सकता।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

दूसरी श्रेणी के अधिकारों में प्रत्येक व्यक्ति के लिए समुचित आवास, स्वास्थ्य सुविधा, आहार, जल और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी है। यहां राज्य के दायित्व के साथ 'उपलब्ध संसाधन' और 'निरंतर मूर्तिमान करते जाना' जैसे शब्द जुड़े हुए हैं।

तीसरी श्रेणी के अधिकरों के अंतर्गत निजी और सार्वजनिक अधिकारियों को कुछ खास तरह के आचरणों से रोका गया है। उदाहरण के लिए, समस्त 'प्रासंगिक परिस्थितियों' को ध्यान में रख कर अदालत द्वारा दिये गये आदेश के बिना लोगों को उनके घरों से बेदखल नहीं किया जा सकता और न किसी ज़रूरतमंद को आपात्कालीन चिकित्सा उपलब्ध कराने से वंचित किया जा सकता है। श्रम, पर्यावरण, भूमि और सांस्कृतिक अधिकारों का भी संरक्षण किया गया है। राज्य को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह इन अधिकारों व अन्य अधिकारों का सम्मान करेगा, उनका संरक्षण करेगा तथा उन्हें बढ़ावा देकर पूरा करेगा। दक्षिण अफ्रीका के न्यायालय, खास तौर पर संवैधानिक न्यायालय ने इन अधिकारों की विधिशास्त्रीय व्याख्या और इन्हें लागू करने के तौर–तरीकों के विकास में रचनात्मक भूमिका निभाई है।

अंत में घरेलू कानूनों से लेकर अंतर्राष्ट्रीय समझौतों जैसे सी ई डी ए डब्ल्यू, सी आर सी व अन्य विशिष्ट साधनों के जरिए अधिकारों को लागू करने में राष्ट्रमंडल के कई देशों ने इन सिद्धांतों को अपनाया है। कई सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को अपने अंदर समाहित करने वाले इन अधिकारों को अन्य अर्ध–न्यायिक या प्रशासनिक संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय अदालतों में कानूनी तौर पर लागू करने योग्य बनाया गया है।

cyan black

गरीबी के विरुद्ध संघर्षः सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (Millenium Development Goals- एमडीजी)

सहस्राब्दि के प्रारम्भ में संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों ने अन्य बातों के साथ–साथ लोकतंत्र व मानवाधिकारों को मज़बूत बनाने और गरीबी के उन्मूलन के लिए और अधिक परिश्रम करने हेतु स्वयं को कटिबद्ध किया। सितम्बर 2000 के शिखर सम्मेलन में स्वीकृत सहस्राब्दि घोषणा पत्र (Millennium Declaration) में विश्व के सौ करोड़ लोगों से भी कहीं अधिक लोगों को प्रभावित करने वाली गरीबी को मिटाने के लिए सदस्य देशों द्वारा अपनाई वचनबद्धताओं की रूपरेखा दी गई है। मानव की खुशहाली व गरीबी को कम करने सम्बंधी इन 8 ध्येयों में 18 लक्ष्य शामिल है। एमडीजी स्वयं विभिन्न संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों जैसे कोपेनहेगन सामाजिक विकास सम्मेलन, संपोषणीय विकास हेतु रॉयो शिखर सम्मेलन (Rio Summit) और जोहानेस्बर्ग में हुए सहवर्ती सम्मेलनों द्वारा आयोजित अनेक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से पैदा हुआ है। इन सम्मेलनों में सरकारों, नागरिक समाज के संगठनों, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त संस्थानों तथा निजी क्षेत्र के संस्थानों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। गरीब देशों को उनके विकास की गति के लिए अकेले ही ज़िम्मेदार मानने के लिए एमडीजी की आलोचना भी हुई, परन्तु इसमें से एक उद्देश्य वैश्विक साझेदारी की परिकल्पना करता है। इसके अनुसार अमीर देश व दाता संस्थाएँ विकासशील देशों को और अधिक सहायता देंगे और एक सहयोगात्मक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय वातावरण भी तैयार करेंगे। 48 प्रगति संकेतकों के माध्यम से लक्ष्यों की वैश्विक व समयबद्ध प्रकृति और प्रगति को निर्धारित करने की सम्भावना के कारण एमडीजी की रणनीति गरीबी के विरुद्ध लड़ाई में विश्वसनीय व स्वीकरणीय लगती है।[284]

ध्येय 1 गरीबी व भूख का उन्मूलन

लक्ष्य 1 *प्रतिदिन एक अमेरीकी डॉलर से भी कम आय में जीवन–यापन करने वाले लोगों का अनुपात वर्ष 2015 तक आधा करना।*

प्रगति संकेतक

1 प्रतिदिन एक अमेरीकी डॉलर से भी कम आय पर गुज़ारा कर रहे लोगों के अनुपात में कमी।

2 गरीब लोगों की वास्तविक संख्या में कमी तथा सर्वाधिक गरीब लोगों की संख्या में कमी (अर्थात् गरीबी के विस्तार व गहराई को दर्शाने वाले गरीबी–भेद अनुपात में कमी)।

3 राष्ट्रीय खपत स्तर पर बहुत गरीब लोगों, जो जनसंख्या का 20 प्रतिशत हैं, की हिस्सेदारी में वृद्धि।

लक्ष्य 2 *भूख से पीडित लोगों के अनुपात को आधा करना।*

प्रगति संकेतक

4 5 वर्ष की आयु से कम न्यूनभार वाले बच्चों की संख्या में कमी।

5 आहार का न्यूनतम स्तर प्राप्त नहीं करने वाले लोगों के अनुपात में कमी।

ध्येय 2 विश्व में सबको प्राथमिक शिक्षा दिलाना

लक्ष्य 3 *यह सुनिश्चित करना कि सभी जगह लड़के व लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षा का कोर्स पूरा करें।*

प्रगति संकेतक

6 प्राथमिक शिक्षा में लड़के व लड़कियों की भर्ती के शुद्ध अनुपात में वृद्धि।

7 पहली से पाँचवें स्तर तक पहुँचने वाले विद्यार्थियों (लड़के व लड़कियों दोनों) की संख्या में वृद्धि (अर्थात् बीच में ही प्राथमिक स्कूल छोडने वालों में कमी)

8 युवा साक्षरता दर में वृद्धि (15–24 आयु वर्ग)

ध्येय 3 लिंग समानता हेतु प्रोत्साहन व महिलाओं का सशक्तीकरण

लक्ष्य 4 *वर्ष 2005 तक प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा में लिंग भेद को दूर करना तथा वर्ष 2015 तक इसे सभी शैक्षणिक स्तरों से खत्म करना।*

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

<u>प्रगति संकेतक</u>

9	प्राथमिक, माध्यामिक व उच्च शिक्षा स्तर पर लड़कों के मुकाबले लडकियों के अनुपात में सुधार।
10	युवाओं के अनुपात में साक्षर युवतियों की संख्या में सुधार।
11	गैर–कृषि क्षेत्र में मज़दूरी करने वाली महिलाओं की तादाद में वृद्धि।
12	राष्ट्रीय स्तर पर चुनी गयी महिला सांसदों की संख्या में वृद्धि।

ध्येय 4 बाल मृत्यु–दर में कमी

लक्ष्य 5 *वर्ष 2015 तक 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु–दर में दो–तिहाई कमी करना।*

<u>प्रगति संकेतक</u>

13	5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्युदर में कमी।
14	नवजात शिशुओं की मृत्युदर में कमी।
15	खसरे के टीके लगवाने वाले एक वर्ष के बच्चों के अनुपात में वृद्धि।

ध्येय 5 मातृ–स्वास्थ्य में सुधार

लक्ष्य 6 *वर्ष 2015 तक माताओं की मृत्युदर के अनुपात में तीन चौथाई कमी करना।*

<u>प्रगति संकेतक</u>

16	माताओं के मृत्युदर अनुपात में कमी।
17	निपुण पेशेवर स्वास्थ्यकर्मियों की देखभाल में हुए बच्चों के जन्म के अनुपात में वृद्धि।

ध्येय 6 एच आई वी/एड्स, मलेरिया व अन्य बीमारियों से जंग

लक्ष्य 7 *एच आई वी/एड्स के फैलाव को रोकना तथा वर्ष 2015 तक उसके प्रसार को कम करने की प्रक्रिया का प्रारंभ।*

<u>प्रगति संकेतक</u>

18	15–24 वर्ष की गर्भवती महिलाओं में एचआईवी की मौजूदगी में कमी।
19	गर्भ–निरोध की दर में वृद्धि।
20	एच आई वी/एड्स के कारण अनाथ होने वाले बच्चों की संख्या में कमी।

लक्ष्य 8 *मलेरिया व अन्य प्रमुख बीमारियों के फैलाव को रोकना तथा वर्ष 2015 तक उनके प्रसार को कम करने की प्रक्रिया का प्रारंभ।*

<u>प्रगति संकेतक</u>

21	मलेरिया के प्रसार व इससे सम्बंधित मृत्यु–दर में कमी।
22	मलेरिया के खतरे वाले क्षेत्रों में बसे उन लोगों के अनुपात में वृद्धि, जो इसके प्रभावी रोकथाम व उपचार के उपाय अपनाते हैं।
23	क्षयरोग के प्रसार व इससे संबंधित मृत्यु–दर में कमी।
24	न्यूनकालीन प्रत्यक्ष अवलोकित उपचार (Directly ObservedTreatment Short Course - डॉट्स) के तहत जांचे गए व उपचारित मामलों की संख्या में वृद्धि।

ध्येय 7 पर्यावरणीय संपोषणीयता सुनिश्चित करना

लक्ष्य 9 *देश की नीतियों व कार्यक्रमों में संपोषणीय विकास के सिद्धान्त को सम्मिलित करना तथा प्राकृतिक संसाधनों की हानि को सुधारना।*

<u>प्रगति संकेतक</u>

25 वनाच्छादित भू–भाग में वृद्धि।

26 जैविक–विविधता बनाये रखने के लिए सुरक्षित भू–भाग में वृद्धि।

27 देश की सकल घरेलू उत्पाद के प्रति एक अमेरीकी डॉलर के लिए ऊर्जा उपभोग में कमी।

28 कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में प्रति व्यक्ति स्तर पर कमी।

29 घनीभूत ईंधन (जैसे लकड़ी व काठकोयला) का उपयोग करने वाली जनसंख्या में कमी।

<u>लक्ष्य 10</u> वर्ष 2015 तक उन लोगों के अनुपात को आधा करना जिन्हें सुरक्षित पेय जल सुलभ नहीं है।

<u>प्रगति संकेतक</u>

30 सुरक्षित पेय जल प्राप्त करने वाले लोगों के अनुपात में वृद्धि।

<u>लक्ष्य 11</u> वर्ष 2020 तक गंदी बस्तियों में रहने वाले कम से कम 10 करोड़ लोगों के जीवन में पर्याप्त सुधार करना

<u>प्रगति संकेतक</u>

31 बेहतर सफाई व्यवस्था की सुविधा प्राप्त लोगों के अनुपात में वृद्धि।

32 निश्चित अवधि तक (मालिकाना हक से या किराये पर) मकान पाने वालों के अनुपात में वृद्धि।

<u>ध्येय 8</u> विकास हेतु वैश्विक साझेदारी को बढावा देना

<u>लक्ष्य 12</u> *एक मुक्त, नियम–आधारित, पूर्वानुमेय तथा भेदभावरहित व्यापार एवं वित्तीय प्रणाली का विकास। इसमें राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर सुशासन, विकास और गरीबी को कम करने की प्रतिबद्धता शामिल हैं।*

<u>लक्ष्य 13</u> *न्यूनतम विकसित देशों (एलडीसी) की खास आवश्यकताओं पर दृष्टि केंद्रित करना। इसमें शामिल हैं : एलडीसी के निर्यातों का सीमा–शुल्क रहित व कोटा–मुक्त व्यापार– एचआईपीसी की ऋण सहायता के कार्यक्रम को बढ़ाना व आधिकारिक द्विपक्षीय ऋण (official bilateral debt) को रद्द करना– तथा गरीबी को कम करने के लिए कटिबद्ध देशों के लिए अधिक उदारता से आधिकारिक विकास सहायता देना।*

<u>लक्ष्य 14</u> *स्थल–रुद्ध देशों व विकासशील छोटे द्वीप–राज्यों की खास आवश्यकताओं को संबोधित करना (विकासशील द्वीप–राज्यों की संपोषणीय प्रगति के लिए कार्य योजना, महासभा के विशेष इक्कीसवें अधिवेशन के निष्कर्षों के माध्यम से)*

<u>लक्ष्य 15</u> *राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय उपायों के माध्यम से विकासशील देशों की ऋण समस्याओं से भली–भांति निपटना ताकि अंततः ऋण को दीर्घकाल तक धारणीय बनाया जा सके।*

<u>प्रगति संकेतक</u> आधिकारिक विकास सहायता (ओडीए)

33 आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (Organisation for Economic Cooperation and Development- ओईसीडी) की विकास सहायता समिति (Development Assistance Committee- डीएसी) के सदस्य देशों की सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) के प्रतिशत के रूप में शुद्ध ओडीए में वृद्धि।

34 बुनियादी सामाजिक सेवाओं, जैसे पौष्टिकता, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, स्वच्छ जल व सफाई को दिए जा रहे कुल द्विपक्षीय और क्षेत्रवार ओडीए के अनुपात में वृद्धि।

cyan black

35	बिना शर्त वाले द्विपक्षीय ओडीए के अनुपात में वृद्धि।
36	स्थल–रूद्ध देशों को अपने जीएनआई के अनुपात के रूप में प्राप्त ओडीए में वृद्धि।
37	विकासशील छोटे द्वीप–राज्यों को अपने जीएनआई के अनुपात के रूप में प्राप्त ओडीए में वृद्धि।
प्रगति संकेतक	बाज़ार का विस्तार
38	विकासशील देशों से विकसित देशों को निर्यात होने वाले सामान (हथियारों के अतिरिक्त) के अनुपात में वृद्धि तथा न्यूनतम विकसित देशों से आये ज़्यादा से ज़्यादा सामान को शुल्क–मुक्त करना।
39	विकसित देशों को भेजे जाने वाले विकासशील देशों के कृषिजन्य सामान और कपड़ों पर लागू औसत सीमा–शुल्क में कमी।
40	ओईसीडी देशों के अपने सकल घरेलु उत्पाद के रूप में दिए जाने वाली कृषि–सम्बंधी सहायता के आकलन में कमी।
41	विकासशील व न्यूनतम विकसित देशों की व्यापार क्षमता को बढ़ाने के लिए ओडीए के अनुपात में वृद्धि।
प्रगति संकेतक	ऋण की धारणीयता
42	अपने एचआईपीसी निर्णय बिंदुओं पर पहुँचने वाले देशों की संख्या में वृद्धि तथा अपने एचआईपीसी समापन बिंदुओं तक पहुँचने वाले देशों की संख्या में वृद्धि।
43	एचआईपीसी पहलकदमी के तहत वचनबद्ध ऋण–राहत सहयोग की मात्रा में (अमेरीकी डॉलर में) वृद्धि।
44	सामान एवं सेवाओं के निर्यात के हिसाब से ऋण–अदायगी की प्रतिशत मात्रा में कमी।
लक्ष्य 16	*विकासशील देशों की सहायता से युवाओं के लिए गरिमापूर्ण एवं बेहतर कार्य की प्राप्ति के लिए रणनीति बनाकर लागू करना*
प्रगति संकेतक	
45	युवाओं व युवतियों, दोनों में बेरोज़गारी की दरों में कमी।
लक्ष्य 17	*औषधीय कम्पनियों की सहायता से विकासशील देशों में अत्यावश्यक व सस्ती दवाईयों का प्रबंध करना*
प्रगति संकेतक	
46	टिकाऊ आधार पर अत्यावश्यक दवाईयाँ प्राप्त करने वालों के अनुपात में वृद्धि।
लक्ष्य 18	*निजी क्षेत्र के सहयोग से नई तकनीकों, विशेषकर सूचना व दूरसंचार, के लाभ लोगों को उपलब्ध कराना*
प्रगति संकेतक	
47	प्रति 100 व्यक्ति/टेलीफोन लाइनों व सेलफोन ग्राहकों की संख्या में वृद्धि।
48	प्रति 100 व्यक्ति/व्यक्तिगत कम्प्यूटर तथा इंटरनेट का उपयोग करने वालों में वृद्धि।

e:\chri-talisman report\final files\p1 to 8.pmd

अध्याय –5

गरीबों के लिए अधिकारों का महत्व

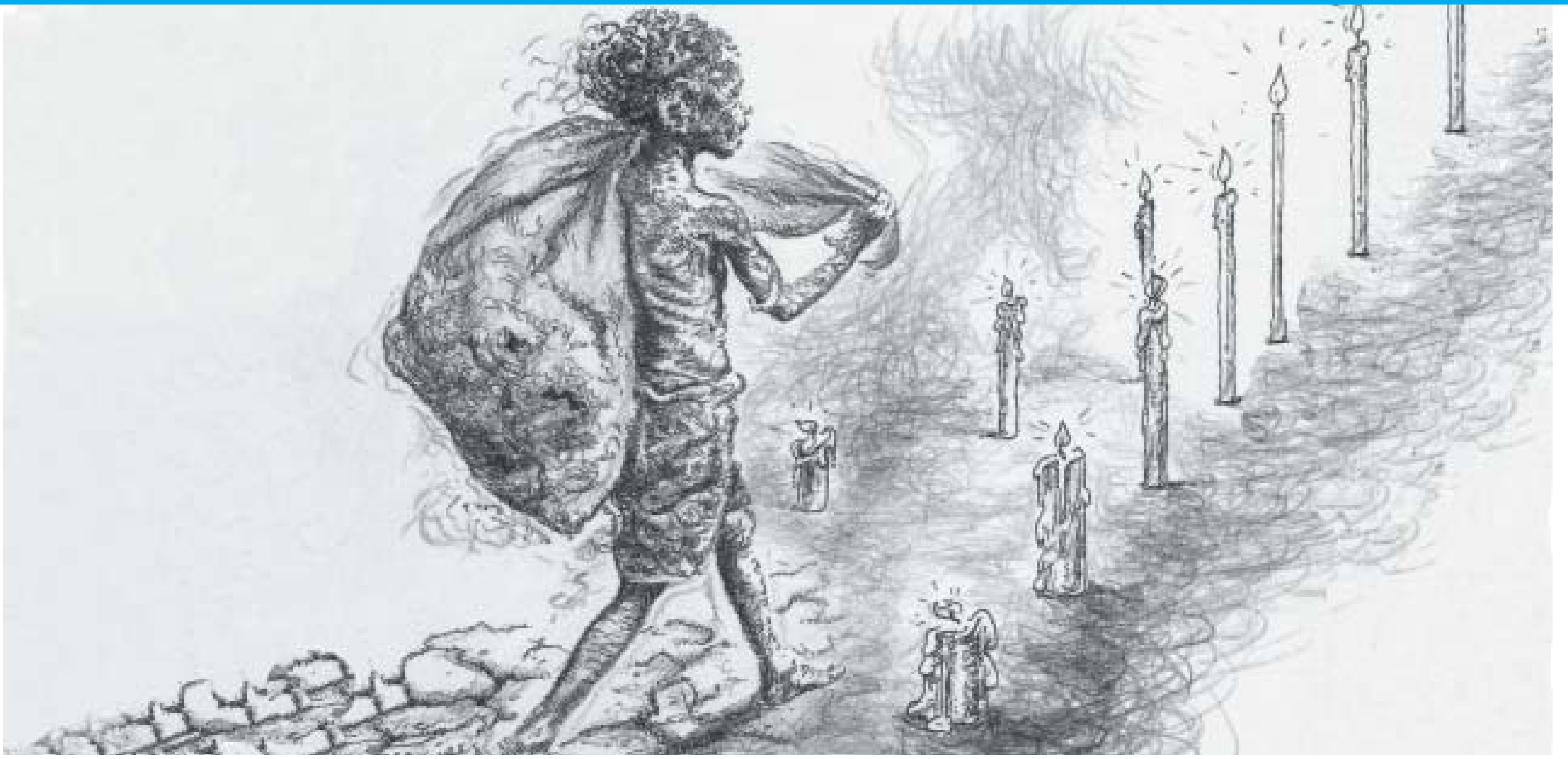

गरीबी का बने रहना इस बात का संकेत है कि इस व्यापक मानवाधिकार ढांचे के बावजूद, राष्ट्रमंडल के सभी लोगों को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार दिलाने के लिए अभी बहुत प्रयास करना है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के लिए अभी पर्याप्त मज़बूत ढांचा उपलब्ध नहीं है, और न ही सभी कर्त्तव्यधारकों ने पर्याप्त प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है। हालांकि अधिकारों की बौद्धिक और व्यावहारिक व्याख्या काफी व्यापक रूप में की जा चुकी है, किन्तु उनके विकास के लिए तालमेल की एक बेहतर प्रक्रिया की आवश्यकता है, जो अभी जारी है। शायद इससे भी महत्वपूर्ण यह होगा कि अधिकारों के प्रति एक ऐसी वचनबद्धता व्यक्त की जाये, जो आडम्बर से परे हो। अधिकतर देशों में समाज और सरकार के हर वर्ग को मानवाधिकारों के तंत्र, संस्थाओं और धारणाओं तथा एक ऐसे संकल्प से ओतप्रोत नहीं किया गया है कि मानवाधिकारों को सामान्य तौर हासिल किया जा सके और विशेष प्रयास न करने पड़े।

ढांचा मज़बूत बनाना

आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की प्रवर्तनीयता (लागू किए जाने की स्थिति) में सुधार के लिए उनकी भाषा और विषयवस्तु के विस्तार के बारे में महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

आर्थिक व सामाजिक अधिकारों की भाषा का स्पष्टीकरण

गरीबी के खिलाफ संघर्ष मे ंसामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को इस्तेमाल करने में एक बड़ी बाधा यह तथ्य है कि उन्हें जिस भाषा में निरूपित किया गया है वह ऐसी है कि उनसे सही दायित्वों का पता लगाना कठिन हो जाता है। क्योंकि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (आई. सी. ई. एस. सी. आर.) में सदस्य राष्ट्रों ने जो संकल्प व्यक्त किया है कि वे

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

वर्तमान प्रतिज्ञा में स्वीकार किए गए अधिकारों को पूरी तरह अमल में लाने का लक्ष्य निरन्तर हासिल करने के लिए सभी प्रकार के उचित तरीके अपनाते हुए अपने अधिकतम उपलब्ध संसाधनों से राष्ट्र के स्तर पर अकेले और अंतर्राष्ट्रीय सहायता एवं सहयोग, खासकर आर्थिक और तकनीकी सहयोग से, उपाय करेगें'' [285] को कुछ राष्ट्रीय अदालतों ने इस रूप में समझा है कि प्रसंविदा उनके देश में प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं है, बल्कि उसके लिए राष्ट्रीय कानून की आवश्यकता है। अतः यह ज़रूरी है कि इस दलील के विभिन्न पहलुओं को अलग–अलग समझा जाए।

इस प्रावधान को – कि इन अधिकारों को उपलब्ध कराने का प्रयास राज्य के संसाधनों पर निर्भर होगा – कई विशेषज्ञ तथा सरकारों ने अधिकारों के प्रति राज्य के दायित्व को संसाधनों की सीमा से बांधे रखने के लिए इस्तेमाल किया है। यानि कोई भी राज्य किसी अधिकार को उपलब्ध कराने में संसाधनों की कमी या अभाव का कारण देकर अपने दायित्वों से छुटकारा पा सकता है। आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार समिति (CESCR) ने कहा है कि संसाधन हों या न हों, प्रत्येक अधिकार की एक न्यूनतम स्तर तक प्राप्ति सुनिश्चित करना प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का न्यूनतम बुनियादी दायित्व हैं। उदाहरण के लिए, अगर किसी राष्ट्र में बड़ी संख्या में लोग आवश्यक भोजनसामग्री, आवश्यक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, मूलभूत आश्रय और आवास, या सर्वाधिक बुनियादी रूप में शिक्षा से वंचित हैं, तो वह राष्ट्र प्रथम दृष्टि में समझौते के तहत दायित्वों का निर्वाह करने में विफल माना जायेगा।[286] प्रतिष्ठित न्यायविदों के एक समूह की राय है कि आर्थिक विकास का स्तर हो या न हो, यह सुनिश्चित करना राष्ट्र का दायित्व है कि सभी के न्यूनतम 'भरण–पोषण अधिकारों (subsistence rights) का सम्मान हो और यह भी कि उपलब्ध संसाधनों में प्रसंविदा में वर्णित अधिकारों पर अमल को समुचित प्राथमिकता दी जाये।[287] अगर किसी राष्ट्र में लोग भूखे मर रहे हैं और वह हथियारों पर भारी मात्रा में धन खर्च कर रहा है, तो उसे दायित्व पूरा करने में विफल कहा जायेगा।

संघर्ष या सावधानी

दुनिया के सैन्य खर्च में 1998 के बाद से बढ़ोतरी हो रही है और सबसे तीव्र वृद्धि अफ्रीका और दक्षिण एशिया में दर्ज हुई है। इन दोनों महाद्वीपों में न केवल राष्ट्रमंडल के अधिकांश सदस्य देश स्थित हैं, बल्कि संगठन के सबसे गरीब देश भी हैं। नाइजीरिया, जहां 90 प्रतिशत आबादी की पहुंच अनिवार्य दवाओं तक नही है, ने स्वास्थ्य पर सार्वजनिक खर्च 1998 में घटाकर सकल घरेलू उत्पाद का 0.8 प्रतिशत कर दिया, जो 1990 में 1.0 प्रतिशत था। इसके विपरीत वर्ष 2000 में नाइजीरिया का सैन्य खर्च सकल घरेलू उत्पाद का 1.4 प्रतिशत था, जो उससे पिछले वर्ष के मुकाबले लगभग दुगना था। '

भारत, जहां केवल 31 प्रतिशत लोगों को उपयुक्त सफाई सुविधाएं और 35 प्रतिशत लोगों को आवश्यक दवाएं उपलब्ध हैं, का सैन्य खर्च 1999 में बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद के 2.4 प्रतिशत (464 अरब रुपये) हो गया, जो 1998 में 2.2 प्रतिशत (387 अरब रुपये) था।[288]

अक्सर यह माना जाता है कि आर्थिक विकास और संसाधनों के अभाव में आर्थिक और सामजिक अधिकारों का कोई प्रावधान नहीं हो सकता। अनेक राष्ट्र जो संसाधनों को भली–भांति काम में लाने के इच्छुक नहीं होते, इस धारणा की आड़ लेते हैं। हालांकि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि आर्थिक संसाधनों में बढ़ोतरी से इन अधिकारों को बेहतर ढंग से उपलब्ध कराया जा सकता है, किन्तु संसाधनों और अधिकारों के बीच कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। ब्रिटेन, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे अमीर राष्ट्रमंडल देशों में भी बड़ी संख्या में गरीबी से ग्रस्त बस्तियां हैं। दूसरी तरफ तुलनात्मक दृष्टि से निर्धन माने जाने वाले श्रीलंका और फिजी जैसे देशों और भारत में केरल जैसे राज्य ने आर्थिक और सामाजिक सेवाएं उपलब्ध कराने में सराहनीय सफलता हासिल की है। हमें यह याद रखना चाहिए कि आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का संबंध भिक्षा या अनुग्रहपूर्ण दान से नहीं है, बल्कि उन नीतियों और संस्थानों से है जो लोगों को उनके स्वयं के प्रयासों से जीविका अर्जित करने में सक्षम बना सकें। अतः हम कह सकते हैं कि उपलब्ध संसाधनों के अभाव के आधार पर अधिकार प्रदान न करने की दलील न्यायोचित नहीं मानी जा सकती।

प्रायः यह दलील दी जाती है कि आई सी ई एस सी आर में अधिकारों को क्रमिक ढंग से लागू करने का प्रावधान इस बात का साक्ष्य है कि उनका स्वरूप बाध्यकारी नहीं हैं, किन्तु लिम्बर्ग में हुई न्यायविदों की बैठक में स्पष्ट किया गया कि यह प्रावधान किसी राष्ट्र से उम्मीद करता है कि वह अधिकारों की प्राप्ति की दिशा में तेज़ी से बढ़े, और यह भी कि यह प्रावधान किसी राष्ट्र को इस बात की अनुमति नहीं देता कि वह इन अधिकारों को पूर्ण रूप में लागू करने के प्रयास अनिश्चित काल तक स्थगित करता रहे। अधिकार उपलब्ध कराने के क्रमिक प्रयास का दायित्व संसाधनो में वृद्धि पर निर्भर नहीं है, बल्कि, इस आवश्यकता को उजागर करता है कि जो उपलब्ध है, उसका

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

उपयोग कारगर ढंग से किया जाये।[289] यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कुछ अधिकार निरन्तर प्रयास या ''संसाधनों की उपलब्धता'' पर आधारित नहीं है, बल्कि उन्हें तत्काल लागू किया जाना है, जैसे भेदभाव से मुक्ति का अधिकार, बाल अधिकार समझौते (सी आर सी) में वर्णित बच्चों के अधिकार और राष्ट्रों के संविधान में वर्णित कुछ सामाजिक तथा आर्थिक अधिकार।

विषयवस्तु का विस्तार

इस वैचारिक विरोध से ऊपर उठने के लिए आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की विषयवस्तु को ठोस बनाने की दिशा में काफी कुछ करना होगा ताकि अधिकारों को मूर्त रूप दिया जा सके और इस तरह उन्हें आसानी से लागू किया जा सके। संकेतकों से इस बात का मूल्यांकन किया जाता है कि अधिकार किस हद तक लागू किए जा रहे हैं और उनका कितना लाभ उठाया जा रहा है। संकेतक अधिकारों को साकार बना सकते हैं और उनकी परिभाषा को स्पष्ट बना सकते हैं। उदाहरण के लिए वे स्पष्ट रूप से निर्धारित कर सकते हैं कि साक्षरता, पोषण या सुरक्षा का स्वीकार्य स्तर क्या हो। संकेतकों या मापदंडों का इस्तेमाल मानवाधिकारों में परम्परागत रूप में नहीं किया गया है – इसकी आंशिक वजह यह है कि मानवाधिकारों का अध्ययन अधिकतर वकीलों के अधिकार क्षेत्र में रहा है, जो अधिकारों की प्राप्ति का सांख्यिकीय मूल्यांकन करने की बजाय मानदंड विकसित करने या मामले से सम्बद्ध कानून पर ध्यान देने के अधिक अभ्यस्त होते हैं, और दूसरी वजह यह है कि अभी तक उन नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर बल दिया गया है, जिनका सांख्यिकीय मूल्यांकन आसानी से नहीं किया जा सकता। मानवाधिकारों और विकास नीतियों के बीच हो रहे संवाद ने संकेतकों के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया है और आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किए जाने से उनका महत्व उजागर हुआ है। विकास के प्रति अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण में संकेतक ठोस पैमाना प्रदान करते हैं, जबकि मानवाधिकारों के सिद्धान्त नीतियां बनाने, कार्यान्वयन पद्धतियों के मूल्यांकन और अधिकारों के प्रभाव संबंधी नतीजों का मूल्यांकन करने के साधन उपलब्ध कराने का ढांचा प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दो में संकेतक ठोस आंकड़े प्रदान करते हैं। उनके आधार पर पता चलता है कि अधिकार किस हद तक हासिल किए गए हैं और निष्पक्षता का किस हद तक पालन किया जा रहा है।

विभिन्न अधिकारों को उपलब्ध कराने के लिए किस तरह से संसाधनों का आवंटन होना चाहिए–यह तय करने में आंकड़ों की मदद ली जा सकती है। इनसे इस बात का साक्ष्य उपलब्ध होता है कि किसी राष्ट्र की आबादी में सर्वाधिक उपेक्षित समूह कौन से हैं, साथ ही रचनात्मक कार्य नीतियां अपनाने का दबाव पड़ता है। मानवाधिकार सिद्धान्तों पर आधारित लक्ष्य निर्धारित करने से नीति निर्माताओं को ऐसा विश्वसनीय ढांचा तैयार करने में मदद मिलती है, जिसके आधार पर अधिकार हासिल किए जा सकें। और किसी खास नीति की प्रभावकारिता का प्रामाणिक मूल्यांकन किया जा सके। इस तरह, वे मानवाधिकारों को हासिल करने के समयबद्ध कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करते हैं।

सुचारू कार्यान्वयन के लिए भी संकेतक उपयोगी है। ठोस आंकड़े उपलब्ध होने से किसी नीति की खामियों और उसके कार्यान्वयन के कमज़ोर पहलुओं का पता चल जाता है, या किसी अक्षम नीति के अनिश्चित काल तक जारी रहने पर रोक लगाने में मदद मिलती है।

गरीबी हटाने का लक्ष्य

जहां गरीबी कम करने के लक्ष्य निर्धारित कर भी लिए गए हैं, वे अधिकतर अवास्तविक हैं और कार्ययोजनाओं, बजट या संस्थागत व्यवहार पर आधारित नहीं है। ये तत्व उनकी सफलता या असफलता की कुन्जी हैं। सन् 1995 में कोपनहेगन में 'विश्व सामाजिक सम्मेलन' (World Social Summit) के दौरान सदस्य राष्ट्रों ने गरीबी कम करने के बारे में जो संकल्प व्यक्त किये थे उनकी पांच वर्ष की अवधि की समीक्षा जून 2000 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र में की गई। राष्ट्रों ने गरीबी के प्रभाव का आकलन करने, उसे समाप्त अथवा कम करने और योजनाओं पर अमल शुरू करने के लक्ष्य तय किये थे। अधिकतर देशों ने गरीबी के प्रभाव का आकलन करने के प्रयास किये, ताकि छिपी हुई गरीबी को उजागर किया जा सके और उसे दूर करने का लक्ष्य सावधानी पूर्वक बनाया जा सके। गिने–चुने देशों ने गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए समयबद्ध कार्य योजनाएं बनायीं, जबकि गिनती के देशों ने इन उपायों को अपनी सामान्य राष्ट्रीय विकास योजनाओं में शामिल किया।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

वास्तव में, उत्तरदायित्व के महत्वपूर्ण माध्यम उपलब्ध होते हैं, क्योंकि ठोस सबूतों से साफ पता चलता है कि नतीजों के जरिए किन उपलब्धियों की अपेक्षा की जा सकती है, किसी नीति को सफलतापूर्वक लागू किया जा सका या नहीं और लक्ष्य प्राप्त हुआ या नहीं। उत्तरदायित्व को गहन बनाने, अन्य समुदायों, राष्ट्रों या क्षेत्रों के साथ तुलना करने से स्पष्ट प्रगति–चिन्ह निर्धारित होते हैं, जिनके आधार पर मानवाधिकारों को लागू करने में किसी सरकार की सफलता का पता चलता है।

आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की रूपरेखा बेहतर ढंग से परिभाषित करने के लिए संकेतकों को अधिक परिष्कृत बनाने की आवश्यकता है। यू.एन.डी.पी. की रिपोर्ट में प्रभावकारी प्रगति चिन्हों की पहचान की गई है, जो विशिष्ट, समयबद्ध और भरोसेमंद हैं। ये चिन्ह ''अधिकतर न्यूनतम स्तर पर निर्धारित'' नहीं किये गये हैं और उनकी लक्षित तारीख को स्वतंत्र रूप से उनका पुनर्मूल्याकंन किया जा सकता है।[290]

भोजन अधिकारों का खुलासा

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों में नई जान डालने से सम्बद्ध इस बहस का विश्लेषण एक खास अधिकार, भोजन के अधिकार, के सन्दर्भ में करना उपयोगी होगा।

आहार का अभाव गरीबी का शायद सर्वाधिक तात्कालिक, स्वाभाविक और सहवर्ती लक्षण है। लेकिन, ''आहार आवश्यकताओं'' या ''भोजन के अधिकार'' की धारणा को विकसित रूप से समझने की आवश्यकता है, ताकि यह जाना जा सके कि इसे कैसे बेहतर ढंग से पूरा किया जा सकता है।

भोजन का अधिकार आखिर है क्या ? आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बद्ध अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 2 के अनुसार ''भूख से मुक्ति, प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है।'' भोजन के अभाव के रुप में भूख एक ऐसी स्थिति है जिसे अवश्य समाप्त कर देना चाहिए। लेकिन इस व्याख्या का अर्थ यह नहीं कि जिन्हें भूख की बेचैनी महसूस नहीं होती उन्हें अच्छा, खासा भोजन प्राप्त होता है। इसलिए आहार की *पर्याप्तता* पर बल दिया जाना चाहिए, जिसका विश्लेषण कई पहलुओं में किया गया है : *भोजन पौष्टिक, सुरक्षित और सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकार्य होना चाहिए*। भोजन में व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक तत्व होने चाहिए ताकि शारीरिक और मानसिक विकास सुनिश्चित किया जा सके। उदहारण के लिए, एक गर्भवती या शिशु को दूध पिलाने वाली माता की भोजन संबंधी जरूरतें, कठिन शारीरिक श्रम में लगे व्यक्ति से भिन्न होंगी। खाद्य सुरक्षा का अर्थ है कि भोजन में कोई नुकसानदायक तत्व नहीं होना चाहिए, जैसे विष या हानिकारक बैक्टीरिया। सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकार्यता का अर्थ है कि भोजन सांस्कृतिक मान्यताओं और वर्जनाओं की दृष्टि से अनुचित न हो।

कई अन्य अधिकारों के समान आहार तक पहुंच एक सतत आवश्यकता है और इसीलिए भोजन की पूर्णता की धारणा में 'खाद्य सुरक्षा' को भी शामिल किया गया है। आहार आसानी से उपलब्ध हो और अधिक खर्चीला न हो तथा खाद्य आपूर्ति स्थायी रूप से हो। आहार की कमी की आशंका या वितरण में संभावित रुकावटों से निबटने के लिए ज़रूरी है कि दीर्घावधि की तथा आपात योजना तैयार की जाये।

दायित्व क्या है? राज्य के तीन दायित्वों अधिकारों का सम्मान, संरक्षण और हस्तांतरण–को देखते हुए राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह खाद्य पर्याप्तता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करे। भोजन के अधिकार को पूर्ण रूप से साकार करने का अर्थ है, इस तथ्य को समझना कि भोजन के अभाव का अन्य अधिकारों की प्राप्ति पर नकारात्मक असर पड़ेगा। उदाहरण के लिए, भोजन का अभाव एक बच्चे को जोखिमपूर्ण और अनुचित कार्य करने के लिए विवश कर सकता है और उसे स्कूल से बाहर तथा निरक्षर रख सकता है। सम्मान के दायित्व के अन्तर्गत शामिल है खाद्य उत्पादन की ज़रूरतों और वास्तविकताओं को *पहचानना* और नतीजतन, *ऐसे कदम न उठाना,* जिससे खाद्य सुरक्षा में कमी आने की आशंका हो। उदाहरण के लिए, सस्ते बीज की उपलब्धता सुनिश्चित कराना और खाद्य फसलों के मामले में उन नीतियों को त्यागना जिनके कारण खाद्य फसलों की खेती के लिए भूमि की उपलब्धता कम होती है और निर्यात के लिए वैकल्पिक नकदी फसल की खेती को बढ़ावा मिलता है। संरक्षण के लिए *विकृतियों को रोकने* (उदाहरण के लिए, क्षेत्रों के बीच)

भोजन का अधिकार लागू किया गया

फिजी में एक कैदी को हिरासत से भाग जाने के लिए छह महीने की कैद की सजा दी गई। अतिरिक्त सजा के रूप में कारागार अधिकारियों ने कारागार अधिनियम के अनुसार उसका खाद्य राशन कम कर दिया। कैदी ने इसे अदालत में चुनौती दी। उसकी अपील की सुनवाई करते समय अदालत ने कहा कि कोई भी ऐसा बरताव या सजा जो व्यक्ति की अन्तर्निहित गरिमा का अतिक्रमण करती हो, संविधान के खिलाफ है। फिजी की अदालतें बिल ऑफ राइट्स की व्याख्या करते समय अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का हवाला दे सकती हैं। भोजन के अधिकार के बारे में आई सी ई एस सी आर के अनुच्छेद 11 का हवाला देते हुए अदालत ने व्यवस्था दी कि ''अपीलकर्ता के राशन में की गई कटौती लोगों को समुचित भोजन प्रदान करने की फिजी द्वीप–समूह गणराज्य की शपथ के खिलाफ है।'' अदालत ने आगे कहा कि हालांकि इस प्रतिज्ञापत्र के तहत दायित्व का निर्वाह करना राज्य के लिए अनिवार्य नहीं है, किन्तु कारागार आयुक्त द्वारा की गई कार्रवाई, जिसमें, भोजन को नियंत्रण का साधन बनाया गया, आई सी ई एस सी आर की भावना के खिलाफ है और इस तरह वह कैदी के भोजन के अधिकार का उल्लंघन है, जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती।

अन्ततः अदालत ने कहा : ''भोजन रोज़मर्रा के सम्पोषण के लिए बुनियादी आवश्यकता है। सजा के रूप में कैदी के राशन में कटौती की धारणा सिद्धान्त रूप में अपराध है ?, इसका असर न केवल कैदी के जीवित रहने की क्षमता पर पड़ता है, बल्कि इससे वह राशन के उस हिस्से से वंचित होता है, जो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। कटौती की मात्रा का कोई महत्व नहीं हैं। राज्य द्वारा इस तरह के तरीके अपनाना तात्विक दृष्टि से स्वीकार्य नहीं है और इसकी वजह यह है कि इसमें एक गैर–कानूनी व्यवहार के लिए दंड के रूप में जीवन की अनिवार्यता का इस्तेमाल किया गया है। इससे अपीलकर्ता जैसे व्यक्तियों को इस आधार पर कम करके आंका जाता है कि वे कैदी हैं और उन पर प्रतिबंध उचित है। इस धारणा का संक्षिप्त उत्तर यह है कि किसी को कैद में रखे जाने से उसका मानव का दर्जा कम नहीं हो जाता और उसकी जन्मजात गरिमा का अधिकार किसी प्रतिबंध या रूकावट से छीना नहीं जा सकता। ऐसे बरताव को न्यायोचित ठहराना उस युग में लौटना है, जब कैदियों को मानवोचित व्यवहार के योग्य नहीं माना जाता था। अदालत ससम्मान यह मत रखती है कि अधिनियम की धारा 83(1) (a) (iv) अपमानजनक व अमानवीय व्यवहार में फलित होती है और इसलिए संविधान की धारा 25(1) के विपरीत जाती है। अतः उसे रद्द माना जाए।''[291]

और संरक्षण कानून *विकसित करने* की आवश्यकता है, ताकि कमी के समय जमाख़ोर और मुनाफाख़ोर खाद्य सामग्री को दबाकर न बैठ जायें। अधिकार प्रदान करने के लिए ज़रूरी है कि खाद्य संस्कृति के पहलुओं को विकास में *शामिल किया जाये,* (जैसे बड़े पैमाने पर शाकाहारी आबादी को मांसाहार के बदले पौष्टिक तत्वों वाले विकल्पों को *उपलब्ध करवाना,* खाद्य नियंत्रण–तंत्र स्थापित करना और ऐसे ही अन्य उपाय शामिल हैं।

जैसा पहले बताया गया है, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उन्हें निरंतर क्रमिक ढंग से हासिल किया जाना चाहिए है। इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्य इन अधिकारों को अनिश्चितकाल तक स्थगित रख सकता है या इन्हें हासिल कराने में देरी कर सकता है। यह सही है कि एक राज्य से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह सभी जरूरतें एक साथ पूरी कर सके, किन्तु उसका यह दायित्व है कि तात्कालिक ज़रूरतों को पहले पूरा करे। इसका यह अर्थ भी है कि तात्कालिक ज़रूरतों को पूरा करने के बाद राज्य रुक नहीं सकता, दायित्वों को पूरा करने की प्रक्रिया अधिकारों के पुनर्मूल्यांकन और पुनर्निर्धारण की सतत प्रकिया का एक हिस्सा है। इतना ही नहीं प्रसंविदा के अनुच्छेद 11(2) के अनुसार राज्यों का यह दायित्व है कि वे उपलब्ध संसाधनों की सीमाओं में अधिकार हासिल करने की प्रक्रिया तत्काल प्रारम्भ करें।

राज्य अपने आहार संबंधी दायित्वों को कैसे यथावत् पूरा करता है, यह उन घटकों पर निर्भर करेगा, जो उसके अपने क्षेत्र में अधिकार प्राप्त करने में रूकावट डालते हैं। सी ई एस सी आर ने सिफारिश की है कि राष्ट्रों को भोजन के बारे में राष्ट्रीय नीतियां विकसित करनी चाहिए : इनके अंतर्गत संसाधनों और आवश्यकताओं की पहचान, लक्ष्य निर्धारित करना, प्रगतिचिन्ह तय करना और एक लोकतांत्रिक, पारदर्शी और उत्तरदायित्व पूर्ण प्रक्रिया[292] में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना शामिल हैं। नीति के अन्तर्गत भेदभाव से बचने की खास जरूरत का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए (खास कर इसे देखते हुए कि कई समुदायों में आहार के मामलों में महिलाओं को कमी का सामना करना पड़ता है)। खाद्यसामग्री की गंभीर कमी की स्थिति में कमज़ोर समूहों और व्यक्तियों की सुरक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए। विभिन्न निकायों ने राष्ट्रीय संकेतकों की प्रणाली का महत्व स्वीकार किया है, जिसमें पोषण ज़रूरतों और राष्ट्रीय परिस्थितियों

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

भूख के विरूद्ध जागरण : बांगलादेश में भोजन सुरक्षा

13 करोड आबादी वाले बांगलादेश में करीब 50% लोग व्यापक गरीबी के कारण पर्याप्त भोजन भी नहीं जुटा पाते। गरीब परिवारों में गर्भवती व दुग्ध–पान कराने वाली महिलाएँ और बहुत कम आयु वाले बच्चों को कुपोषण का सबसे अधिक खतरा होता है। पाँच वर्ष से कम आयु वाले बांगलादेशी बच्चों में से आधे से भी अधिक न्यूनभार हैं। पाँचवां जन्मदिन मनाने से पहले ही लगभग 20 प्रतिशत बच्चे मर जाते हैं – ऐसे दो–तिहाई मामलों में मौत का कारण कुपोषण है। गरीब परिवारों के कई बच्चे इसलिए स्कूल नहीं जा पाते क्योंकि उनके माता–पिता उनकी पुस्तकों आदि का खर्च नहीं उठा सकते या बच्चों को रोज़ीरोटी के लिए काम करना पडता हैं। गरीबी इन्हें स्कूल से दूर रखती है तथा कुपोषण के दुष्चक्र में फँसाये रखती है।

सरकार द्वारा 1991 में किए गए अध्ययन से पता चला कि लक्षित ग्राम राशन कार्यक्रम के तहत 6 करोड डॉलर की खाद्य सहायता का 70 प्रतिशत उन लोगों को प्राप्त हुआ जो गरीब नहीं थे। सरकार ने ज़रूरतमंद लोगों तक आहार पहुँचाने के वैकल्पिक मार्ग सुझाने के लिए एक कार्यदल का गठन किया। इस कार्यदल द्वारा तैयार किए गए 'शिक्षा के लिए आहार कार्यक्रम' (Food for Schooling Programme- एफ एफ एस) का लाभ 20 लाख गरीब परिवारों तक पहुँच रहा है।

एफएफएस कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक पात्र परिवार प्रति माह 15–20 किलो अनाज (मुख्यतः प्रोटीन–युक्त गेहूँ) प्राप्त करने का हकदार है तथा यह मात्रा परिवार में से स्कूल जा रहे बच्चों की संख्या पर आधारित है। अपना हिस्सा पाने के लिए विद्यार्थी की हाज़िरी कम से कम 85 प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए। विद्यालय प्रबंधन समिति प्रधानाचार्य से प्राप्त उनके हाज़िरी के रिकॉर्ड के आधार पर अपेक्षित मासिक अनाज की गणना करती है। यह सूची आगे स्थानीय आपूर्ति अधिकारी को सौंप दी जाती है जो अनाज के वितरण का पर्यवेक्षण भी करता है। प्रत्येक स्कूल का एक नामज़द अनाज डीलर होता है जो सरकार से एफएफएस कार्यक्रम के अंतर्गत मुफ्त अनाज का मासिक भंडार प्राप्त करता है। विद्यार्थियों के माता–पिता डीलर से अपना हिस्सा प्रतिमाह एक निश्चित तारीख को प्राप्त करते हैं। प्रायोगिक तौर पर 1993 में चलाया गया एफ एफ एस कार्यक्रम आज बांगलादेश के 21 लाख बच्चों व 27 प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों को लाभ पहुँचा रहा है। प्रतिदिन 0.10 डॉलर की लागत वाले इस कार्यक्रम से स्कूलों में बच्चों की हाज़िरी बढ़ी है तथा बीच में ही स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में कमी आई है।

वाशिंगटन स्थित अंतर्राष्ट्रीय आहार–नीति अनुसंधान संस्थान (International Food Policy Research Institute) द्वारा किया गया एक मूल्यांकन अध्ययन दर्शाता है कि गैर–एफ एफ एस स्कूलों के 2.5 प्रतिशत की तुलना में एफ एफ एस स्कूलों में विद्यार्थियों की भर्ती 35 प्रतिशत तक बढ़ी है। लड़कियों की संख्या में असाधारण रूप से 44 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। वर्ष 1999–2000 के दौरान एफ एफ एस स्कूलों के केवल 6 प्रतिशत विद्यार्थियों ने स्कूल बीच में छोड़ा जबकि गैर–एफ एफ एस स्कूलों में यह मात्रा 15 प्रतिशत थी। एफ एफ एस कार्यक्रम ने गरीब परिवारों को कुछ हद तक आहार सुरक्षा दी है, परंतु समाज के इस वर्ग के लिए पौष्टिकता के स्तर में सुधार के लिए काफी कुछ किया जाना बाकी है। योजना की लोकप्रियता से एफ एफ एस स्कूलों में विद्यार्थी–शिक्षक का अनुपात बढ़कर 76:1 हो गया है जबकि गैर–एफ एफ एस में यह 62:1 है। एफ एफ एस स्कूलों में दी जा रही शिक्षा के स्तर में सुधार की काफी गुंजाइश है।

आहार–सुरक्षा के साथ शिक्षा को जोड़ने के प्रयास से बांगलादेश ने एक तीर से दो समस्याओं का समाधान किया है।[293]

के बारे में आंकड़ों पर विचार किया जाता है। इसका इस्तेमाल ज़रूरतों और उपलब्धियों पर सतत निगरानी बनाए रखने की पद्धति के रूप में किया जा सकता है, ताकि राज्य यह जान सके कि वह सही दिशा में उपलब्धियां हासिल कर रहा है या नहीं।

चूंकि आहार एक अधिकार है, अतः यह राज्य के लिए अनिवार्य है कि वह इस बारे में एक नीति और वैधानिक ढांचा कायम करे, जो न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करे, बल्कि इस बात की भी पक्की व्यवस्था करे कि सामाजिक, भौगोलिक या अन्य विविध घटकों, जैसे महिलाओं की स्थिति, कृषि सब्सिडी या बौद्धिक सम्पदा कानून की वजह से इस अधिकार का अतिक्रमण न हो।

दायित्व किसका है? ''कहने का मतलब यह नहीं कि आहार के अधिकार की परिभाषा में राज्य की सक्रियता के बदले में यह मूल धारणा बने कि लोग अपने आहार की व्यवस्था के लिए खुद जिम्मेदार हैं। अन्य लोगों का दायित्व तभी शुरू होता है, जब किसी समाज में व्यक्ति, या परिवार अपनी जरूरत पूरी करने में विफल हो। अपने नागरिकों के प्रति प्राथमिक दायित्व राज्य का है। किन्तु एक अंतर्ग्रंथित विश्व

cyan black

में अन्य पक्षों की भी जिम्मेदारी है। राष्ट्रों को अन्य देशों और उनके नागरिकों के हितों का भी ध्यान रखना चाहिए : खाद्य सामग्री को युद्ध के दौरान एक हथियार या अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंध के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। राष्ट्रों को अपने व्यापार और सहायता नीतियों के अन्य स्थानों पर आहार के अधिकार पर संभावित प्रभाव के प्रति सजग रहना चाहिए। उन्हें जहां कहीं ज़रूरी हो खाद्य और अन्य सम्बद्ध सहायता उपलब्ध करानी चाहिए तथा विदेशी ऋणों से राहत दिलानेवाले कार्यों का एक लक्ष्य आहार के अधिकार की पूर्ति बनना चाहिए।

जल के अधिकार का खुलासा

हमारे ग्रह का 70% हिस्सा जलावृत्त है फिर भी विश्व के 100 करोड़ से भी अधिक लोगों को बुनियादी जल आपूर्ति नहीं मिलती। इनमें से अधिकांश विकासशील देशों में रहते हैं तथा असुरक्षित जल स्रोतों पर निर्भर होने के कारण बीमारियों से पीड़ित हैं। आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार समिति (सी.ई.एस.सी.आर.) ने जल को एक सामाजिक व सांस्कृतिक वस्तु माना है न कि केवल आर्थिक वस्तु। यह देखते हुए कि लोगों को आहार व स्वास्थ्य संबंधी अधिकारों की प्राप्ति कराने के लिए पानी की सुलभता अत्यावश्यक है, सदस्य राज्यों को कहा गया है कि कमज़ोर वर्गों, जैसे महिलाओं व बच्चों, छोटे किसानों और जनजाति के लोगों तक पर्याप्त मात्रा में जल पहुँचाने का प्रबंध करें।

प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 (गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार) तथा 12 (स्वास्थ्य का अधिकार), जिन पर जल का अधिकार आधारित है, की व्याख्या करते हुए सीईएससीआर ने लोगों की जल संबंधी मूल स्वतंत्रताओं व अधिकारों की पहचान की है।[294] राज्य के सहवर्ती वैधिक कर्त्तव्य होते हैं जिसमें शामिल हैं – प्रत्येक व्यक्ति के जल संबंधी अधिकार का सम्मान, उसकी सुरक्षा, पूर्ति व उसको बढ़ावा देना।

जल के अधिकार के घटक तथा राज्य के प्रमुख दायित्व–

- ■ व्यक्ति एवं घरेलू, दोनों स्तरों पर प्रत्येक व्यक्ति के उपयोग के लिए (जैसे पीना, खाना बनाना, सफाई, कपड़े धोना आदि) पर्याप्त एवं निरन्तर जल–आपूर्ति। जल–आपूर्ति की मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा–निर्देशों (20 लीटर प्रतिदिन, प्रति व्यक्ति[295]) के अनुरूप हो।
- ■ जल सुरक्षित होना चाहिए तथा उसकी गुणवत्ता, रंग, गंध व स्वाद स्वीकार्य होना चाहिए। वह सूक्ष्म–जीवों, रासायनिक तत्वों व विकिरण के खतरों से मुक्त होना चाहिए।
- ■ जनसंख्या के प्रत्येक वर्ग के लिए जल सुविधाएँ व सेवाएँ उसकी पहुँच में होनी चाहिए (डब्ल्यू.एच.ओ के दिशा–निर्देशों के अनुसार 'पहुँच का मूल स्तर' पाने के लिए, जल स्रोत एक किलोमीटर की दूरी में अवश्य होना चाहिए व पानी लाने–ले जाने के लिए आधे घंटे से अधिक समय नहीं लगना चाहिए [296]) जल सुविधा प्राप्त करते समय व्यक्ति को कोई शारीरिक खतरा नहीं होना चाहिए।
- ◆ राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वे इन अधिकारों की रक्षा करें। वे इनसे भाग नहीं सकते और न ही इन्हें रद्द कर सकते हैं। वे यह सुनिश्चित करें कि सभी को कम से कम न्यूनतम और ज़रूरी मात्रा में जल प्राप्त हो। वे यह सुनिश्चित करें कि पानी की आपूर्ति के घटक यथोचित दूरी पर बने हों ताकि पानी भरने में अत्याधिक समय नष्ट न हो। वे यह भी सुनिश्चित करें कि एक जल स्रोत से पानी लेने पर किसी भी व्यक्ति की सुरक्षा को खतरा नहीं होना चाहिए।
- ■ जल, जल सुविधा व सेवाएँ सभी के लिए सुलभ होनी चाहिए।
- ■ जनसंख्या के सीमांत वर्ग को कानूनन् व वास्तविकता में बिना भेदभाव के जल उपलब्ध कराना चाहिए।
- ◆ राज्यों का प्रमुख कर्त्तव्य है कि सभी प्राप्य जल सुविधाओं और सेवाओं का समान एवं न्यायसंगत वितरण करें। उन्हें कम लागत वाले लक्षित जल कार्यक्रमों को अपनाना व लागू करना चाहिए ताकि समाज के कमज़ोर व सीमांत समूहों की रक्षा हो सके। इन कर्त्तव्यों को किसी भी परिस्थिति में रद्द नहीं किया जा सकता है।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

- जल के अधिकार में शामिल है – मनमाने ढंग से जल आपूर्ति रोकने व इसके संप्रदूषण से मुक्त होने का अधिकार।
- राज्य का एक और प्रमुख दायित्व है जल संबंधी बीमारियों को रोकना, उनका उपचार व उनको नियंत्रित करना, और विशेष रूप से, पर्याप्त सफाई सुनिश्चित करना।
- प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह जल सम्बंधी मामलों की जानकारी प्राप्त एवं प्रदान करे।
- जल के अधिकार पाने के लिए ज़रूरी है कि वर्तमान जल आपूर्ति व्यवस्था तक लोगों की पहुँच बनी रहे। जल के अधिकार में यह बिंदु भी शामिल है।
- राज्यों का प्रमुख कर्त्तव्य एक ऐसी राष्ट्रीय जल रणनीति और कार्य–योजना बनाना व लागू करना है जो पूरी जनता को लाभ पहुँचाये। इस योजना की तैयारी और आवधिक समीक्षा पारदर्शिता और लोगों की साझी भागीदारी पर आधारित होनी चाहिए। उपयुक्त मापदंडों व संकेतकों का उपयोग करके जल के अधिकार की प्राप्ति या आपूर्ति की समीक्षा करनी चाहिए और वंचित समूहों का खास ध्यान रखा जाना चाहिए।

राज्य के अन्य कानूनी कर्त्तव्य हैं –

- जल के अधिकार की प्राप्ति में हस्तक्षेप न करना। इसमें शामिल हैं : कोई ऐसा काम न करना जो समान एवं पर्याप्त जल की प्राप्ति को नकारता या सीमित करता हो; गैरकानूनी रूप से जल आपूर्ति को रोकना और राज्य के स्वामित्व वाली फैक्ट्रियों से या हथियारों के उपयोग व प्रयोग के माध्यम से प्रदूषित जल की आपूर्ति को रोकना।
- उपयुक्त कानूनी या अन्य उपायों के माध्यम से जल के अधिकार की पूर्ति में बाधा डालने वाले तत्वों पर रोक लगाना। इन तत्वों में शामिल हैं – कोई भी व्यक्ति, समूह, निगम या अन्य निकाय, साथ ही साथ राज्य के प्राधिकरण के अधीन कार्यरत एजेंसियाँ।
- उन स्थानों पर जिनका नियंत्रण उपर्युक्त गैर–सरकारी तत्वों द्वारा किया जाता है, पर्याप्त, सुरक्षित व स्वीकार्य जल बिना किसी बाधा के समान रूप से लोगों तक पहुँचे– यह सुनिश्चित करना।
- जल आपूर्ति एवं सेवाओं के लिए कम लागत की उचित तकनीकों एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना जिससे सभी जल प्राप्त कर सकें। जल सेवाओं के प्रति भुगतान निष्पक्षता के आधार पर बनाया जाना चाहिए ताकि अलाभप्रद समूहों सहित सभी लोग इसे प्राप्त कर सके। गरीब परिवारों पर अमीरों की तुलना में जलसंबंधी खर्चों का असंगत भार नहीं डाला जाना चाहिए।
- विद्यमान जल स्रोतों के उचित उपयोग के लिए नीतियाँ व कार्यक्रम तैयार करना– जल के स्वच्छ प्रयोग, जल स्रोतों की रक्षा और लोगों को जल की बरबादी को न्यूनतम करने से संबंधित उचित शिक्षा देना।
- स्वास्थ्य के अधिकार के उल्लंघनों की सुनवाई के लिए एक प्रभावी प्रणाली तैयार करना जो व्यक्ति या समूह सभी की पहुँच में हो।

उल्लंघन

समिति ने राज्यों की खातिर इन स्तरों का अनुपालन करने के लिए मापदण्ड निर्धारित किए हैं। राज्यों को समिति के समक्ष अपनी आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी जिसमें उन्हें बताना होगा कि जल के अधिकार की पूर्ति के प्रति सभी आवश्यक व संभाव्य कदम उठाये गए हैं या नहीं। ऐसे कदमों को उठाने में नेकी और ईमानदारी की कमी को अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार जल के अधिकार का उल्लंघन माना जाएगा। कोई भी राज्य यह कहकर कि 'संसाधनों की कमी है' अपने कर्त्तव्यों से भाग नहीं सकता। यदि पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध नहीं हैं तो राज्य को यह दर्शाना होगा कि उपलब्ध संसाधनों के समुचित उपयोग के लिए हर संभव प्रयास किया जा रहा है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उक्त जल अधिकार में हस्तक्षेप के साथ–साथ ज़रूरी कानून न बनाना या लागू न करना, जल सेवाओं को प्रभावी ढंग से उपलब्ध न कराना, राष्ट्रीय जल नीति न अपनाना, प्रगति के पर्यवेक्षण के लिए मापदंडों व संकेतकों को न अपनाना, यह सब इस अधिकार के उल्लंघन माने जाएंगे। इन उल्लंघनों के लिए राज्य सी ई एस सी आर के प्रति जवाबदेह है।

सर्वोच्च न्यायालय ने पेय जल के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 में गारंटी प्राप्त जीवन के अधिकार से जन्मा मौलिक अधिकार माना है। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह कोई हस्तक्षेप या भेदभाव किए बिना सभी नागरिकों को इस अधिकार की प्राप्ति संभव कराये।[97]

स्वास्थ्य के अधिकार की व्याख्या

अमीर और गरीब के बीच के अंतर का सबसे प्रमुख प्रमाण उनके स्वास्थ्य की स्थिति से पता चलता है। गरीब देशों में 17 करोड़ बच्चे अपनी आयु से न्यूनभार हैं और प्रति वर्ष 30 लाख बच्चे कुपोषण के कारण मरते हैं, जब कि विश्व भर में 30 करोड़ लोग मोटापे की समस्या से पीड़ित हैं। अमेरीका, कनाडा और पश्चिमी यूरोप में प्रतिवर्ष लगभग 5 लाख लोग मोटापे से संबंधित समस्याओं के कारण मरते है।[298] विश्व स्वास्थ्य रिपोर्ट, 2002 ने एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में रहने वाले लोगों के निम्न स्वास्थ्य स्तर का प्रमुख कारण गरीबी को माना है। सीईएससीआर मानता है कि आई सी ई एस सी आर के अनुच्छेद 11 में दिए गए स्वास्थ्य के अधिकार को पूर्णतः प्राप्त करना विश्व के करोड़ों लोगों के लिए एक दूरस्थ लक्ष्य है, विशेषकर गरीबी में फँसे लोगों के लिए। परंतु स्वास्थ्य के अधिकार का अर्थ अस्वस्थता या बीमारी की अनुपस्थिति नहीं है और न ही इसे केवल स्वस्थ रहने का अधिकार (अर्थात् शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से खुशहाल जीवन बिताना) मानना चाहिए।

समिति ने स्वास्थ्य के अधिकार को एक विस्तृत अधिकार माना है। इसमें सामयिक रूप से प्राप्त उपयुक्त स्वास्थ्य देखभाल ही नहीं, बल्कि बेहतर स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक सुविधाओं को भी शामिल किया है, जैसे सुरक्षित पेय जल व उपयुक्त सफाई–व्यवस्था, पौष्टिक आहार की पर्याप्त आपूर्ति, सुरक्षापूर्ण आवास, बेहतर व्यावसायिक व पर्यावरणीय परिस्थितियाँ तथा स्वास्थ्य सम्बंधी प्रत्येक निर्णय–प्रक्रिया में समुदाय से लेकर राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तरों तक लोगों की भागीदारी।[299] समिति मानती है कि राज्य सभी परिस्थितियों में स्वास्थ्य के अधिकार को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ज़िम्मेदार नहीं हो सकता। बीमारी आनुवंशिक कारणों से हो सकती है या फिर व्यक्ति के अस्वास्थ्यकर व जोखिमपूर्ण जीवनशैली के कारण जिस पर राज्य का नियंत्रण नहीं होता। राज्य तो केवल सभी को समान एवं बिना भेदभाव के सुविधाएँ, सेवाएँ और दवाईयाँ उपलब्ध करा सकता है ताकि हर व्यक्ति स्वास्थ्य का उच्चतम स्तर प्राप्त कर सके। समिति ने स्वास्थ्य के अधिकार की नियामक सारवस्तु तथा राज्यों के सहवर्ती कर्त्तव्य निम्नलिखित रूप से निर्धारित किए हैं–

स्वास्थ्य के अधिकार के घटक–

- लैंगिक व प्रजनक स्वंतत्रता सहित अपने स्वास्थ्य व शरीर को नियंत्रित करने की स्वतंत्रता है।
- उत्पीड़न तथा रज़ामंदी के बिना दवाईयों व चिकित्सा–विज्ञान की प्रयोग–सामग्री बनने से मुक्त रहने का अधिकार।
- स्वास्थ्य रक्षा प्रणाली तक पहुंच का अधिकार जो सभी लोगों को स्वास्थ्य का उच्चतम स्तर हासिल करने के समान अवसर देता है।
- जानकारी का हक अर्थात् स्वास्थ्य संबंधी मामलों की जानकारी प्राप्त तथा प्रदान करने का अधिकार
- गोपनीयता का अधिकार अर्थात् व्यक्तिगत स्वास्थ्य संबंधी रिकार्डों को गोपनीय रखा जाना चाहिए।

इन उच्च स्तरों को हासिल करने के लिए राज्य के अधिकार–क्षेत्र में कुछ आवश्यक परिस्थितियाँ विद्यमान होनी चाहिए–

- सार्वजनिक स्वास्थ्य देखभाल की समुचित सुविधाएँ जैसे अस्पताल और क्लीनिक, आवश्यक दवाईयाँ, प्रशिक्षित चिकित्साकर्मी जिन्हें प्रतिस्पर्धात्मक वेतन दिया जाता हो तथा सुरक्षित पेयजल, पर्याप्त सफाई सुविधाएँ जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए बेहद ज़रूरी है, अवश्य उपलब्ध होनी चाहिए;
- ये सुविधाएँ बिना किसी भेदभाव के सभी को प्राप्त होनी चाहिए, खास तौर पर समाज के कमज़ोर व सीमांत वर्गों – जैसे महिलाओं, बच्चों, किशोरों, अल्पसंख्यकों, जनजातियों, वृद्ध व्यक्तियों व विकलांगों लोगों को। इस प्राप्ति में शामिल हैं:–
  - इन सारी सुविधाओं तक वास्तव में *सुरक्षापूर्ण ढंग से लोगों की पहुँच*; खास तौर पर विकलांगों को स्वास्थ्य केंद्र और अस्पतालों में चलने–फिरने के लिए विशेष सुविधाएँ।
  - *आर्थिक रूप से न्यायोचित भुगतान*– अर्थात् स्वास्थ्य सेवाओं के लिए भुगतान, समानता की नींव पर आधारित होना चाहिए ताकि पिछडे वर्ग भी उसका लाभ आसानी से उठा सके। गरीब परिवारों पर अमीरों की तुलना में अनुचित स्वास्थ्य खर्च नहीं थोपने चाहिए।

- *स्वीकार्यता–* अर्थात् स्वास्थ्य सुविधाएँ व सेवाएँ सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हों तथा लोगों के लिंग व आयुचक्र के प्रति संवेदनशील हों और चिकित्सा शास्त्र की नैतिकता के प्रति श्रद्धा बनाए रखें।
- *गुणवत्ता–*स्वास्थ्य देखभाल की सुविधाएँ, सामान व सेवाएँ चिकित्सीय एवं वैज्ञानिक रूप से उचित व बेहतर होनी चाहिए।

राज्य के प्रमुख कर्त्तव्य

समिति ने बताया है कि सभी लोगों को स्वास्थ्य के अधिकार का लाभ प्राप्त कराने के लिए राज्यों को निम्नलिखित मूल दायित्वों को निभाना होगा। किसी भी परिस्थिति में इन्हें रद्द करना या मानने से इनकार करना मना है। राज्य को चाहिए कि वे–

- कोई भेदभाव किए बिना स्वास्थ्य सुविधाएँ, वस्तुएँ व सेवाएँ प्राप्त कराने के अधिकार को सुनिश्चित करें, विशेषकर कमज़ोर और सीमांत समूहों के लिए;
- भूख से आज़ादी तथा न्यूनतम और अनिवार्य पौष्टिक व सुरक्षित भोजन की प्राप्ति सुनिश्चित करें;
- आवास, सफाई व पर्याप्त मात्रा में पेयजल की उपलब्धता को सुनिश्चित करें;
- उन आवश्यक दवाइयों की व्यवस्था करें जिन्हें डब्ल्यू.एच.ओ.की दवाइयों की सूची में समय–समय पर शामिल किया जाता है;
- सभी स्वास्थ्य सुविधाओं एवं सेवाओं का वितरण न्यायसंगत रूप से कराने का प्रबंध करें;
- एक राष्ट्रीय सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति व कार्य योजना अपनाएं। उसकी तैयारी व समीक्षा आवधिक रूप से पारदर्शिता के आधार पर लोगों की साझी भागीदारी के साथ की जाएगी;
- स्वास्थ्य के अधिकार की पूर्ति में हुई प्रगति की समीक्षा करें जिसमें उपयुक्त मापदंडों व संकेतकों का उपयोग करके सभी सीमांत और कमज़ोर समूहों पर विशेष ध्यान रखा जाए;
- प्रजनन व जच्चा–बच्चा स्वास्थ्य देखभाल सुनिश्चित करें;
- समाज में व्याप्त प्रमुख संक्रामक बीमारियों के लिए टीके उपलब्ध करायें;
- महामारी और विशेषक्षेत्री रोगों से बचाव, उनके उपचार और उनको नियंत्रित करने के लिए उपाय करें;
- समाज की प्रमुख स्वास्थ्य समस्याओं से संबंधित जानकारियाँ, जिसमें उन्हें रोकने के लिए तरीके बताये गए हैं, उपलब्ध कराएं, तथा
- स्वास्थ्य कर्मचारियों को मानवाधिकारों की शिक्षा सहित उपयुक्त प्रशिक्षण उपलब्ध कराएं।

समिति मानती है कि राज्यों का एक विशेष कर्त्तव्य विकासशील देशों को सहायता व सहयोग (आर्थिक व तकनीकी) देना है जिससे वे अपने अधिकार–क्षेत्र में इन दायित्वों को पूरा कर सके। राज्यों का यह कर्त्तव्य भी है कि वे स्वास्थ्य के अधिकार के उल्लंघन की सुनवाई के लिए एक प्रभावी प्रणाली स्थापित करें जो व्यक्ति या समूह सभी की पहुँच में हो। ऐसे सभी पीड़ित फिर से उल्लंघन न होने के समुचित प्रतिकार गारंटी के हकदार होंगे।

उल्लंघन

समिति ने स्पष्ट किया है कि अपने प्रमुख कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक कदम न उठाने वाले या कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था न करने वाले राज्यों को स्वास्थ्य के अधिकार के उल्लंघन के लिए दोषी माना जाएगा। संभाव्य उल्लंघनों की सूची निम्नलिखित है–

- स्वास्थ्य व व्यावसायिक सुरक्षा सम्बंधी राष्ट्रीय नीतियों को अपनाने में असफलता;
- स्वास्थ्य सम्बंधी खर्चे के लिए पर्याप्त सार्वजनिक संसाधन उपलब्ध कराने में असफलता। इस में संसाधनों का गलत वितरण शामिल है;
- लिंग संवेदी दृष्टिकोण अपनाने में असफलता;
- नवजात तथा माताओं की मृत्युदर में कमी करने में असफलता;
- स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए अत्यावश्यक जानकारी के प्रसार को जानबूझ कर रोकना या गलत सूचना देना;

cyan black

- भेदभावपूर्ण नीतियों के कारण व्यक्ति या समूहों को स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाने से इन्कार करना;
- उन व्यक्तियों तथा निगमों के कार्यों को नियंत्रित करने में असफलता जो लोगों के स्वास्थ्य के अधिकार में बाधा उत्पन्न करते हैं;
- तम्बाकू, मादक द्रव्यों व अन्य हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन, व्यापार व उपभोग को रोकने में असफलता;
- स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पारम्परिक चिकित्सा या सांस्कृतिक रीति–रिवाज़ों को रोकने में असफलता;
- खनन कम्पनियों व अन्य उद्योगों द्वारा किए जानेवाले वायु, जल एवं भूमि प्रदूषण को रोकने के लिए अधिनियम बनाने या लागू करने में असफलता, तथा
- अन्य राज्यों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ समझौता करते समय प्रमुख कर्त्तव्यों की उक्त रूपरेखा को ध्यान में रखने में असफलता।

अपनी आवधिक रिपोर्ट सौंपते समय सभी राज्य इन उल्लंघनों के लिए समिति के समक्ष जवाबदेह होंगे।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने स्वास्थ्य व चिकित्सा देखभाल, एकान्त, आवास, सफाई व पेय जल को मौलिक अधिकार के रूप में माना है। ये एक गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए अनिवार्य हैं।[300] न्यायालय ने राज्य का यह कर्त्तव्य माना है कि वह सभी नागरिकों की अच्छी सेहत के लिए आवश्यक माहौल बनाये।[301]

शिक्षा के अधिकार का विस्तार

अकेले दक्षिण एशिया में विश्व के 50 प्रतिशत अशिक्षित लोग रहते हैं। इनमें से 60 प्रतिशत महिलाएँ हैं। शिक्षा की कमी के कारण अशिक्षित लोग अपनी क्षमता का पूरा विकास नहीं कर पाते हैं। इसके कारण वे शोषण के शिकार बनते हैं। सीईएससीआर ने शिक्षा को अपने आप में एक मानवाधिकार तथा अन्य अधिकारों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य अधिकार माना है। संक्षेप में, यह सशक्तिकरण का अधिकार है जो कमज़ोर एवं पिछड़े वर्ग/समूहों को अपने जीवन को गरीबी से मुक्त कराने और समाज के कार्यों में प्रभावी रूप से भाग लेने के अवसर उपलब्ध कराता है। शिक्षा का मूल उद्देश्य पूर्ण गरिमा से व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करना है। समिति ने शिक्षा के अधिकार की सारवस्तु परिभाषित की है तथा उनकी पूर्ति के लिए राज्य के कर्त्तव्यों की पहचान की है।[302]

शिक्षा के अधिकार के घटक

- प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है।
- प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि उसके साथ लिंग के आधार पर शिक्षा के अधिकार की प्राप्ति में भेदभाव न किया जाए।
- प्राथमिक शिक्षा से वंचित या उसे पूरी अवधि तक न पाने वाले लोगों को आयु या लिंग के भेदभाव के बिना बुनियादी शिक्षा पाने का अधिकार है।
- छात्रों का अधिकार है कि शैक्षणिक संस्थानों में उन्हें शारीरिक दण्ड न मिले या उनका अपमान न किया जाए।
- माता–पिता को अपने बच्चों के लिए उन निजी स्कूलों को चुनने का अधिकार है जो राज्य द्वारा निर्धारित न्यूनतम मानदण्डों को पूरा करते हैं।
- यह सुनिश्चित करना माता–पिता का अधिकार है कि उनके बच्चों को अपने मतानुसार धार्मिक व नैतिक शिक्षा प्राप्त हो।
- शिक्षक समुदाय के सदस्यों को व्यक्तिगत या समूहगत रूप से अनुसंधान, शिक्षा, अध्ययन, विचार–विमर्श, प्रलेखन, लेखन व अन्य संबंधित साधनों के माध्यम से ज्ञान एवं विचारों को पढ़ने व विकसित करने का अधिकार है।

शिक्षा के अधिकार की प्राप्ति के लिए अनिवार्य परिस्थितियाँ

राज्य की ज़िम्मेदारी है कि नागरिकों के शिक्षा के अधिकार की प्राप्ति के लिए उन्हें कुछ आवश्यक परिस्थितियाँ उपलब्ध कराए–

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

- सक्रिय शैक्षणिक सस्थान, कार्यक्रम व सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में प्रत्येक राज्य के अधिकार क्षेत्र में उपलब्ध कराई जाएं। इसमें शामिल हैं– छात्रों के लिए भवन व सुरक्षा के अन्य साधन, छात्र व छात्राओं के लिए अलग–अलग शौचालय व्यवस्था, सुरक्षित पेय जल, प्रतिस्पर्धात्मक वेतनभोगी प्रशिक्षित अध्यापक, पढ़ाई का सामान व पुस्तकालय, कम्प्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी सुविधाएँ, जहाँ आवश्यक हों;
- शैक्षिक संस्थान सभी की पहुँच में होने चाहिए;

कानूनी तौर पर तथा वास्तव में शिक्षा सभी की पहुँच में होनी चाहिए, खास तौर पर कमज़ोर व पिछड़े समूहों के लिए;

- शैक्षणिक सुविधा सुगम स्थलों (अर्थात् पास के स्कूल) पर या आधुनिक तकनीक के माध्यम से, जैसे दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों (distance education) के ज़रिए प्राप्त होनी चाहिए;
- शिक्षा सबकी पहुंच में होनी चाहिए– जबकि प्राथमिक शिक्षा मुफ़्त व अनिवार्य होनी चाहिए, माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा क्रमशः निःशुल्क होनी चाहिए;
- पाठ्यक्रम व शिक्षा पद्धति सहित शिक्षा का स्वरूप व विषय सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य और बेहतर होना चाहिए;
- शिक्षा परिवर्तनशील होनी चाहिए तथा बदलते हुए समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए;
- छात्रों की प्रकट क्षमता व योग्यता को ध्यान में न रखते हुए, सभी को माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध करानी चाहिए;
- तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा सभी स्तरों पर सामान्य शिक्षा व प्रशिक्षण के अंग के रूप में मिलनी चाहिए।

राज्यों के प्रमुख कर्त्तव्य

- भेदभावरहित आधार पर सार्वजानिक शैक्षणिक संस्थानों व कार्यक्रमों में भागीदारी के अधिकार को सुनिश्चित करना।
- आई सी ई एस सी आर में उल्लेखित उद्देश्यों की पुष्टि करने वाली शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करना (अर्थात् गरिमापूर्ण तरीके से व्यक्तित्व का विकास, सभी व्यक्तियों को स्वतंत्र समाज में प्रभावी रूप से भाग लेने के योग्य बनाना तथा सभी जनजातीय समुदायों और साथ ही साथ राष्ट्रीय, जातीय व धार्मिक समूहों में आपसी समझ–बूझ विकसित करना)।
- सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।
- एक राष्ट्रीय शैक्षणिक रणनीति अपनाना व लागू करना। इसमें शामिल हैं : माध्यमिक, उच्चतर व बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था (बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों और अशिक्षित वयस्कों के लिए)
- राज्य या तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप के बिना स्वतंत्र रूप से शिक्षा को चुनने के अधिकार को सुनिश्चित करना (बशर्ते कि वह राज्य द्वारा निर्धारित न्यूनतम स्तर का पालन करती हो)।

राज्यों का कर्त्तव्य है कि वह उचित कदम उठाकर शिक्षा के अधिकार की पूर्ति के मार्ग में आने वाली रूकावटों को दूर करें। उनका यह कर्त्तव्य भी है कि वे इस अधिकार की पूर्ति में तीसरे पक्ष अर्थात् व्यक्ति, समूह व निगमों के हस्तक्षेप को रोकने के लिए कदम उठायें। उदाहरण के लिए, उनका कर्त्तव्य है कि वे यह सुनिश्चित करें कि माता–पिता और नियोक्ता बच्चों को स्कूल जाने से न रोके; विशेषकर लड़कियों को। राज्यों का कर्त्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि समाज और परिवार बाल–मज़दूरी पर निर्भर न हों। राज्य यह सुनिश्चित करें कि पाठ्यक्रम सभी स्तरों पर शिक्षा के उद्देश्यों की उक्त रूपरेखा पर खरा उतरता हो। वे शिक्षावृत्ति या वज़ीफे की व्यवस्था उपलब्ध करायें जिससे शिक्षा का खर्च न उठा सकने वाले अलाभप्रद समूहों को सहायता मिले। उन्हें सभी शैक्षणिक संस्थानों के लिए न्यूनतम स्तर स्थापित करने होंगे तथा एक पारदर्शी एवं प्रभावी प्रणाली बनानी होगी जो इस बात पर नज़र रखेगी कि शिक्षा के अधिकारों को प्राप्त किया गया है या नहीं।

उल्लघंनो की सूची का विस्तार उपरोक्त अधिकारों व स्वतंत्रताओं से पूर्णतः वंचित होने से लेकर उन आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करने में असफलता तक है जिससे व्यक्ति या समूह शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाएं।

गैर–राज्य कर्ताओं के दायित्व

समिति ने संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों जैसे यूनेस्को, यूएनडीपी, यूनिसेफ, आईएलओ तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्त संगठनों, जैसे आई एम एफ व विश्व बैंक को विकासशील देशों में अपने सहयोग को और बढ़ाने के लिए कहा है ताकि शिक्षा के अधिकार का अनुपालन हो सके। विशेषकर आईएमएफ और विश्व बैंक को अपनी ऋण नीतियों, ऋण समझौतों और ढांचागत समायोजन कार्यक्रम (एस ए पी) में इस अधिकार की रक्षा के लिए विशेष ध्यान रखना होगा। शिक्षा के अधिकार की पूर्ति के लिए राज्यों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाली आवधिक रिपोर्टों की जाँच करते समय, समिति सभी गैर–राज्य कर्ताओं द्वारा दी गई सहायता पर विचार करेगी।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कई बार शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है। उसने यह घोषणा भी की है कि 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का संवैधानिक कर्त्तव्य है। तदनुसार, संसद ने संविधान में संशोधन करके 6 से 14 वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चों के लिए शिक्षा मुफ़्त व अनिवार्य बना दी है।[303]

उपयुक्त आवास का अधिकार

विश्व भर में 100 करोड़ से अधिक लोग गरीब हैं। इनके पास या तो घर नहीं है या पर्याप्त आश्रय नहीं है। भारत और बांगलादेश में बाढ़ व तूफानों के कारण हुई तबाही से प्रतिवर्ष लाखों लोग बेघर हो जाते हैं। आश्रय की कमी के कारण भीषण गर्मी और सर्दी के मौसम में कई हज़ार लोग मारे जाते हैं। कई लाख लोगों को विकास परियोजनाओं के कारण घर तथा भूमि से विस्थापित कर दिया जाता है तथा मुआवज़े के तौर पर कुछ पैसे दे दिए जाते हैं। 100 करोड़ से अधिक लोगों को सुरक्षित जल व सफाई सुविधाएँ तक प्राप्त नहीं है। इनमें अधिकांश महिलाएँ व बच्चे हैं। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (MDG) के अनुसार राज्यों को वर्ष 2015 तक उन लोगों की संख्या आधी करनी होगी जिनके पास सुरक्षित पेय जल और सफाई सुविधाएँ नहीं है (लक्ष्य 7)। शहरों की गंदी बस्तियों में जी रहे 10 करोड़ गरीबों के जीवन में पर्याप्त सुधार लाने के लिए राज्यों को कदम उठाने होंगे। आईसीईएससीआर प्रत्येक मानव के अधिकार को समुचित जीवन–स्तर से जोड़कर देखता है। {अनुच्छेद 11(1)}। इसमें पर्याप्त आहार, कपड़ा और मकान व जीवन की स्थिति में निरन्तर सुधार शामिल है।[304] अतः उपयुक्त आवास का अधिकार जीवन–स्तर के एक विस्तृत अधिकार से निकला है और इसका संबंध उन अनेक अधिकारों से है जो गरिमापूर्ण जीवन के लिए आवश्यक तथा आई सी ई एस सी आर द्वारा स्वीकृत है।

उपयुक्त आवास के अधिकार के घटक

- प्रत्येक व्यक्ति व उसके परिवार को उपयुक्त आवास का अधिकार है। परिवार की संकल्पना को विस्तृत दृष्टि से समझना चाहिए। उसमें महिलाओं के नेतृत्व वाले कुटुंब भी शामिल हैं। प्रत्येक व्यक्ति को आयु, लिंग, धर्म या अन्य सम्बंधों से परे आवास का अधिकार है।
- इसके अंतर्गत, सिर पर एक छत ही नहीं, बल्कि सुरक्षा, शांति और गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार आता है। आश्रय एक वस्तु मात्र नहीं है। आमदनी या आर्थिक संसाधनों की कमी की आड़ में किसी भी व्यक्ति को आवास के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

उपयुक्त आवास में निम्नलिखित पहलू शामिल हैं–

- *उपभोग की अवधि की कानूनी सुरक्षा–* किराये पर आवास, सहकारी आवास, लीज़, मालिकाना हक, संकटकालीन आवास या अनौपचारिक आवास जिसमें भूमि व सम्पत्ति पर अनधिकृत निवास शामिल है, सभी के पास उपभोग की अवधि की सुरक्षा होनी चाहिए जो ज़बरदस्ती घर से निकालने, उत्पीड़न व अन्य खतरों के विरुद्ध कानूनी संरक्षण देता है।
- *सामग्री, सुविधा और बुनियादी व्यवस्था एवं सेवाओं की उपलब्धता–* प्राकृतिक व सामान्य संसाधनों, सुरक्षित पेय जल, खाना बनाने, तथा बिजली व सर्दियों में तापमान बनाए रखने के लिए ऊर्जा, सफाई एवं धोने की सुविधा, खाद्य संग्रहण के साधन, कूड़े–करकट का निपटान, जल निकास व आपातकालीन सेवाएँ सभी तक स्थायी रूप से पहुँचनी चाहिए।
- *खर्च की क्षमता–* आवास की लागत का स्तर इतना होना चाहिए कि अन्य किसी बुनियादी आवश्यकता की प्राप्ति पर उसका गलत असर न पड़े।

- *निवास–योग्यता–* आवास में पर्याप्त जगह होनी चाहिए तथा वह अपने अन्दर रहने वालों को गर्मी, सर्दी, आँधी, बारिश, नमी व स्वास्थ्य एवं रोग सम्बंधी अन्य खतरों से बचाये। रहने वालों को शारीरिक सुरक्षा की भी गारंटी होनी चाहिए।
- *सुलभता–* आवास उन सभी को मिलना चाहिए जो इसके हकदार हैं। गरीब व वंचित समूहों को आवास सम्पूर्ण और स्थायी रूप से मिलना चाहिए। इनमें वृद्ध, बच्चे, विकलांग, मानसिक रूप से अस्वस्थ तथा एचआईवी के शिकार व्यक्ति भी शामिल हैं। ऐसे समूहों, प्राकृतिक विपदा से पीड़ित लोगों तथा विपदा के खतरे वाले क्षेत्रों के लोगों को आवास के अधिकार की प्राप्ति के संदर्भ में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- *स्थल–* चाहे शहर हो या गाँव, घर ऐसी जगह होना चाहिए जहाँ रोज़गार के अवसर, स्वास्थ्य सेवाएँ, स्कूल, बाल केन्द्र व अन्य सामाजिक सुविधाएँ पास में हों। प्रदूषित स्थानों या जहाँ प्रदूषण की चपेट में आना आसान हो, पर घर नहीं बनाने चाहिए।
- *सांस्कृतिक उपयुक्तता–* आवास को बनाने का तरीका, प्रयुक्त इमारती समान और आवास नीतियाँ इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए जिससे सांस्कृतिक पहचान व विभिन्नता को अभिव्यक्ति मिल सकें।

समुचित आवास के अधिकार की पूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए अन्य सहवर्ती अधिकार जैसे वाक् तथा अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का अधिकार, संगठन की स्वतंत्रता का अधिकार, निवास स्वतंत्रता का अधिकार, सार्वजनिक–निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार तथा एकान्त का अधिकार आदि की गारंटी होनी चाहिए।

राज्यों के कर्त्तव्य–

समिति मानती है कि देश का विकास चाहे किसी भी स्तर पर क्यों न हो, आवासन के अधिकार की पूर्ति के लिए राज्य को निम्न ज़रूरी कदम तुरंत उठाने चाहिए–

- राज्यों को राष्ट्रीय आवास रणनीति अपनानी चाहिए जिसमें पर्याप्त विचार–विमर्श झलकता हो और जिसमें उन सभी प्रभावितों या उनके प्रतिनिधियों ने भाग लिया हो जो बेघर हैं या जिनके पास उपयुक्त आवास नहीं है।
- प्रतिकूल स्थिति में रहने वाले सामाजिक समूहों को राज्य द्वारा प्राथमिकता दी जानी चाहिए। आवास का अधिकार प्राप्त करने के लिए नीतियाँ और कानून बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह पहले से ही अनुकूल स्थिति में रहने वाले सामाजिक समूहों को लाभ न पहुँचाये जिस के कारण ज़रूरतमंद लोग तंगहाल रह जाएं।
- राज्य को चाहिए कि वह संबंधित व्यक्ति एवं समूहों के साथ प्रामाणिकता से विचार–विमर्श कर तुरन्त ऐसे कदम उठाए कि सभी असुरक्षित व्यक्ति और परिवारों को आवास–उपभोग अवधि की सुरक्षा कानूनी तौर पर मिले।
- राज्य आवास के अधिकार की पूर्ति के संबंध में स्थिति का निरीक्षण करने के लिए एक प्रभावी प्रणाली बनाए।
- जहाँ राज्य सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के मिश्रित कार्यसाधन अपनाता है, उसका यह दायित्व बनता है कि वह इस बात का प्रमाण दे कि उठाए गए कदम हर एक व्यक्ति को कम से कम समय में सारे उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से आवास के अधिकार प्राप्त कराने के योग्य हैं।
- राज्य को कानूनी उपायों की एक व्यवस्था बनानी चाहिए जो समुचित आवास के अधिकार के उल्लंघन से पीड़ित व्यक्ति की पहुँच में हो, जैसे–
    - न्यायालय की निषेधाज्ञा जारी करने के माध्यम से नियोजित बेदखली या तोड़–फोड़ को रोकने के उद्देश्य से कानूनी अपील।
    - अवैध बेदखली होने पर उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए कानूनी प्रक्रिया।

- किराया, घर की मरम्मत और जातीय या किसी अन्य प्रकार के भेदभाव के संबंध में मकान मालिक (सरकारी हो या निजी) द्वारा किए गए या उनके द्वारा समर्थित गैर–कानूनी काम के विरुद्ध शिकायतों की सुनवाई।
- आवास के आवंटन तथा उपलब्धता में हुए किसी भी प्रकार के भेदभाव के आरोपों की सुनवाई।
- अस्वास्थ्यकर या अपर्याप्त आवास स्थिति के संबंध में मकान मालिक के विरुद्ध शिकायतों की सुनवाई।

◆ अधिकतम लोगों को आवास की सुविधा दिलाने के लिए ज़रूरी परिस्थितियों के निर्माण हेतु पर्याप्त वित्तप्रबंधन करना राज्य के कर्त्तव्यों में शामिल है।

सर्वोच्च न्यायालय ने आवास के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया है, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत स्वीकृत जीवन के अधिकार का एक अंग है। यह माना गया है कि राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने या अपने सहायकों द्वारा चलाई गई आवास योजनाओं के तहत गरीबों को उनकी सामर्थ्य के अनुरूप स्थाई आवास उपलब्ध कराये।[105]

आहार के अधिकार का 'विस्तार' काफी हद तक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा पहले ही किया जा चुका है। खाद्य और कृषि संगठन [Food & Agricultural Organisation (FAO)] सी ई एस सी आर और संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार प्रोत्साहन एवं संरक्षण उप–आयोग (UN Sub-commission on the Promotion and Protection of Human Rights)] विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण एवं विकास आयोग (World Commission on Environment and Development) ने भोजन के अधिकार को विस्तार से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रमंडल देशों ने भी इस ओर ध्यान दिलाया हैः बोत्स्वाना की राष्ट्रीय खाद्य नीति इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। अनेक राष्ट्रमंडल देशों ने अंतर्राष्ट्रीय घोषणाओं पर हस्ताक्षर किए हैं, जैसे सन् 1996 में विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन (World Food Summit) में स्वीकार की गई खाद्य सुरक्षा घोषणा और कार्ययोजना (Declaration on Food Security & Plan of Action)। इनमें उन्होंने कम से कम अपने नागरिकों और अन्य देशों की आवश्यकताओं के प्रति वचनबद्धता व्यक्त की है। इन सभी बातों से आहार के अधिकार की परिभाषा को व्यापक बनाने और उसे सभी सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों के साथ जोड़ने में काफी मदद मिली है, ताकि उनकी प्रवर्तनीयता में सुधार लाया जा सके।

ढांचागत सुधार

अधिकारों की विस्तृत व्याख्या के बावजूद, गरीबी दूर करने में अधिकारों के इस ढांचे की क्षमता अधिकतम बनाने के लिए उस पर पुनर्विचार करने और उसे नया रूप देने की आवश्यकता है, क्योंकि अभी भी ऐसा मानने वाले लोग हैं जो अपने को इस ढांचे से बाहर समझते हैं। कुछ मौलिक अधिकारों की धारणा पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

कर्त्तव्यधारक

एक ऐसे विश्व में, जहां निगम अनेक राष्ट्रों से भी अधिक शक्तिशाली बन गए हों, जहां निवेश के फैसले अन्य देशों द्वारा और अंतर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा किए जा रहे हों और जिसमें बाजार को इतना अधिक महत्व मिल गया हो कि वह राष्ट्र के क्रिया–कलापों से अपने को काफी हद तक मुक्त महसूस करने लगा हो, अधिकारों के साथ–साथ कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों पर नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए बहुपक्षीय कर्ज़दाता संस्थानों (Multilateral Lending Institutions) ने अपने घोषणापत्रों की बड़ी संकुचित व्याख्या की है। उनका कहना है कि वे विशेष अंतर्राष्ट्रीय संगठन हैं, जो खासकर सदस्य देशों के बीच संबंधों के आर्थिक पहलुओं से संबद्ध हैं। वे न तो मानक निर्धारक (standard setters) हैं और न ही मानवाधिकारों को लागू करने वाले। ज़्यादा से ज़्यादा वे ऐसी आर्थिक स्थितियां पैदा करने में मदद कर सकते हैं, जो मनावाधिकारों को पूरा करने की दिशा में योगदान कर सकें। मानवाधिकारों के बारे में उनका कहना है कि उनका संबंध अनिवार्यतः राष्ट्रों के बीच संबंधों और उनके नागरिकों के साथ है।

सहायता तथा उत्तरदायित्व

क्या विदेशी सहायता पर आधारित विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन में लापरवाही होने पर दाता एजेंसियों और उनके तकनीकी विशेषज्ञों पर ज़िम्मेदारी बनती है? बांगलादेश में बहुपक्षीय वित्त–पोषित ट्यूबवेल परियोजना के अंतर्गत पानी की गुणवत्ता के घटिया विश्लेषण के लिए आर्सेनिक जहर से पीड़ित दो बांगलादेशियों ने इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय पर्यावरणीय अनुसंधान समिति (National Environment Research Council- एनईआरसी) को न्यायालय ले जाकर एक रास्ता दिखाया है।

बांगलादेश में, ज़मीन के ऊपर मौजूद अधिकांश जल दूषित है। प्रतिवर्ष, दस्त लगने से लगभग 20,000 मौतें होती हैं तथा ढेरों लोग पानी से उत्पन्न होने वाले हैज़ा जैसे रोग से मरते हैं। सरकार ने सिंचाई व घरेलू उद्देश्यों के लिए भूमिगत जल की आपूर्ति शुरू की। इंग्लैंड की विदेशी दाता – समुद्रपार विकासात्मक एजेंसी (Overseas Developmental Agency) द्वारा वित्त–पोषित दूसरी नितल नलकूप सिंचाई परियोजना (Deep Tubewell Irrigation Project II) के तहत 1983 से 1992 के बीच 4,000 ट्यूबवेलों की स्थापना की गई। एनईआरसी द्वारा वित्त–पोषित सरकार की एक सहायक कम्पनी – ब्रिटिश भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (British Geological Survey) को इस परियोजना के लिए तकनीकी विशेषज्ञता उपलब्ध कराने के लिए बुलाया गया। वर्ष 1992 में ओडीए द्वारा वित्त–पोषित बीजीएस ने ट्यूबवेलों का सर्वेक्षण किया तथा रिपोर्ट में कहा कि जल सिंचाई, खाना बनाने और पीने के योग्य है। यह अध्ययन सेमिनार व अकादमिक पत्रिकाओं में सार्वजनिक किया गया तथा रिपोर्ट ओडीए व बांगलादेशी सरकार को सौंप दी गई। तथापि 1990 के दौरान इन नलकूपों से दिए गए पानी में आर्सेनिक ज़हर के होने के मामले सामने आने लगे। यह अनुमान है कि लगभग 10,000 लोग आज गंभीर रूप से आर्सेनिक से पीड़ित हैं। आर्सेनिक एक खतरनाक जहर है जिससे चर्म कैंसर, अंधापन, फोड़े, गैंग्रीन और अंततः मौत हो सकती है। डब्ल्यू.एच.ओ. ने इसे ''इतिहास में ज़हर से होनी वाली सबसे बड़ी घटना माना है।''[306]

विनोद सूत्रधार और लक्की बेगम – जो आर्सेनिक जहर से पीड़ित हैं – ने लंदन के उच्च न्यायालय में एनईआरसी के विरूद्ध सर्वेक्षण के दौरान पानी में आर्सेनिक की जाँच न करने के लिए दावा किया है। बांगलादेश कानूनी सहायता सेवा न्यास (Bangladesh Legal Aid Services Trust- BLAST), बांगलादेश पर्यावरणीय वकील संघ (Bangladesh Environmental Lawyers Association- BELA) और बांगलादेश अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही नेटवर्क (Bangladesh International Action Network- BIAN) की कानूनी सहायता से अर्ज़ीदारों ने दावा किया है कि एनईआरसी को अपनी सहायक कम्पनी– बीजीएस की घोर लापरवाही के कारण हुई मौतों व बीमारियों के लिए मुआवज़ा देना चाहिए। उन्होंने दावा किया कि बीजीएस के सर्वेक्षण का मूल उद्देश्य पानी में विद्यमान रसायन के मनुष्य, मछलियों व फसलों पर होने वाले प्रभाव का विश्लेषण करना था। परन्तु आर्सेनिक के लिए जल–परीक्षण न करके बीजीएस ने जल आपूर्ति परियोजना के लाभार्थियों की 'परवाह न करते हुए' अपने कर्त्तव्यों में लापरवाही की है। क्योंकि बीजीएस ने अपनी रिपोर्ट में ट्यूबवेलों के जल को स्वीकृति दे दी थी, इसलिए सरकार ने लोगों को घरेलू उपयोग के लिए उसके इस्तेमाल की छूट दे दी। अर्ज़ीदाताओं ने दावा किया कि अगर उन्हें पता होता कि पानी आर्सेनिक युक्त है, तो वे इसे नहीं पीते।

इस कार्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेते हुए, एनईआरसी ने न्यायालय में तर्क दिया कि आर्सेनिक के लिए पानी के परीक्षण हेतु वह कर्त्तव्य–बद्ध नहीं था। एनईआरसी ने कहा, इसके अतिरिक्त वह न तो बांगलादेशी सरकार और न ही अर्ज़ीदाताओं के साथ किसी अनुबंध से बंधा था, अतः उसका यह कर्त्तव्य नहीं बनता कि वह लोगों की 'परवाह करे'। एनईआरसी ने दावे के जल्द निपटान की बात कही क्योंकि उसके कार्यों से अर्ज़ीदाताओं को कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुँची है।

तथापि मई 2003 में, न्यायाधीश साइमन ने यह कहते हुए मामले के जल्द निपटान से इंकार कर दिया कि वैज्ञानिक व तकनीकी रिपोर्टों के उपयोग के बारे में कानूनी समझ अभी व्यवस्थित रूप नहीं ले पाई है; इसलिए एनईआरई की दायित्व और अर्ज़ीदाताओं के दावों की वैधता पर निर्णय करने के लिए मामले को ध्यान से सुनना आवश्यक है।[307]

ऐसे देश में जहाँ गरीब को चुनना हो कि वह दस्त से मरेगा या आर्सेनिक के ज़हर से, वहाँ सहायक एजेंसियों व उनके सलाहकारों को उनके विकासात्मक कार्यों के हानिकारक प्रभावों के लिए जवाबदेह बनाने में यह एक महत्वपूर्ण कदम है।[308]

ऐसी दलीलों के मद्देनज़र इन संस्थानों को स्पष्ट रूप से मानवाधिकारों के प्रति कर्त्तव्यधारक मानना ज़रूरी हो जाता है। हमें इस तर्क को अस्वीकार करना होगा कि नागरिकों के प्रति मानवाधिकारों का दायित्व राज्य का है, क्योंकि इसमें कर्ज़दाता संस्थानों को उनकी नीतियों से मानवाधिकारों पर पड़ने वाले प्रभाव के दायित्व से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन जैसे संगठन सदस्य देशों के समूह मात्र नहीं हैं। उनका वैधानिक स्वरूप है और अपने क्रियाकलाप संचालित करने के लिए उन्हें आवश्यक विशेषाधिकार एवं दण्डरक्षा के आश्वासन (immunities) प्रदान किए गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय कानून के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार गठित इन संस्थानों को मानवाधिकार कानूनों के मूलभूत सिद्धान्तों का अवश्य सम्मान करना चाहिए, क्योंकि वे स्वयं भी उन्हीं सामान्य सिद्धान्तों का हिस्सा हैं। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक कानून और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार के मानदंड, दोनों का ही साझा वैधानिक स्रोत (*jus congens*) है "किसी भी कर्ता को उसके कार्यों के लिए सैद्धांतिक रूप से उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए"। इस सूत्र के अनुसार कर्ज़दाता संस्थानों का यह दायित्व बनता है कि अपनी नीतियों के कारण मानवाधिकारों पर होने वाले नकारात्मक प्रभावों को दूर करें।[309]

संयुक्त राष्ट्र विश्वव्यापी समझौता

1998 में, संयुक्त राष्ट्र महासचिव, कोफी अन्नान ने डावोस में विश्व आर्थिक मंच की बैठक में विश्व के व्यापारिक नेताओ के समक्ष समान मूल्यों और सिद्धान्तों के विश्वव्यापी समझौते का प्रस्ताव किया ताकि विश्व बाजार को मानवीय रूप प्रदान किया जा सके। श्री अन्नान ने उनसे अपील की कि वे तीन क्षेत्रों मानवाधिकार, श्रम मानकों और पर्यावरण में बुनियादी मूल्य तय करने, अपनाने और उनका समर्थन करने के बारे में समझौता करें।

विश्वव्यापी समझौते के नौ सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

मानवाधिकार :

- अपने प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों का समर्थन, सम्मान और संरक्षण करना और
- यह सुनिश्चित करना कि उनके स्वयं के निगमों में मानवाधिकारों का उल्लंघन न हो।

श्रम :

- संगठन की स्वतंत्रता और सामूहिक मोल–भाव के अधिकार को प्रभावी मान्यता;
- सभी प्रकार की बाध्यकारी और बंधुआ मज़दूरी का उन्मूलन;
- बाल मज़दूरी का कारगर उन्मूलन और
- रोज़गार और व्यवसाय के संदर्भ में भेदभाव दूर करना।

पर्यावरण :

- पर्यावरण में हो रहे परिवर्तनों के प्रति ऐहतियाती दृष्टिकोण अपनाना;
- पर्यावरण के प्रति दायित्व बढ़ाने के उपाय करना और
- पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकी विकसित करने और उसके प्रसार को बढ़ावा देना।

हालांकि यह स्वैच्छिक समझौता किसी भी तरह बाध्यकारी नहीं है, फिर भी यह कम्पनियों को उनके लक्ष्य वक्तव्यों में सार्वभौम मूल्य शामिल करने, इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए प्रबंध पद्धतियों में परिवर्तन करने और सीखने के अनुभवों में हिस्सेदारी के लिए प्रेरित करता है। हाल ही में कम्पनियों ने इस पर हस्ताक्षर किए हैं और इसे विश्वभर में व्यापार संगठनो का समर्थन प्राप्त है।

कर्त्तव्यधारक के रूप में कर्ज़दाता संस्थानों की पहचान इन संस्थानों के भीतर और बाहर, दोनों ही स्थितियों में होनी चाहिए। इस तरह की स्पष्ट मान्यता से इन संस्थानों पर यह दायित्व आयेगा कि वे अपने नीतिगत उद्देश्यों को हासिल करने के लिए तत्परता से उपाय करें और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों का अनुसरण करें। ओलोका –ऑन्यांगो और उदगामा ने सिफारिश की है कि मानवाधिकार मानकों को कर्ज़दाता संस्थानों द्वारा गरीबी कम करने की नीतियां तैयार करने को प्राथमिकता देनी चाहिए। विकास के अधिकार संबंधी घोषणा मे बनी सहमति के अनुसार विकास की प्रक्रिया में किसी एक अधिकार या अधिकारसमूह को खास महत्व दिए बिना सभी मानवाधिकारों को मान्यता मिलनी चाहिए और उनकी रक्षा की जानी चाहिए। कर्ज़दाता संस्थानों के मानवाधिकार संबंधी दायित्वों में 'अप्रतिगमन का सिद्धांत' (principle of non-retrogression) – यानि पूर्व उपलब्धियों में गिरावट न हो – शामिल किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है वे ऐसे बृहत आर्थिक नीति उपायों की सलाह नहीं देंगें, जिनका गरीबी दूर करने की नीतियां अपनाने वाले देशों में पहले से हासिल की गई सामाजिक उपलब्धियों पर विपरीत असर पड़े। बल्कि उन्हें अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, और पर्यावरण संरक्षण जैसे उन क्षेत्रों को बढ़ावा देने के लिए गतिशील उपाय करने चाहिए, जहां पहले से रचनात्मक उपलब्ध्यिां हासिल की जा चुकी हैं। समय–समय पर मानवाधिकार प्रभाव–मूल्यांकन (Human Rights Impact Assessment) कराने से इन क्षेत्रों में रचनात्मक उपलब्धियों के लिए खतरे कम करने में मदद मिल सकती है।[310] इस तरह की संस्थागत जवाबदेही में कार्यकलाप में पारदर्शिता, नीतियों का स्वतंत्र मूल्यांकन और कर्ज़दाता संस्थानों के भीतर क्षतिपूर्ति के समुचित व प्रभावी उपायों की व्यवस्था करना शामिल है। मानवाधिकारों के क्षेत्र में इस समय अपनी ज़्यादातर ज़िम्मेदारियों से बचने वाले शक्तिशाली कर्ता–समूहों में एक और प्रमुख उदाहरण निजी क्षेत्र का है। ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि वह भी इस संदर्भ में अपने दायित्व पूरे करे। निजी क्षेत्र की शक्ति निरंतर और तेज़ी से बढ़ती जा रही है। राज्यों को उन्हें नियंत्रित करने में कठिनाइयां आ रही हैं। इसलिए, ज़रूरत हो गई है कि इस क्षेत्र पर सीधे अंतर्राष्ट्रीय कानून लागू किए जाएं।

अभी तक स्थानीय व अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून–व्यवस्थाएं कंपनियों को नियंत्रित करने में ज़्यादातर असफल ही रही हैं। बल्कि निगम दावा करते हैं कि वे मानवाधिकारों के लाभार्थी हैं और ज़्यादातर कानून–व्यवस्थाओं में उन्हें यह दर्ज़ा दिया भी गया है। लेकिन वे दूसरों के मानवाधिकारों का सम्मान करने के अपने दायित्व से अक्सर परहेज़ करते हैं। मानवाधिकार की पारंपरिक धारणाओं के तहत उन पर अन्यों के मानवाधिकारों का सम्मान करने का दायित्व आरोपित नहीं किया जा सकता। इन धारणाओं के तहत यह दायित्व केवल राज्यों को ही सौंपा गया है। राज्य को ही उल्लंघनकर्ता के रुप में देखा गया है।

भोपाल का यूनियन कार्बाइड़ हादसा ही यह दिखाने के लिए काफी है कि निगमों द्वारा अन्यों को पहुंचाए गए नुकसान और पर्यावरण की क्षति के लिए उन पर सामान्य कानून–व्यवस्थाओं के तहत कार्रवाई करने में कितनी कठिनाइयां आती हैं। अधिकांश बड़े निगम अपने द्वारा नियंत्रित किसी सहायक कंपनी के ज़रिए अपने क्रियाकलापों का संचालन करते हैं और इन सहायक कंपनियों के दायित्व लागू कराना लगभग असंभव है। वजह? जिस संपत्ति या साधनों से होने वाली क्षति के विरुद्ध दावा किया जाता है, वे दूरदराज़ के किसी अभिभावक–निगम के स्वामित्व में होती है और अभिभावक–निगम अपनी सहायक कंपनी के दायित्वों का वहन करने से साफ इंकार कर सकता है। फिर, बड़े निगमों के खिलाफ होने वाली कानूनी कार्रवाईयों में अक्सर निगमों की पक्षधरता का रुझान देखने में आता है। उनके पास अकूत साधन होते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ कानूनी प्रतिभाओं को खरीद सकते हैं। अदालत की कार्रवाई को लंबा खींच सकते हैं या फैसले के लागू होने में बाधाएं खड़ी करते रह सकते हैं। दूसरे, किसी निगम के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई से हमेशा प्रतिशोध का खतरा होता है–नौकरी जा सकती है, सामाजिक उत्पीड़न हो सकता है या निगम कोई और तरीके अपना सकता है।

इसके बावजूद, निगमों को जवाबदेह बनाने के कारगर तरीके मौजूद हैं। अब कंपनिया अपना हितसाधन करने के लिए ही सही, मानवाधिकारों के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाती दिखना चाहने लगी है। नैतिक, पर्यावरणीय व सामाजिक स्तर पर ज़िम्मेदार दिखना व्यवसाय के लिए अच्छा माना जाने लगा है। वरना उपभोक्ता बहिष्कार कर सकते हैं, शेयरधारक परेशान कर देने वाले सवाल पूछ सकते हैं (हो सकता है कि उनमें से कुछ ने शेयर खरीदे ही इस स्थिति में आने के लिए हों) और निगम के विरुद्ध सार्वजनिक प्रचार हो सकता है। इन कारणों से, गहरी व्यावसायिक सूझबूझ रखने वाले निगम गरीबों के पक्षधर होने की भंगिमा अपनाने लगे हैं।

उदाहरण के लिए, एक शक्तिशाली उत्पादक संघ ने हाल ही में दक्षिण अफ्रीकी सरकार द्वारा लोगों के लिए सस्ती दवाएं उपलब्ध कराने के फैसले के खिलाफ अदालत का सहारा लिया। किन्तु, जब इन कम्पनियों के खिलाफ व्यापक प्रचार किया गया कि वे किस प्रकार एच आई वी संक्रमित लोगों तक सस्ती दवाएं पहुंचने से रोकना चाहते हैं, तो उन्हें बाध्य होकर दक्षिण अफ्रीकी पेटेंट कानून को चुनौती देने से पीछे हटना पड़ा।

भारी खपत के इस युग में, उपभोक्ता द्वारा बहिष्कार निगमों पर भारी दबाव डाल सकता है, क्योंकि इसका उनके मुनाफे पर तत्काल असर पड़ता है। पाकिस्तान और बांगलादेश में गलीचा तथा फुटबाल निर्माण–उद्योग में निगमो को बच्चों से काम कराने से रोकने में उपभोक्ता बहिष्कार को पर्याप्त सफलता मिली है। इसी तरह नाइकी और अन्य कम्पनियों – जो अपने उत्पादन का कुछ हिस्सा ऐसी कंपनियों द्वारा बनवाते थे जहाँ शोषित मज़दूर कम वेतनों पर काम करते थे–के खिलाफ अभियान और जीन परिष्कृत खाद्यों की बिक्री के खिलाफ चलाए गए अभियान भी सफलता प्राप्त कर चुके हैं।

यही वजह है कि निगमों ने अब स्वयं ही मानवाधिकारों की बात करना आरम्भ कर दिया है। अनेक कम्पनियों ने गुणवत्ता, श्रममानकों, वेतननीति और पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में स्वैच्छिक आचार संहिता अपनाने पर सहमति व्यक्त की है। हाल के वर्षों में, अनेक संगठन यह तय करने की दिशा में सक्रिय रहे हैं कि कम्पनियों द्वारा मानवाधिकारों का दायित्व कैसे पूरा किया जा सकता है।[311] एक ज़िम्मेदार आचार संहिता को आकार देना इन प्रयासों का सामान्य लक्षण है। इसमें निहित सिद्धान्त दोतरफा हैं। पहला यह कि कम्पनियां यह महसूस करेंगी कि इन दिशा–निर्देशों से सार्वजनिक रूप से जुड़ने में उन्हें अपेक्षाकृत लाभ होगा। दूसरे, अन्य पक्षों द्वारा स्थापित सिद्धान्तों और दिशा–निर्देशों को अपनाने से कम्पनियों की कार्यकुशलता बढ़ेगी।

किन्तु, गतिशील कॉर्पोरेट क्षेत्र के प्रयासों के लिए सीधे दिशा–निर्देश तैयार करना इतना आसान नहीं होगा जैसे गैर–कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, कर्मचारियों को अवकाश देना ताकि वे स्वयंसेवी संगठनों की सहायता कर सकें, या रोजगार के लिए अपंगों या उपेक्षित लोगों की तलाश करना। इसके अलावा, भ्रष्टाचार जैसे गुप्त व्यवहार के चलते निन्दा या प्रशंसा की तकनीक भी कारागर सिद्ध नहीं होगी।

कुल मिलाकर निगमों को मानवाधिकारों के प्रति उत्तरदायी बनाने के प्रयासों को सीमित सफलता ही मिली है। सस्ते वेतन पर काम करने वाले मज़दूरों का दोहन करने और अंतर्राष्ट्रीय मानकों से छुटकारा पाने में गरीब देशों के निगमों और सरकारों का समान हित रहा है। निगमों की गतिविधियों पर निगरानी रखना बड़ा कठिन है, खासकर उस स्थिति में जबकि वे काफी काम बाहर से करा लेते हैं। विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा को देखते हुए यह पता चलता है कि निगम या सरकार अपनी तरफ से स्वयं ज़्यादा कुछ नहीं कर पाते, इसका खास उदाहरण जापानी कम्पनियों के मामले में देखा जा सकता है। उन्होंने कल्याण संबंधी वे नीतियां हाल के वर्षो में या तो छोड़ दी हैं अथवा कम कर दी हैं, जिनके लिए वे विश्वभर में जानी जाती रही हैं।

आने वाले समय में मानवाधिकारों पर बुरा असर डालने वाली निगमों की नीतियों और व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का सहारा लेना होगा। ऐसी कोई सैद्धांतिक या व्यावहारिक वजह नहीं है कि निगमों को मानवाधिकार कानूनों के दायरे मे ंन लाया जा सके। वास्तव में, मानवाधिकारों से सम्बद्ध सार्वभौम घोषणा में एक सामान्य सिद्धान्त दिया गया है, जिसके अनुसार ''समाज का प्रत्येक व्यक्ति और *अंग* (बल दिया गया) इस बात के लिए प्रयास करेगा कि उनके सार्वभौम मानवाधिकारों को मान्यता मिले और उनका पालन किया जाये।'' किन्तु, मानवाधिकारो के संरक्षण और प्रोत्साहन का जो दायित्व राष्ट्रों को सौंपा गया है, उसे तभी पूरा किया जा सकेगा जबकि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय कम्पनियों की कार्यप्रणाली को नियंत्रित करेगा। कभी–कभी कोई संधि राष्ट्रों से तत्काल अपेक्षा करती है कि वे इस तरह के आचरण पर नियंत्रण करें, जैसे महिलाओं के साथ भेदभाव दूर करने संबंधी समझौता (सी ई डी ए डब्ल्यू) राष्ट्रों से अपेक्षा करता है कि वे ''किसी भी व्यक्ति, संगठन या उद्यम द्वारा महिलाओं के साथ भेदभाव रोकने के लिए सभी आवश्यक उपाय करें''।[312] इसी तरह भोजन के अधिकार के बारे में आई सी ई एस सी आर में कहा गया है कि ''राष्ट्रों को यह सुनिश्चित करने के लिए समुचित उपाय करने चाहिए कि निजी क्षेत्र और नागरिक समाज की गतिविधियां आहार के अधिकार के अनुरूप हों''।[313]

लाभार्थी

वर्तमान में कुछ खास समूह हैं जिनके अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार के ढांचे के मौजूदा नियमों में समुचित मान्यता प्रदान नहीं की गई है। इनमें दो समूह वृद्धों और मूलनिवासियों के हैं।

वृद्धों की विशिष्ट स्थिति, खासकर ऐसे वृद्ध जो गरीब हैं, निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीय कानून के सोच–विचार का विषय होना चाहिए। फिलहाल, वृद्धों के अधिकारों के बारे में कोई समझौता नहीं है। 1991 में संयुक्त राष्ट्र ने वृद्धों के लिए कुछ सिद्धान्तों को स्वीकार किया था, जो बाध्यकारी नहीं थे। इनमें गरीबी को कम करने के प्रयासों को प्राथमिकता दी गई है और सन् 2015 तक वृद्ध जनों में गरीबी को 50 प्रतिशत घटाने का लक्ष्य तय किया गया है।[314] सन् 2002 में हुए वृद्धावस्था पर विश्वसम्मेलन की तैयारी के अन्तर्गत 'उत्पादक वृद्धावस्था' (productive ageing) की अवधारणा प्रस्तावित की गई जिसके आधारभूत मानदंड, खासकर वृद्धों के अधिकारों के बारे में मानदंड तय किए गए। उन्हें निष्क्रिय पीड़ित व्यक्ति नहीं, बल्कि समाज में योगदान करने वाले सदस्यों के रूप में देखा जाये, और उनकी स्थिति के अनुसार खास देखभाल और अधिकारों की गारंटी दी जाये।

अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से मूलनिवासी समुदायों के अधिकार अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के 1991 के 'स्वतंत्र देशों में मूलनिवासी और जनजातीय लोगों के अधिकारों से सम्बद्ध समझौते (ILO Convention Concerning Indigenous & Tribal Peoples in Independent Countries 1991) के तहत अनुशासित हैं। हालांकि 1957 के समझौते की तुलना में 1991 का समझौता काफी आधुनिक है, लेकिन इसकी आलोचना 'पैतृकतावादी'[315] कहकर की गई है और इससे संबंधित बातचीत में मूलनिवासी लोगों की सीमित भागीदारी थी। मानक निर्धारित करने की एक अन्य प्रक्रिया : मूलनिवासी जनों को मानवाधिकारों की संयुक्त राष्ट्र घोषणा के मसौदे [316] (Draft UN Declaration on the Rights of Indigenous Peoples) में इन खामियों को दूर किया जाना था। इस घोषणा में उनके आत्मनिर्णय का अधिकार शामिल किया गया। इसके अन्तर्गत वे मुक्त रूप से अपना राजनीतिक भाग्य निर्धारित कर सकते है और स्वतंत्र रूप से आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास कर सकते हैं।"[317] आत्मनिर्णय का सिद्धान्त उन्हें उनके आन्तरिक और स्थानीय मामलों में स्वायत्तता या स्वशासन का अधिकार" प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियों और गैर–सदस्यों के प्रवेश पर नियंत्रण का अधिकार शामिल है।[318] यह घोषणा उनके "सामूहिक अधिकारों"[319] और विशिष्ट राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप को बनाए रखने और उसे सुदृढ़ करने के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है।[320] घोषणा का मसौदा काफी सक्षम है, और फिलहाल विचाराधीन है। विश्व समुदाय के देशों द्वारा उसका अनुसमर्थन अभी होना है।

हस्ताक्षरों की स्थिति

14 जून 2001 की स्थिति के अनुसार राष्ट्रमंडल के निम्नांकित देशों ने आईसीईएससीआर पर न तो हस्ताक्षर किए हैं और न ही उसकी पुष्टि की हैः ऐंटीगुआ और बारबुड़ा, बहामास, बोत्स्वाना, ब्रूनेई दारूस्सलाम, कूक आइलैंड, फीजी, किरिबाटी, मलेशिया, मालदीव, मोज़ाम्बिक, नौरू, पाकिस्तान, पापुआ न्यूगिनी, सैमोआ, सिंगापुर, सैंट किट्स और सेंट नेविस, सेंटलुसिआ, स्वाज़ीलैंड, टोंगा, तुवालु और वानुआतू। उपरोक्त तारीख तक दक्षिण अफ्रीका और बेलिज ने हस्ताक्षर तो किए, लेकिन पुष्टि नहीं की थी।[321] राष्ट्रमंडल के अनेक ऐसे देश हैं जिन्होंने आईसीईएससीआर पर हस्ताक्षर आपत्तियों या शर्तों के साथ किए हैं। अनेक आपत्तियों का संबंध प्रसूतिलाभों और पुरूष तथा महिला को समान दिहाड़ी दिए जाने के बारे में हैं (बारबेडोस, केन्या, न्यूज़ीलैंड, ब्रिटेन)।

हरारे घोषणा में राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों ने इस बात की फिर से पुष्टि की कि राष्ट्रमंडल की विशेष शक्ति इसके सदस्यों की विविधता और सांझी भाषा, संस्कृति और कानून के शासन (rule of law) की परंपराओं के बीच संयोजन में है। अभी तक केवल एक राष्ट्रमंडल देश, फीजी ने 1991 के अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं और गिनी–चुनी राष्ट्रमंडल सरकारों ने मूलनिवासी लोगों के अधिकारों की संयुक्त राष्ट्र घोषणा के मसौदे को स्वीकार किए जाने की प्रक्रिया में हिस्सा लिया है।

प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संगठन मूलनिवासी लोगों के अधिकारों और संस्कृतियों को परिभाषित करने और उनकी रक्षा करने में जी–जान से जुटे हैं और उनके खिलाफ जातिगत और नस्लवादी भेदभाव समाप्त करने में लगे हैं, लेकिन दुनिया के मूलनिवासी जनों की एक तिहाई आबादी वाले राष्ट्रमंडल का रवैया मूलनिवासी और जनजातीय लोगों के बारे में अभी तक स्पष्ट नहीं है। मूलनिवासी जनों के खिलाफ

cyan black

भेदभाव और जातिवाद समाप्त करने के लिए राष्ट्रमंडल देशों ने अलग–अलग खास नीतियां बनायी हैं, किन्तु इस मुददे पर राष्ट्रमंडलव्यापी प्रतिबद्वता व्यक्त नहीं की गयी है। इतना ही नहीं, राष्ट्रमंडल ने कोई ऐसा सैद्धान्तिक ढांचा भी तैयार नहीं किया है जो सदस्य देशों को स्थानीय स्तर पर उपयुक्त मूलनिवासी नीति तैयार करने में सहायता और प्रोत्साहन दे सके। राष्ट्रमंडल का कोई ऐसा प्रकाशन नहीं है जिसमें सदस्य देशों के मूलनिवासी लोगों की वर्तमान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का वर्णन हो और राष्ट्रमंडल सचिवालय में ऐसा कोई प्रशासनिक तंत्र नहीं है जो उन्हें विशेष जानकारी, सहायता या समर्थन दे सके।[322]

मानवाधिकार –व्यवस्था का प्रतिरोध

राष्ट्रों को उस संधि निकाय का अनुशासन अवश्य मानना चाहिए, जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर किए हों।

मार्च 2000 में 'नस्लीय भेद भाव उन्मूलन समिति (Committee on the Elimination of Racial Discrimination) ने आस्ट्रेलिया में आदिवासियों (अबोरीजिनल्स) के अधिकारों के संबंध में आस्ट्रेलिया सरकार की आलोचना की। आलोचना में इस बात को उजागर किया गया था कि सरकार ने अतीत में आदिवासी बच्चों को उनके माता–पिता से जबरन अलग किए जाने पर खेद व्यक्त नहीं किया और इतना ही नहीं पिछले दो वर्ष से समिति को आस्ट्रेलिया यात्रा की अनुमति भी प्रदान नहीं की।

समिति की आलोचना को अनिवार्य समझने की बजाय आस्ट्रेलिया सरकार ने ऐसी प्रतिक्रिया व्यक्त की जो संधि प्रणाली की अवमानना थी। विदेशमंत्री अलेक्ज़ेंडर डौनर ने कहा : "जो लोग आस्ट्रेलिया सरकार की आलोचना करते हैं, उन्हें इस मुद्दे पर ध्यान देने की जरूरत है : क्या वे वास्तव में यह सोचते हैं कि संयुक्त राष्ट्र की एक समिति के लिए यह उचित है कि वह ऐसी बहस शुरू करे कि प्रधान मंत्री को 'अपहृत पीढ़ी (stolen generation) के बारे में खेद व्यक्त करना चाहिए या नहीं? खास कर इस बात को देखते हुए कि समिति में क्यूबा , चीन और पाकिस्तान जैसे देशों के सदस्य भी हैं।" आस्ट्रेलिया सरकार इस हद तक जा पहुंची कि उसने समझौते से हटने की धमकी तक दे डाली और संयुक्त राष्ट्र संधि–निकाय प्रणाली के कामकाज की समीक्षा शुरू कर दी ।[323]

इसी उदासीनता की वजह से, समझौते के लिए बहुत कम समर्थन जुट पाया है। उदाहरण के लिए, वर्ष 2000 में जिनेवा में कार्यदल की छठी बैठक में मात्र 9 राष्ट्रमंडल देशों ने हिस्सा लिया। ये थे – आस्ट्रेलिया, बांगलादेश, कनाडा, भारत, मलेशिया, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका और ब्रिटेन। छठी बैठक में घोषणा के प्रति दृष्टिकोण के बारे में राष्ट्रमंडल सरकारों के शिष्टमंडलों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है : पहले वर्ग में वे देश शामिल हैं जो विचारणीय प्रारूप के सभी या कुछ अनुच्छेदों को स्वीकार किये जाने के पक्ष में हैं (पाकिस्तान), दूसरे वर्ग में खास अनुच्छेदों में वर्णित सिद्धान्तों का समर्थन करने वाले किन्तु वर्तमान पाठ में संशोधन की मांग करने वाले देश (न्यूज़ीलैंड, बांगलादेश और कनाडा), और तीसरे वर्ग में घोषणा में निहित मूलभूत सिद्धान्तों को चुनौती, खास कर, आत्म निर्णय की अवधारणा, मूलनिवासी जनों की भाषा और/या सामूहिक अधिकारों को मान्यता को चुनौती देने वाले (आस्ट्रेलिया और ब्रिटेन) देश थे। छठी बैठक में सर्वाधिक सक्रिय राष्ट्रमंडल देशों में कनाडा, न्यूजीलैंड और ब्रिटेन शामिल थे। बांगलादेश और पाकिस्तान बहुत ही कम सक्रिय थे, जबकि भारत और दक्षिण अफ्रीका चुप रहे। फीजी, केन्या और नाइजीरिया के सरकारी शिष्टमंडल, जिन्होंने पिछले अधिवेशन में हिस्सा लिया था, बैठक में मौजूद नहीं थे।

गरीबी दूर करने के प्रति वचनबद्धता

तंत्र का निर्माण

सदस्य राष्ट्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और प्रसंविदाओं पर बिना किसी प्रतिबंधात्मक घोषणाओं और उनके अनुरूप दायित्वों का निर्वाह करने के लिए स्वदेशी कानूनो में संशोधन की शर्त के साथ हस्ताक्षर किया जाना, समझौतों के बारे में नियमित रूप से रिपोर्ट करने और संबंधित करारों पर हस्ताक्षर करने की सहमति, जिससे अलग–अलग राष्ट्रों के खिलाफ शिकायतों की सुनवाई की जा सकती है, आदि ऐसे तथ्य हैं जो मानवाधिकारों के प्रति वचनबद्धता के स्पष्ट संकेत हैं। किन्तु अभी भी कुछ राष्ट्रमंडल देश हैं, जो अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों खासकर आई सी ई एस सी आर के प्रति औपचारिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में संकोच कर रहे हैं।

संस्थान और प्रक्रिया निर्माण

सी ई एस सी आर के पर्यवेक्षीय कार्य में राष्ट्रों की वचनबद्धता की विशेष आवश्यकता है ताकि उसके हाथ मज़बूत किए जा सकें। इसे संसाधनों के अभाव और विशेषज्ञ स्टॉफ की कमी का सामना करना पड़ रहा है। समिति स्वतंत्र रूप से शिकायतें प्राप्त नहीं कर सकती।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

विधिवेत्ताओं के अंतर्राष्ट्रीय आयोग (International Commission of Jurists) ने कहा है कि ''अगर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को हासिल करने के गंभीर प्रयास करने हैं तो विधिशास्त्रियों का एक महत्वपूर्ण संगठन विकसित करना अपरिहार्य है, जो अलग– अलग मामलों की पड़ताल की व्यवस्था से विकसित किया जा सकता है। '' प्रकरण–आधारित कानून विकसित करने वाली व्यक्तिगत शिकायत प्रणाली की स्थापना, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के वास्तविक अर्थ और सीमाओं को परिभाषित करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका होगा। सन् 1993 के विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में आई सी ई एस सी आर को एक ऐच्छिक शिकायत कार्यप्रणाली से जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया गया था– जिससे व्यक्तिगत शिकायतों पर विचार करने की व्यवस्था बन सके।[324] करार के प्रारूप पर फिलहाल संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग विचार कर रहा है।[325] आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के लिए अंतर्राष्ट्रीय निगरानी प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए इस करार पर हस्ताक्षर होना और इसका अनुसमर्थन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। अगर राष्ट्रमंडल एक संगठन के नाते सदस्य देशों में गरीबी दूर करने के प्रति गंभीर है, तो उसे इस ऐच्छिक करार को देशों द्वारा शीघ्र अपनाए जाने का समर्थन करना चाहिए।

कारगर निगरानी व्यवस्था बनाने के लिए समिति की प्रणाली को राजनीतिक समर्थन की आवश्यकता है। समिति के फैसलों और रिपोर्टों को प्रभावशाली बनाने के लिए राज्यों को हर संभव प्रयास करने चाहिए। इसका अभिप्राय है कि सदस्य राष्ट्र समिति को नियमित रूप से रिपोर्ट भेजें, आलोचना के प्रति रचनात्मक रवैया अपनाएं और वास्तव में अपने यहां मूल्यांकन के लिए समिति को आमंत्रित करें, ताकि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखी जा सके। लेकिन, हमेशा ऐसा नहीं होता।

यहां भी राष्ट्रमंडल को अपनी भूमिका का निर्वाह करना होगा। इसकी मानवाधिकार इकाई (Human Rights Unit) यह सुनिश्चित कर सकती है कि समिति की सामान्य टिप्पणियों और देश द्वारा की गई टिप्पणियों का अधिकतम प्रचार कराया जाये और रिपोर्टों के संदर्भ में दिए गए सुझावों और की गई सिफारिशों की समीक्षा की जाये और राष्ट्रों को प्रोत्साहित किया जाये कि वे उन मानकों का अधिक ध्यानपूर्वक पालन करें, जिन पर उन्होंने सहमति व्यक्त की है।

राष्ट्रमंडल की स्वयं की निगरानी व्यवस्था की समीक्षा की जा रही है। विदेशमंत्रियों से बनी इस निगरानी व्यवस्था को कोई स्थाई सचिवालय अथवा विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं है। राष्ट्रमंडल मंत्रीस्तरीय कार्यदल (Commonwealth Ministerial Action Group - सी एम ए जी) ने फैसला किया है कि वह सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में नहीं बोलेगा। ऐसा करके सी एम ए जी ने राष्ट्रमंडल के उन मूलभूत सिद्धान्तों की उपेक्षा की है, जिनमें कहा गया था कि ''विश्व के बहुसंख्य लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए आर्थिक और सामजिक विकास महत्वपूर्ण और अनिवार्य है और इसके लिए ज़रूरी है कि सदस्य देशों के बीच जीवन स्तरों में विद्यमान व्यापक असमानताएं दूर करने के लिए निरन्तर प्रयास किए जायें।'' इन सिद्धान्तों की पुनः पुष्टि करते हुए हरारे घोषणा में संकल्प व्यक्त किया गया कि राष्ट्रमंडल विशेष रूप से ''मानवाधिकारों का सम्मान करते हुए विकास के लाभों का विस्तार'' करने पर ध्यान केन्द्रित करते हुए'' नए उत्साह'' के साथ कार्य करेगा। उच्च स्तरीय समीक्षा समूह (High Level Review Group - एच एल आर जी) को सी एम ए जी के फैसले का पुनरीक्षण करते समय सदस्य राष्ट्रों में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने की सी एम ए जी की क्षमता बढ़ाने की सिफारिश करनी चाहिए। सी एम ए जी का कोई विशेषज्ञ न होने के कारण यह स्वयं सदस्य राष्ट्रों द्वारा मूलभूत सिद्धान्तों का अनुपालन करने की स्थिति का मूल्यांकन नहीं कर सकता। इस संदर्भ में एच एल आर जी को ब्रिस्बेन में शासनाध्यक्षों से सिफारिश करनी चाहिए कि सचिवालय सी एम ए जी द्वारा समय–समय पर सदस्य राष्ट्रों में इस बात की समीक्षा की व्यवस्था करे कि वे अपने लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रति कितने वचनबद्ध हैं। सी एम ए जी के लिए मिनी सचिवालय में मानवाधिकार इकाई का प्रावधान हो और उसका नेतृत्व मानवाधिकारों से सम्बद्ध राष्ट्रमंडल उच्चायुक्त द्वारा किया जाये, या ऐसा न होने पर स्वयं महासचिव (Commonwealth Secretary General) इसका नेतृत्व करें।

अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर अधिकारों का ढांचा और सी एम ए जी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, लेकिन मानवाधिकार लागू करने में वे कभी भी एक विशिष्ट या अंतिम उपाय नहीं हो सकते। अधिक महत्वपूर्ण है घरेलू स्तर पर अधिकारों को लागू करना। घरेलू स्तर पर आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को बढावा देने के माध्यमों के अन्तर्गत ऐसे मानवाधिकार आयोग, जो कारगर हों और जिन तक आसानी से पहुंचा

cyan black

जा सके, और भ्रष्टाचार पर निगरानी रखने के लिए लोकायुक्त (Ombudsman) की नियुक्ति जैसे उपाय शामिल किए जाने चाहिए। इन उपायों से अधिकारों के लिए मज़बूत ढांचा तैयार करने में मदद मिलेगी–जो सामान्यतः पारदर्शी और भागीदारी पूर्ण प्रशासन प्रणाली और सरकार में भी संभव हो सकता हैं।

यह भी ज़रूरी है कि सदस्य राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को अपने संविधानों में पूर्ण न्यायोचित मानवाधिकारों के रूप में शामिल करें या नई न्यायिक व्याख्या के तहत उन्हें कानून से जोड़ने की व्यवस्था करें।

अनेक लोगों, खासकर गरीबों के लिए, अदालत तक पहुंचना आज भी एक अंतिम उपाय ही है। किन्तु कानूनी सहायता और अन्य उपायों से, यह सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाने चाहिए कि अधिकारों को लागू करने के लिए अदालतों जैसे समुचित मंच सभी को उपलब्ध कराये जायें।

अदालतों को भी अपनी भूमिका अवश्य निभानी चाहिए। सभी राष्ट्रमंडल देशों में विस्तार से लागू होने वाली विभिन्न सामान्य विधि व्यवस्था (common law system) अपनी प्रभावशीलता के लिए न्यायपालिका पर निर्भर है। अदालतें आम तौर पर प्रक्रिया संबंधी मानदंड निर्धारित करती हैं। पिछले 20 वर्षों में हमने देखा है कि अनेक देशों के न्यायालयों ने बड़े पैमाने पर आधारों का विस्तार किया है जिनके जरिए समाज के गरीब और उत्पीड़ित क्षेत्र के लोग उनसे संपर्क कर सकते हैं। भारत के उच्चतम न्यायालय से प्रारंभ हुआ 'जनहित याचिका आंदोलन' (public interest litigation movement) अब वहां की निचली अदालतों तक पहुंच गया है और बांगलादेश, पाकिस्तान तथा श्रीलंका सहित कई अन्य देशों के न्यायायलों ने इसे अपनाया है। इसके कुछ सबसे उपयोगी सिद्धांतों को दक्षिण अफ्रीका के संविधान में भी सम्मिलित कर लिया गया है।

राष्ट्रमंडल में मानवाधिकार आयोगों का विकास जहां इस बात का प्रतीक है कि किसी देश की छवि के लिए मानवाधिकार कितने उपयोगी हैं, वहीं इस बात का भी संकेत देता है कि मानवाधिकारों का अधिकाधिक उल्लंघन होने लगा है। मानवाधिकार आयोग किसी राष्ट्र की सीमाओं के अंदर नागरिकों के मानवाधिकारों को संरक्षण व बढ़ावा देने के मूल उद्देश्य से गठित स्वतंत्र संवैधानिक या वैधानिक संगठन हैं। अपने को सौंपे गए कार्यक्षेत्र के अनुसार मानवाधिकार आयोग गरीबी उन्मूलन में कई तरह से मदद कर सकते हैं। वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के उल्लंघन की जांच–पड़ताल कर इसकी रोकथाम के लिए उपाय सुझा सकते हैं। लोगों में जागृति पैदा करने और इसे बढ़ावा देने में योगदान कर सकते हैं और सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों की निगरानी करके यह पता लगा सकते हैं कि ये किस सीमा तक इनको बढ़ावा देती हैं और कितना इनके उल्लंघन से बचती हैं। जहां न्यायालयों तक पहुंचना कठिन है, बहुत दूर हैं, कानून जटिल हैं और कानूनी प्रक्रियाएं धीमी और महंगी हैं, ऐसे देशों में तो यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है। आम लोगों की पहुंच के दायरे में आने वाले सुदृढ़ आयोग गरीबों को और अधिक सेवाएं उपलब्ध करा सकते हैं।

घाना, दक्षिण अफ्रीका, जाम्बिया और नामीबिया के अलावा कई अन्य देशों के मानवाधिकार आयोगों को सामाजिक–आर्थिक अधिकारों के बारे में विशेष रूप से जांच–पड़ताल करने का दायित्व सौंपा गया है। मज़बूत आयोगों से सामाजिक–आर्थिक अधिकारों के लक्ष्य को पूरा करने में काफी मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, घाना के मानवाधिकार आयोग को जो मामले मिले हैं, उनमें से अधिकतर सामाजिक–आर्थिक अधिकारों से वंचित किये जाने या भेदभाव से संबंधित मामले हैं। सामाजिक–आर्थिक अधिकारों की रक्षा के संवैधानिक आदेश का अनुपालन करते हुए आयोग ने स्वर्ण खनिज की खुदाई के कारण काफी बड़े इलाके में हुई बरबादी से पर्यावरण संबंधी अधिकारों के उल्लंघन की जांच की है। इससे जल–स्रोत प्रदूषित हुए हैं, खेती वाली जमीन बरबाद हुई और कई समुदाय बेघर हो गये। आयोग ने इस खराबी के प्रकार और विस्तार का पता लगाने, इससे प्रभावित लोगों की परेशानियों को उजागर करने और उपचारात्मक व निवारणात्मक कार्रवाई के उद्देश्य से सार्वजनिक सुनवाई के लिए गैर–सरकारी संगठनों और मज़दूर संघों के साथ सहयोग किया है।

एस ए पीज़ से स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली की तरफ भी आयोग ने लगातार ध्यान आकृष्ट किया है और गरीबों को समुचित स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित करने वाली 'दाम दो, सेवा लो' प्रणाली को समाप्त करने की वकालत की है। इस प्रणाली को पूरी तरह बदलने की हाल की घोषणाओं से संकेत मिलता है कि आयोग सामाजिक–आर्थिक अधिकारों की रक्षा में सक्षम हो सकता है। भ्रष्टाचार

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

के खिलाफ काम करने वाले संगठन के रूप में घाना का आयोग भ्रष्टाचार को सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का उल्लंघना मानता है क्योंकि इस तरह के कार्यों से सरकारें गरीबों को सामाजिक सेवाएं उपलब्ध कराने में काम आने वाले धन से वंचित रह जाएगी, खास तौर पर विकासशील देशों की सरकारें, जिनके संसाधन पहले से ही बहुत सीमित हैं।

दक्षिण अफ्रीकी मानवाधिकार आयोग को जैसी सुदृढ़ संवैधानिक स्थिति प्राप्त है उससे इसे आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की रक्षा में महत्वूपर्ण भूमिका मिल गयी है। यह भूमिका अनुकरणीय है। दक्षिण अफ्रीकी संविधान में अपेक्षा की गयी है कि राज्य के विभिन्न अंग हर साल आयोग को उन उपायों के बारे में बताएंगे जो उन्होंने आवास, स्वास्थ्य–रक्षा, आहार, जल, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा और पर्यावरण जैसे क्षेत्रों में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए उठाए हैं।[326] आयोग को न्यायिक उपायों से इस प्रकार की जवाबदेही सुनिश्चित करने का अधिकार है। आयोग ने सरकारी संगठनों को प्रश्नावलियां भेजने का सिलसिला शुरू किया है। इन प्रश्नावलियों को 'प्रोटोकॉल' कहा जाता है और इनमें सामाजिक–आर्थिक अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए अपनाए जाने वाले उपायों के बारे में विस्तृत सूचना मांगी जाती है। प्रोटोकॉल में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कमज़ोर वर्गों या कच्ची बस्तियों में रहने वालों, बेघर लोगों, महिला–मुखिया वाले परिवारों, विकलांगों, महिलाओं, बच्चों, बुजुर्गों और एच आई वी/एड्स से ग्रस्त लोगों, अतीत में नस्लीय भेदभाव से प्रभावित लोगों को सामाजिक–आर्थिक अधिकार दिलाने के लिए उठाए गए कदमों के बारे में खास तौर पर जानकारी मांगी जाती है। इन रिपोर्टों के माध्यम से आयोग सरकारी विभागों और संगठनों के कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करता है और अपने निष्कर्ष प्रकाशित करता है। वह कामकाज में लगातार सुधार के लिए सरकार की जवाबदेही भी तय करता है।

किस का हुक्म चलता है ...

- 1992 में कैमरून के उत्तर–पश्चिमी प्रांत में आपात स्थिति के बारे में गोपनीय रिपोर्ट में सरकार द्वारा हेराफेरी की आयोग द्वारा आलोचना किये जाने पर, दो साल तक आयोग को दी जाने वाली धनराशि में भारी कटौती कर दी गयी।
- ज़ाम्बिया में धन की कमी का पहले से सामना कर रहे आयोग को उस परिसर से हाथ धोना पड़ा जो उसे देने का वादा किया गया था। कारण यह था कि आयोग ने 1996 के तख्तापलट के आरोप में बंदी बनाए गए लोगों को यातनाएं दिए जाने पर टिप्पणी की थी।[327]

संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने राष्ट्रमंडल देशों समेत पूरे विश्व में मानवाधिकार की स्थापना के लिए काफी कार्य किया है। अंतर्राष्ट्रीय सहमति से निर्धारित पेरिस–सिद्धांत (Paris Principles) नाम के दिशानिर्देशों में वे सिद्धांत बताये गये हैं जिनका पालन करके आयोगों को सरकार के प्रत्यक्ष या परोक्ष नियंत्रण से मुक्त होकर स्वायत्तापूर्वक कार्य करने में बड़ी मदद मिलेगी।

लेकिन राष्ट्रमंडल देशों के अधिकतर मानवाधिकार आयोग बड़ी नाज़ुक संस्थाएं हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सरकारों ने इन आयोगों का गठन बहुत अनिच्छा से किया है। पांच साल के विचार–विमर्श के बावजूद, बांगलादेश में कोई मानवाधिकार आयोग गठित नहीं हो पाया है। इसके अलावा, कार्यपालिका की ओर से बजटसंबंधी नियंत्रणों, स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सक्षम स्टाफ की कमी, जांच–पड़ताल की अपर्याप्त व्यवस्था और आयोगों का कार्यक्षेत्र सीमित रखकर सरकारें आयोगों पर कड़ा नियंत्रण रखती हैं। इतना ही नहीं, आयोग के प्रमुख के पद पर नियुक्ति निष्पक्ष सार्वजनिक प्रक्रिया से नहीं की जाती, बल्कि यह एक निजी समझौते के रूप में की जाती है और ऐसे व्यक्ति को आयुक्त बनाया जाता है जो सरकार की हां में हां मिलाता हो।

केवल मानावाधिकार आयोग गठित कर देने भर से यह नहीं कहा जा सकता कि मानवाधिकारों के लिए सम्मान बढ़ा है। न इससे इस लक्ष्य के प्रति सरकार की किसी प्रामाणिक बचनबद्धता का पता चलता है। मानवाधिकारों के लिए पहले से प्रतिकूल माहौल में कमज़ोर आयोग भी अक्सर मानवाधिकार के लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधा बन जाते हैं, क्योंकि वे व्यवस्था में निराशा और अविश्वास उत्पन्न करते हैं और मावाधिकारों की अवधारणा को उसी तरह बदनाम कर देते हैं जिस तरह न्यायालयों में देरी और भ्रष्टाचार ने कुछ देशों में न्याय दिलाने की प्रणाली की क्षमता के बारे में आशंकाएं उत्पन्न कर दी हैं।

राष्ट्रमंडल को मानवाधिकार आयोग के गठन के सिलसिले में देशों में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभानी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि उसके अधिकार क्षेत्र, गठन और नियुक्ति के मानदंड पेरिस सिद्धांतों से पूरी तरह मेल खाते हों ताकि आयोग अधिकतम कारगर तरीके से कार्य कर सके।

cyan black

यह एक ऐसा कार्य है जो नयी चेतना से समन्वित एच आर यू द्वारा किया जा सकता है। एच आर यू का गठन ''राष्ट्रमंडल में मानवाधिकारों को बढ़ावा देने'' और ''यह सुनिश्चित करने के लिए कि सचिवालय में ही मानवाधिकारों को पूरा महत्व मिले'' किया गया था। सचिवालय के भीतर और बाहर मानवाधिकारों को प्रोत्साहित करने का कार्यक्षेत्र न केवल सीमित है, बल्कि एच आर यू की हाल की परिस्थिति में न तो उसके पास यह मैंडेट पूरा करने के लिए ज़रूरी हैसियत है, ना पर्याप्त संसाधन।

जानने की कोई ज़रूरत नहीं

व्यापार और सहायता के बारे में ताकतवर प्रतिद्वंद्वियों के साथ महत्वपूर्ण समझौते करने वाले राष्ट्र प्रतिनिधि मानवाधिकारों का मुखैटा खो देते हैं।

''...उसने बताया कि अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के साथ बातचीत करते समय आई सी ई एस सी आर का कोई ज़िक्र नहीं किया गया। क्यों नहीं किया? क्योंकि देश की ओर से अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के साथ बातचीत करने वालों को इस प्रसंविदा की कोई जानकारी ही नहीं थी। विदेश मंत्रालय को करार की जानकारी थी और हो सकता है कि विधि मंत्रालय को भी इसकी जानकारी रही हो। लेकिन न तो विदेश मंत्रालय और न विधि मंत्रालय ने विश्व बैंक या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ कोई विचार विमर्श किया। इनके साथ किसने बातचीत की? वित्त मंत्रालय ने। लेकिन वित्त मंत्रालय ने तो सी ई एस सी आर के बारे में सुना ही नहीं था।

–एक किस्सा, पॉल हंट, सी ई एस सी आर के एक सदस्य

एच आर यू ने अतीत में अच्छा कार्य किया है, खास तौर पर सरकारी एजेंसियों को मानवाधिकारों के बारे में शिक्षा और प्रशिक्षण देने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसे अपनी सेवाओं के बारे में नियमित रूप से इतने अनुरोध प्राप्त होते हैं कि वह अक्सर उन्हें पूरा नहीं कर पाता है। यह एक विडम्बना ही कही जा सकती है कि संसाधनों की कमी की समस्या का सामना कर रहे एच आर यू की मेनस्ट्रीमिंग के नाम पर कर्मचारियों की संख्या में लगातार कमी की गयी है और अब यह हालत है कि इसमें केवल दो पद बचे रह गये हैं। 1993 में एच आर यू का व्यापक मूल्यांकन किया गया। इसमें जहां सार्वजनिक कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण योजना की आलोचना की गयी, वहीं जोरदार तरीके से यह अनुरोध भी किया गया कि एच आर यू का विकास किया जाना चाहिए। एक समय था जब यह राष्ट्रमंडल के 'राजनीतिक मामलों के प्रभाग' (Commonwealth Political Affairs Division) से संबद्ध था, लेकिन अब यह 'कानूनी और संवैधानिक मामलों के प्रभाग' (Commonwealth Legal & Constitutional Affairs Division) का हिस्सा है। इसको जो निचला दर्जा दिया गया है उससे तो मानवाधिकारों के प्रति राष्ट्रमंडल की वचनबद्धता की पोल खुल जाती है।

सी एच आर आई का मानना है कि एच आर यू राष्ट्रमंडल के मानवाधिकार संबंधी दावों को सच साबित करने की क्षमता रखता है। इसने *राइट्स मस्ट कम फस्ट* नाम की विस्तृत रिपोर्ट भी तैयार की थी जिसमें बताया गया है कि यह कार्य किस तरह किया जा सकता है। सी एच आर आई की सिफारिशों में जो बातें शामिल हैं, वे हैं : एच आर यू के लिए अलग से वार्षिक न्यूनतम बजट होना चाहिए; इसे सक्रिय रूप से कार्य करना चाहिए; इसे अपने वर्तमान वित्तीय आवंटन में महत्वपूर्ण वृद्धि और विस्तार करना चाहिए और इसके लिए दानदाताओं के अलावा अन्य स्रोतों से धन जुटाना चाहिए तथा साथ ही सलाहकारों व परामर्शदाताओं की मदद से निजी संसाधन भी बढ़ाने चाहिए। सचिवालय के अधीन स्वतंत्र और स्थायी संगठन के रूप में इसे अपनी ऐसी हैसियत सुनिश्चित करनी चाहिए जिसमें वह महासचिव के प्रति सीधे उत्तरदायी हो तथा सभी प्रभागों से सीधा सम्पर्क कर सके। उसे मानवाधिकारों के बारे में अपना खुद का आकलन करके इसे सी एम ए जी को भी भेजना चाहिए और रचनात्मक समालोचक की भूमिका निभानी चाहिए। इसे एक ऐसी प्रणाली बनना चाहिए जो यह सुनिश्चित करे कि मानवाधिकार सचिवालय और उसके तमाम प्रभागों के समस्त कार्यक्रम मानवाधिकारों की ओर उन्मुख हैं। उसे सचिवालय के कामकाज और मानवाधिकारों के प्रति उसकी वचनबद्धता का मूल्यांकन सुशासन के उसी मानदंड के आधार पर करना चाहिए जो लोकतांत्रिक तरीके से काम करते समय अपनाया जाता है। इससे एच आर यू पर सचिवालय में मानवाधिकारों के कारगर तरीके से विकास का उत्तरदायित्व भी रहेगा और इसमें मानवाधिकार संस्कृति को सही अर्थों में संस्थागत रूप देने की क्षमता विकसित होगी। इस तरह, यह इसे समूचे राष्ट्रमंडल में बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

अधिकारों की संस्कृति का निर्माण

मानवाधिकारों की इस 'संस्कृति' पर जरूरत से ज्यादा जोर नहीं दिया जा सकता। सच्चे अर्थों में सुशासन का लक्ष्य केवल कुशल या भ्रष्टाचार से मुक्त सरकार या लोकतांत्रिक सरकार होने से ही प्राप्त नहीं किया जा सकता। लोकतंत्र को कारगर बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे मानवाधिकारों की अवधारणा का सहारा मिले। सूचना की आजादी, स्वतंत्र जनसंचार माध्यम, अभिव्यक्ति और संगठन बनाने की आजादी, सार्वजनिक मामलों में नागरिकों की व्यापक भागीदारी का आश्वासन और जागरूक नागरिक समाज लोकतंत्र संबंधी मानदंडों को पूरा करने के लिए अनिवार्य हैं। इन्हीं से कोई सरकारी प्रणाली गरीबी के मुद्दे पर उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से कार्य कर सकती है।

ऐसा शासन जो अधिकारों की व्यवस्था पर आधारित हो और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा का सम्मान करने जैसे आम मूल्य समाहित हों, वह इस रिपोर्ट के पूवार्ध में बताई गयी महत्वपूर्ण मानवीय समस्याओं को कारगर तरीके से सुलझाने में ज्यादा प्रभावी भूमिका निभा सकता है। इसी कारण, यह ज़रूरी है कि मानवाधिकार दूरदराज़ के कुछ गिने–चुने कर्ताओं या संस्थाओं के दायरे में सीमित होकर न रह जाएं, बल्कि उन्हें किसी राज्य की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीतियां बनाने की प्रक्रिया और जनचेतना में भी स्थान मिले। लेकिन अधिकांश देशों में जो कुछ अभी किया जाना बाकी है, वह यह है कि सरकार और समाज का प्रत्येक वर्ग उन मूल्यों, ज्ञान और साधनों को आत्मसात करे जो मानवाधिकारों के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं।

किसी देश में मानावाधिकारों की संस्कृति के विकास के कई तरीके हो सकते हैं। मानवाधिकारों के बारे में सरकार और इसकी विभिन्न एजेंसियों को और अधिक उत्तरदायी बनाने के लिए विशेष रूप से प्रयास करने की आवश्यकता है। इससे उनके रोजमर्रा के कामकाज में मानवाधिकारों का समावेश होगा और नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में वास्तव में भागीदार बनाने की संभावना बढ़ेगी। इसलिए इसमें पारदर्शिता और जवाबदेही को भी शामिल किया जाना चाहिए और इसमें कानूनी तौर पर सूचना के अधिकार का सहारा मिलना चाहिए। सूचनाएं न सिर्फ मुक्त रूप से उपलब्ध होनी चाहिए, बल्कि समूची जनता

जन–शक्ति

भारत में राजस्थान में सूखे से अक्सर पीड़ित एक गांव में सरकार ने काम के बदले अनाज योजना शुरू की। गांव के ज्यादातर लोग अपनी रोज़ी–रोटी के लिए इसी योजना पर निर्भर थे। सरकार ने गांव के जिन लोगों को सड़कें, सामुदायिक भवन और स्कूलों की इमारतें बनाने, कुंए और छोटी नहरों की खुदाई जैसी स्थानीय विकास परियोजनाओं में दैनिक वेतन मज़दूर के रूप में अनुबंध पर रखा, उन्हें जीवन निर्वाह भर की मज़दूरी मिलती थी। लेकिन ठेकेदार स्थानीय प्रशासन की मिलीभगत से मज़दूरों का शोषण करते थे। हालांकि उन्हें व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की जानकारी थी, मगर उनके पास इसे साबित करने या विभिन्न सरकारी योजनाओं के तहत अपना हक मांगने का कोई रास्ता ही नहीं था। लेकिन ठीक समय पर एक स्थानीय गैर–सरकारी संगठन की मदद से गांव वालों ने प्रशासन से सवाल करने शुरू कर दिये और विकास कार्य, काम पर लगाए गये मजदूरों और अनुमानित व वास्तव में हुए खर्च का ब्यौरा मांगना शुरू कर दिया। गांव वालों का कहना था कि सरकार सार्वजनिक धन का किस प्रकार इस्तेमाल कर रही है, यह जानना उनका हक है।

स्थानीय प्रशासन ने पहले तो ऐसे सवालों का विरोध किया, मगर लगातार मांग के बाद उसे खर्च और रोज़गार के बारे में दस्तावेज़ी सुबूत पेश करने पड़े। गांव वालों को शीघ्र ही इस बात का सुबूत मिल गया कि किस तरह पैसा हड़पा जा रहा था। किस तरह फर्ज़ी नाम जोड़ कर रोज़गार का ब्योरा तैयार किया जा रहा था और ऐसी परियोजनाओं के लिए खर्च दिखाया जा रहा था जो शुरू हुए बिना ही कागजों में पूरी कर ली गयी थीं। इस घोटाले को उजागर करने और हड़पी गयी रकम की वापसी के लिए गांव वालों ने कई जन सुनवाई आयोजित कीं। उन्होंने अपनी मज़दूरी पूरी देने और विकास का पैसा लौटाने की भी मांग की। कुछ मामलों में जनता में बदनामी के डर से इस तरह की गतिविधियों पर पाबंदी लगी और अधिकारियों ने हड़पी हुई बड़ी राशि लौटा दी। धीरे–धीरे, सूचना की मांग के मुद्दे ने जोर पकड़ा और इसने राज्यव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया। परिणामस्वरूप, राज्य सरकार को मजबूर होकर लोगों को सूचना के अधिकार की गारंटी देने वाला कानून बनाना पड़ा। मगर लड़ाई अभी समाप्त नहीं हुई है। कानून बन जाने के बावजूद, आज भी सरकार में गोपनीयता की जो स्वाभाविक संस्कृति चली आ रही है उससे नागरिकों के मुक्त रूप से सूचनाएं प्राप्त करने के अधिकार में बाधा उत्पन्न हुई है।

cyan black

में बड़े पैमाने पर इनका प्रसार किया जाना चाहिए। सूचना के अधिकार के एक हिस्से के रूप में और समूचे समाज को मानवाधिकारों के बारे में शिक्षित करने के प्रयास के तौर पर, दोनों ही तरीकों से इसका प्रसार आवश्यक है। इस तरह मानवाधिकारों के ढांचे को मज़बूत करने और इसे सहारा देने में नागरिक समाज को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

मेनस्ट्रीमिंग

यह महत्वपूर्ण और ज़रूरी है कि न केवल सरकारी अधिकारी, बल्कि बहुपक्षीय कर्ज़दाता संस्थान भी मानवाधिकारों के संदर्भ में अपने अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों को जानें। अधिकारों के बारे में जानकारी की कमी का मतलब है कि विश्वस्तर पर स्वीकार्य मानवाधिकार संबंधी मूल्यों

आपने कर तो दिखाया, अब अपनी राय दीजिए

कानून के निर्माण – चाहे संविधान बनाना हो या संविधान की समीक्षा हो अथवा कोई नया कानून बनाना हो – में हर स्तर पर विभिन्न पृष्ठभूमि व हितों वाले लोगों को शामिल किया जाना चाहिए।

रंगभेद आधारित व्यवस्था से लोकतंत्र में तब्दील होने के बाद दक्षिण अफ्रीका ने अपना संविधान बनाते समय जानबूझ कर बड़ी जटिल और जनोन्मुख प्रक्रिया अपनायी। पहली चुनौती तो यही थी कि उन गरीबों, अनपढ़ लोगों और दूरदराज़ के उन लोगों की क्षमता कैसे बढ़ाई जाए जिनकी कोई बात अब तक नहीं सुनी गयी थी। संविधान सभा का काम शुरू होने से ठीक पहले एक मीडिया अभियान चलाया गया ताकि लोगों को यह संदेश दिया जा सके कि एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रारंभ होने जा रही है, जिसके नतीजों का सब पर असर होगा और हर एक को इस प्रक्रिया को अपनाना चाहिए। समुदाय आधारित राजनीतिक नेटवर्क, स्कूलों में सभाओं, गिरजाघरों में सभाओं, लोकप्रिय रेडियो और टेलीवीजन कार्यक्रमों, निबंध प्रतियोगिताओं, परम्परागत नृत्य और नाटकों से इस संदेश के प्रचार–प्रसार में बड़ी मदद मिली। विभिन्न गतिविधियों के ऊपर 'कॉन्स्टीट्यूशनल टॉक' यानी संवैधानिक बहस शब्द ब्रांड नाम की तरह लिख कर प्रदर्शित किये गये और इसी नाम से एक न्यूजलैटर का भी खूब वितरण किया गया। संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाले अनुरोधों, इसकी कार्रवाई का वृत्तांत, प्रारूप और राय को डेटाबेस के रूप में एक वेबसाइट पर प्रदर्शित किया गया। इसपर जबरदस्त प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुईं। 10,000 लोगों ने शुल्क मुक्त संविधान हॉटलाइन के जरिए संपर्क कर अपने विचार बताए। 17 लाख प्रतिक्रियाएं और सुझाव प्राप्त हुए जिनमें से 11,000 उपयोगी थे। देश भर में आसानी से पढ़े जाने योग्य संविधान के मसौदे की 50 लाख प्रतियां बांटी गयीं और कुछ खास मुद्दों पर लोगों की राय जानने के लिए एक अन्य मीडिया अभियान चलाया गया। इस पर भी संविधान सभा को 2,50,000 प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुईं। अंत में जब आलेख तैयार हो गया तो सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए एक मल्टीमीडिया अभियान बनाया गया। ''सीक्योरिंग योर फ्रीडम'' यानी आपकी आज़ादी के लिए, ''सीक्योरिंग योर राइट्स'' यानी आपके अधिकारों की रक्षा के लिए, ''द न्यू कॉन्स्टीट्यूशन''(नया संविधान) और ''वन ला फॉर वन नेशन'' (एक देश एक कानून) जैसे विज्ञापन वाले नारों से लोगों को नये कानून के तहत उनके अधिकारों के बारे में जानकारी दी गयी। अंत में जब संविधान बन गया तो लोगों को इस समूचे प्रयास के मतलब के बारे में बताया गया। राष्ट्रीय संविधान सप्ताह के दौरान जब उन्हें इसका मतलब समझाया गया तो उनके मन में संविधान के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न हुई। राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन से पता लगा कि मीडिया के माध्यम से दक्षिण अफ्रीका के करीब 65 प्रतिशत वयस्क लोगों से संपर्क किया गया था।

युगांडा ने पूरा एक साल यह पता लगाने में बिता दिया कि क्या लोग नया संविधान चाहते हैं, और इसमें क्या होना चाहिए? लोगों को मुद्दों को समझने में मदद के लिए पुराने संविधान का पुनर्मुद्रण किया गया। इसके साथ ही संवैधानिक मुद्दों के बारे में दिशानिर्देश जारी किये गये और संविधान सभा को सुझाव कैसे भेजे जाएं, यह बताने के लिए एक पुस्तिका प्रकाशित की गयी। महिलाओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। देश की 167 तहसीलों में महिला नेताओं को प्रशिक्षित किया गया ताकि वे अन्य महिलाओं तक पहुंच कर उनको जानकारी दे सकें। उनसे 25,000 सुझाव प्राप्त हुए। प्रत्येक सुझाव का सारांश तैयार किया गया और आयुक्तों के लिए इसका अनुवाद किया गया। महिलाओं की ओर से एक साझा ज्ञापन भी आयोग को दिया गया। इस प्रक्रिया को अधिक से अधिक पारदर्शी बनाने के लिए युगांडा सरकार ने तीन खंड प्रकाशित किये जिनमें आयोग को मिले सुझाव, इनका विश्लेषण, इस पर सिफारिशें और संविधान का प्रारूप दर्ज़ थे।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

के सामान्य ताने–बाने का पूरा–पूरा इस्तेमाल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सहायता और ऋण संबंधी वार्ताओं में नहीं किया जा रहा है। इससे क्षमताओं की दृष्टि से असमान देश सुविधाओं का एकसमान लाभ नहीं उठा पाते जो कि इन देशों को बराबरी का हक दिलाने के लिए बहुत ज़रूरी है। इसी तरह किसी राष्ट्र–राज्य के मौलिक अधिकारों का घोषणापत्र (Bill of Rights) सरकार और नागरिकों के बीच संबंधों में निष्पक्षता के सामान्य सिद्धांतों का आधार उपलब्ध कराता है। लेकिन जो लोग सत्ता में होते हैं, वे उनकी कम ही परवाह करते हैं।

सबसे बड़ी चुनौती यह सुनिश्चित करने की है कि सभी सरकारी अधिकारी न केवल अपनी शक्तियों को समझें, बल्कि मानवाधिकारों तथा मानवीय विकास के बारे में अपनी जिम्मेदारियों का भी खयाल रखें। राष्ट्रमंडल के भीतर सभी जगह सरकारी अधिकारी ऐसी सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आते हैं जो मानवाधिकारों संबंधी मूल्यों के बारे में जागरूक नहीं हैं या फिर उन्हें ज्यादा महत्व नहीं देतीं। इसलिए उन्हें मानवाधिकारों संबंधी प्रशिक्षण देने की विशेष रूप से आवश्यकता है। अगर उन्हें मानवाधिकारों के बारे में औपचारिक रूप से शिक्षा उसी तरह परिश्रमी ढंग से दी जाती है जिस तरह से प्रशासनिक प्रक्रिया के बारे में, तो इससे घरेलू स्तर पर विकास नीतियों का कार्यान्वयन करने के उनके प्रयासों में बड़ा परिवर्तन आ जाएगा तथा जिस बुनियाद पर वे अपने देश का प्रतिनिधित्व विदेशी मंचों में करते आ रहे हैं, उसमें भी मूलभूत रूप से बदलाव होगा।

एक बार इस प्रक्रिया के संस्थागत रूप ले लेने पर तो इस पर अमल करना आसान, कम समय लेने वाला और कम खर्चे वाला हो जाएगा। उपचार की तुलना में रोकथाम निश्चित रूप से बेहतर है। पर्यावरण के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने यह बात स्वीकार कर ली है कि 'रोकथाम का सिद्धांत' बाद में होने वाले नुकसान से निपटने की बजाय कुछ हद तक अधिक कारगर और कुशल है। इसी तरह, सीधे न्याय और समानता लाने के प्रयास करने के बजाय, मानवाधिकारों और गरीबी उन्मूलन के लिए संस्थाओं को न्याय और समानता की धारणा के अनुरूप ढालना कहीं अधिक कठिन है। मीडिया, न्यायाधीशों, अध्यापकों, पुलिस, वकीलों और अन्य महत्वपूर्ण और प्रभावशाली समूहों को साथ लेकर चलने के लिए तत्काल लक्ष्य बनाकर उपाय करने आवश्यक हैं। प्रतिरोध करने वाली व्यवस्था संवैधानिक मूल्यों को आत्मसात कर ले, यह सुनिश्चित करने के लिए कर्मचारियों को उनके व्यावसायिक जीवन के मध्य में प्रशिक्षण और पुनर्प्रशिक्षण के आधार पर पुरस्कार के रूप में पदोन्नति देना एक कारगर तरीका हो सकता है।

कई साल पहले, ब्रिटेन सरकार ने सरकारी अधिकारियों के लिए एक दस्तावेज तैयार किया था। इसका नाम था 'द जज ओवर युअर शोल्डर'। इसे इस तरह तैयार किया गया था कि जनसेवक कानून की दृष्टि से सही मार्ग का अनुसरण करने के बारे में सचेत रहें और उनके फैसलों की न्यायिक समीक्षा की नौबत न आने पाये। लेकिन न केवल नीति निर्धारण और कार्यान्वयन की छानबीन की जानी चाहिए, बल्कि इस बात की भी जांच–पड़ताल होनी चाहिए कि महत्वपूर्ण कानून अधिकारों की नयी व्यवस्था के अनुकूल हैं या नहीं। कुछ राज्यों ने मानवाधिकार संबंधी मानदंडों को विधिप्रणाली में प्रस्थापित करते समय इस बात का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है कि क्या मौजूदा कानून इन मानदंडों के अनुरूप है या नहीं।

भागीदारी

इस समय समुदाय पर सीधा असर डालने वाले सामाजिक कानून बनाते समय, अधिकतर राष्ट्रमंडल देशों की राजनीतिक–संस्कृति, 'विशेषज्ञों' के परामर्श या 'जाने माने लोगों' की राय तथा थोड़े बहुत संसदीय विचार–विमर्श पर आधारित होती है। आम जनता या प्रभावित समुदायों से व्यापक सलाह–मश्विरा करना बोझ समझा जाता है और अव्यावहारिक माना जाता है। अधिकतर राज्यों का मानना है कि केवल शिक्षित अभिजात वर्ग के पास बेहतर जानकारी है। ऐसे में आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इन विशिष्ट प्रक्रियाओं से अक्सर ऐसे कानून बनाए जाते हैं जो अपर्याप्त होते हैं और जिनसे काम नहीं चल पाता। ये जनता की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते, कानून के प्रति सम्मान को कम करते हैं और नागरिकों को उनके प्रतिनिधियों से अलग करते हैं।

कुछ राष्ट्रमंडल देशों ने महत्वपूर्ण कानून बनाने से पहले व्यापक विचार–विमर्श की प्रक्रिया चलायी है। इन देशों में दक्षिण अफ्रीका और युगांडा प्रमुख हैं। वैसे मानवाधिकारों के बारे में जानने के लिए यह प्रक्रिया ही अपने आप में महत्वपूर्ण है। यह सबको महत्व देने के

सिद्धांत को मान्यता देती है और विचारों की विविधता को भी महत्व प्रदान करती है। यह विरोधी विचारों को भी अपने साथ लेकर चलती है और विचारों की मुक्त अभिव्यक्ति का अवकाश प्रदान करती है। कानून बनाने की प्रक्रिया में यह जनता को बताती है कि सीमाएं और छूटें क्या हैं और इस मुद्दे को लेकर चल रही बहस में कहां पर समझौता होता है। इस तरह, अंत में कानून जनता द्वारा मान्य और स्वीकार्य हो जाता है और इसे जटिल समस्या के सर्वसम्मत समाधान के रूप में मान लिया जाता है। दुनिया के सबसे गरीब देशों में से एक–गाम्बिया में सन् 1997 में नागरिक शासन की बहाली के बाद राष्ट्रीय गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रम प्रारंभ किया गया और सहभागितापूर्ण संचार प्रक्रियाओं को इसका आधार बनाया गया।[328]

लेकिन ऐसे प्रयोग बहुत कम और काफी समय के अंतराल से हुए हैं। बहुत से देश विकास के लिए नियंत्रण और निर्देशन के पुराने रास्ते पर चल रहे हैं और घिसेपिटे, अनुचित और अपवादों से भरे कानूनों की भरमार होती जा रही है। चाहे निकृष्ट प्रबंधन हो या राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी हो, सरकारों को सुधार की आवश्यकता है।

राय–मश्विरे पर आधारित भागीदारी के अलावा, सरकारों को यह बात स्वीकार करने की आवश्यकता है कि शासन में वास्तविक जवाबदेही और पारदर्शिता होनी चाहिए। लोकतंत्र की जड़ें मज़बूत करने की प्रक्रिया के तौर पर भी ऐसा होना ज़रूरी है। लेकिन सभी स्तरों पर, चाहे वह अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय हित हों या राष्ट्रीय अथवा स्थानीय अभिजात लोग हों, सभी अभिजात वर्गों की ओर से अधिक जवाबदेही और परदर्शिता के मुद्दे पर जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। इस समय, राष्ट्रमंडल देशों में अधिकतर सूचना सार्वजनिक उपयोग के दायरे में तो रख दी गयी है, मगर यह लोगों को उपलब्ध नहीं है। इसका काफी बड़ा हिस्सा गोपनीयता, वाणिज्य या सुरक्षा की दृष्टि से जनता से दूर रखा जाता है। लेकिन इसका बड़ा भाग इस लिए भी छिपा कर रखा जाता है, क्योंकि आम जनता के हाथों में सूचना आ जाने से सत्ता के समीकरण बदल सकते हैं।

गरीबों के लिए सूचना अस्तित्व का सवाल है। सूचनाओं की कमी से जहां अवसरों का लाभ उठाने की क्षमता और फायदे कम होते हैं, वहीं इससे उत्पीड़न और भ्रष्टाचार के विरुद्ध सुरक्षा भी कम हो जाती है। सूचनाओं तक पहुंच अन्य अधिकार प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

सूचित करना

भागीदारी के लिए उपयुक्त माहौल बनाने के लिए ज़रूरी है कि राष्ट्रमंडल सरकारें प्रत्येक देश में सूचना के अधिकार के कारगर कानून की गारंटी दें। कई राष्ट्रमंडल देशों ने पहले ही ऐसे कानून बना लिए हैं और उनके द्वारा अपनाये जा रहे खुलेपन और सूचनाओं के प्रबंधन

कनाडा में वैकल्पिक बजट

कनाडा में ''वैकल्पिक संघीय बजट' (alternative federal budget) तैयार करने की प्रक्रिया 1994 में प्रारंभ हुई थी। देश के श्रम, सामाजिक और पर्यावरण संबंधी संगठनों और कई सामुदायिक संगठनों के 40 प्रतिनिधियों की एक सभा ने सन् 2000 तक वार्षिक बजट तैयार कर लिया। संबद्ध संगठनों ने यह प्रयास इसलिए किया क्योंकि उनका मानना था कि संघीय और अन्य सरकारें अपने बजट को संतुलित करने की कोशिश में सामाजिक कार्यक्रमों में कटौती करने पर जरूरत से ज्यादा जोर दे रही थीं। गठबंधन ने राय व्यक्त की कि इन बजटों में आम जनता के हितों का ध्यान रखने की बजाय अभिजात व्यावसायिक समुदाय की चिंताओं की ओर अधिक ध्यान दिया गया था। विचार–विमर्श की व्यापक प्रक्रिया के माध्यम से गठबंधन ने वैकल्पिक बजट तैयार किया जिसमें ऋणों और वार्षिक घाटे को कम करने की आवश्यकता का ध्यान रखने के साथ–साथ आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का भी खयाल रखा गया था।

यह बात खास तौर पर ध्यान देने की है कि कनाडा के वैकल्पिक बजट में रोज़गार के उससे कहीं अधिक अवसर बढ़ाने की बात कही गयी थी जितने कि संघीय सरकार के बजट में मुहैया कराने का वादा किया गया था। वैकल्पिक बजट की विशेषज्ञों ने स्वतंत्र रूप से जो समीक्षा की, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें मानवाधिकारों के प्रति तो सम्मान दिखाया ही गया था, यह आर्थिक दृष्टि से भी व्यावहारिक था। ऐसा बताया गया है कि 1998 के वैकल्पिक संघीय बजट का 150 से अधिक अर्थशास्त्रियों ने अनुमोदन किया था। इनमें कनाडा के सबसे अधिक सम्मानित वित्तीय विश्लेषक भी शामिल थे।[329]

संबंधी तौर–तरीकों का अनुसरण किया जा सकता है। कुछ अन्य देश इस तरह का कानून बनाने में या तो जरा भी रुचि नहीं ले रहे हैं या फिर पत्रकारों पर पाबंदियां लगाने और मीडिया की आजादी पर अंकुश लगाने के लिए कानून बनाना चाहते हैं, जैसे कि जिम्बाबवे ने किया था। सन् 1980 में राष्ट्रमंडल के विधिमंत्रियों के सम्मेलन में सूचना की आजादी के महत्व को समझते हुए यह कहा गया थाः

''सूचना की स्वतंत्रता के अनेक लाभ हैं। इससे लोग सार्वजनिक मामलों में आसानी से शामिल हो सकते हैं। आवश्यक सूचनाओं तक लोगों की पहुंच हो जाने पर, वे समझ–बूझ कर सही निर्णय कर सकते हैं और अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का बेहतर इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे सरकार की जवाबदेही बढ़ती है, निर्णय करने की प्रक्रिया में सुधार होता है, निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को बेहतर सूचनाएं प्राप्त होती हैं, नागरिकों के मन में सरकार की विश्वसनीयता बढ़ती है और भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष में काफी मदद मिलती है। यह आजीविका और विकास का एक महत्वपूर्ण मुद्दा भी है, खास तौर पर गरीबी और अधिकारहीनता की स्थिति में।''

इसके करीब दो दशक बाद, सन् 1999 में विधिमंत्रियों की बैठक में राष्ट्रमंडल सूचना के अधिकार के सिद्धांतों को मंजूरी दी गयी। सन् 1999 में डरबन में राष्ट्रमंडल देशों के राष्ट्राध्यक्षों और शासनाध्यक्षों के सम्मेलन में समग्र राष्ट्रमंडल समिति (Commonwealth Committee of the Whole)ने इन सिद्धांतों पर गौर किया। उसके बाद सचिवालय ने आदर्श कानून का प्रारूप तैयार कर लिया है।

मानवाधिकारों की शिक्षा

अधिकांश राष्ट्रमंडल देशों में लोगों को उनके अधिकारों के बारे में सार्वजनिक रूप से सूचना देने के लिए बहुत कम प्रयास हुए हैं। अधिकतर देशों में रेडियो और टेलीविज़न पर सरकार का एकाधिकार होने के बावजूद, ऐसा होना निश्चित रूप से एक बड़ी विफलता है। अधिकारों के बारे में सरकारों ने जिन ढेरों समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं और जो वायदे किये हैं, उन्हें देखते हुए सरकार के लिए कोई विकल्प नहीं है, बल्कि यह उसकी जिम्मेदारी है कि प्रसारण समय के एक हिस्से का उपयोग लोगों को उनके अधिकारों के बारे में सूचना देने के लिए किया जाए। कुछ सम्माननीय अपवादों को छोड़कर, अधिकांश सरकारें मानवाधिकारों के बारे में जानकारी देने के लिए गैर–सरकारी संगठनों के साथ छुटपुट काम करके संतुष्ट हो जाती है। वे मानवाधिकारों को जोरदार तरीके से बढ़ावा देने के लिए जनसंचार माध्यमों का जानबूझ कर उपयोग नहीं करना चाहती। यहां यह बताना गलत नहीं होगा कि इस आसान से उपाय का जानबूझ कर इस्तेमाल नहीं किया जाता क्योंकि नौकरशाह इस विचार का विरोध करते हैं। वे भ्रमित होकर यह मानते हैं कि मानवाधिकारों के बारे में लोगों को अधिक जानकारी देने से समाज में टकराव बढ़ सकता है। वे यह नहीं देख पाते कि इससे समाज में शांति और न्याय की नींव मज़बूत होती है।

1995 से 2004 तक का दशक संयुक्त राष्ट्र माानवाधिकार शिक्षा वर्ष है। सरकारों से यह अपेक्षा की गयी है कि वे आम जनता को मानवाधिकारों के बारे में शिक्षित करने की योजनाएं बनाएंगी और इस कार्य पर धन खर्च करेंगी। यह दशक अपने छठे वर्ष में पहुंच गया है और विभिन्न देशों में जो स्थिति है, उसकी मध्यावधि समीक्षा कोई खास उत्साहवर्धक नहीं है। कुछ एक मानवाधिकार आयोगों के प्रयासों को छोड़कर, व्यवस्थित रूप से ऐसा बहुत कम कार्य हुआ है जिसे महत्वपूर्ण सफलता कहा जा सके। अगर यह हालत है तो राष्ट्रमंडल देशों को अधिकारों की संस्कृति को आत्मसात करने के लिए अभी लम्बा रास्ता तय करना है। केवल कुछ ही सरकारों ने मध्यावधि समीक्षा करने की परवाह की है। इस संबंध में बड़ी तादाद में जो प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं, वे गैर–सरकारी संगठनों की ओर से हैं।

आम जनता के लिए मानवाधिकार शिक्षा उपलब्ध कराने से, लम्बे समय से अधीनता की स्थिति के आदी बने लोगों को अपनी दशा के बारे में नये दृष्टिकोण से विचार करने का मौका मिलेगा। यह अपने आप में सशक्त बनाने वाली और परिवर्तनकारी बात है। मानवाधिकार आयोगों को हमेशा से जनता को मानवाधिकार की शिक्षा देने का विशेष अधिकार मिला हुआ है। उन्हें इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि सरकारें अपने नियंत्रण वाले जनसंचार माध्यमों और कानून बनाने वाली प्रक्रिया का उपयोग कानून के लिए आदर की भावना उत्पन्न करने के लिए करें, न कि भय पैदा करने के लिए। स्कूली पाठ्यक्रम में मानवाधिकारों को शामिल करना, अधिकारों पर आधारित संस्कृति के क्षेत्र में अच्छा निवेश मानवाधिकारों की समस्या का दीर्घकालीन समाधान है।

cyan black

मानवाधिकारों की संस्कृति के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सब इसे आत्मसात करें। नैतिक व्यक्ति नैतिकता के मानदंडों का उपयोग अपने व्यवहार पर लगातार निगरानी रखने के लिए करते हैं। इसी तरह सामूहिक सोच में माानवाधिकार की दृष्टि को आत्मसात करने की आवश्यकता है। गरीब लोगों के जीवन में सच्चे अर्थों में महत्वपूर्ण बदलाव तभी आएंगे, जब सरकारों को रुक कर यह नहीं कहना होगा कि ''आओ, अब मानवाधिकारों की बात करें'', बल्कि यह सामान्य घटनाक्रम के तहत स्वयं घटित होगा। सरकारों को हमेशा मानवाधिकारों का खयाल इसलिए रखना चाहिए क्योंकि यह उनका मुख्य राजनीतिक सरोकार है।

नागरिक समाज की भूमिका

राष्ट्रमंडल देशों में नागरिक समाज को मानवाधिकारों को आगे बढ़ाने और गरीबी उन्मूलन के काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। हालांकि मानवाधिकारों का आश्वासन अभी पूरा नहीं हो पाया है और इसका ढांचा अभी पूरी तरह कारगर नहीं है, लेकिन नागरिक समाज को इस ढांचे में रिक्तियों को भरने के लिए कार्य करना चाहिए और अधिकारसंपन्न लोगों तथा कर्तव्यधारकों के बीच की खाई को पाटना चाहिए।

नागरिक समाज के कई समूह गरीबों और कम शक्तिशाली लोगों की जीवन स्थितियों में सुधार के प्रयासों में अग्रणी हैं। फिर भी, नागरिक समाज के ऐसे समूह जो मानवीय कल्याण संबंधी या विकास संबंधी मुद्दों पर कार्य करते हैं, अधिकारों के बारे में जानते ही नहीं। अगर वे जानते भी हैं, तो भी वे अपनी कार्यसूची पर अमल के लिए अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण नहीं अपनाते। अधिकारों को बार–बार न्यायिक प्रक्रिया के समकक्ष रखकर और अक्सर न्याय उपलब्ध कराने की इसकी क्षमता से असंतुष्ट होकर ऐसे समूह अधिकारों की धारणा का विरोध करते हैं। उन्हें इस संदेह से ऊपर उठना होगा कि मानवाधिकार केवल एक कानूनी प्रक्रिया है जिसका संबंध एक ऐसी संस्था अर्थात न्यायिक व्यवसाय से है जो विश्वसनीय नहीं है। एक तरह से उन्हें कानून के दायरे से निकाल कर मानवाधिकारों की पुनर्स्थापना करनी चाहिए और अधिकारों को लागू करने के लिए कानून की क्षमता को स्वीकार करना चाहिए। उन्हें इस बात का भी अहसास होना चाहिए कि उन्होंने जो मानवीय पीड़ा देखी है, वह न सिर्फ नैतिक दृष्टि से अस्वीकार्य है, बल्कि कानूनी तौर पर भी उचित ठहराने योग्य नहीं है और सार्वजनिक कर्तव्यों की उपेक्षा करने वालों को नतीजे भुगतने पड़ सकते हैं तथा पीड़ितों को मुआवज़ा अदा करना पड़ सकता है।

ऐसी कई चीजें हैं जो नागरिक समाज मानवाधिकारों के संरक्षण और गरीबों के कल्याण की नीतियां अपनाने व उन पर अमल करने के लिए कर सकता है। पहला, इनसे मानवाधिकार के मुद्दे पर आम राय कायम करने में मदद मिलती है और बाद में इनसे मानवाधिकारों संबंधी मानदंडों की व्याख्या में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, उत्पीड़न के विरूद्ध तथा अल्पसंख्यकों के अधिकार के समझौते और मूलनिवासियों के बारे में घोषणापत्र का प्रारूप आदि के बनाने में काफी हद तक गैर–सरकारी संगठनों का योगदान रहा है। उनके हस्तक्षेप के बिना ऐच्छिक करारों को स्वीकार करना बड़ी मुश्किल से संभव होता।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि नागरिक समाज अधिकारों के लिए उन लोगों को पूरी तरह जवाबदेह ठहराए जिन्हें यह दायित्व सौंपा गया है। एक बार मानदंडों पर सहमति हो जाती है, तो वे इन पर अमल करने के कर्तव्यधारकों के प्रयासों पर नज़र रख सकते हैं। नागरिक समाज के समूह नियमित रूप से वैकल्पिक रिपोर्ट (alternative report) तैयार करते हैं और उन्हें संयुक्त राष्ट्र की संधियों की निगरानी करने वाले संगठनों, जैसे सी ई एस सी आर को भेजते हैं। वे संबंधित विशेष निरीक्षकों को रिपोर्ट संकलित करने और इस बारे में अनुसंधान करने में भी मदद करते हैं। वे अपने देश का वैकल्पिक बजट भी तैयार करते हैं। इसमें सामाजिक खर्च के विवरण के साथ–साथ यह भी बताया जाता है कि सरकारें सामाजिक और वित्तीय दृष्टि से उत्तरदायित्वपूर्ण तथा मानवाधिकारों संबंधी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने वाला बजट कैसे तैयार कर सकती हैं। राष्ट्रमंडल के संदर्भ में वे सी एम ए जी को अपनी रपट भेज सकते हैं जिसमें विभिन्न राष्ट्रमंडल शासनों के मानवाधिकार संबंधी रिकार्ड की स्थिति दर्शाई जाती है।

नागरिक समाज के संगठन अपने अभियानों के लिए जनमत जुटाने के साथ, लोगों को भी अपने से जोड़ सकते हैं। चाहे देश में हो या विदेश में, सबसे सफल सामाजिक आंदोलन अपने अभियान में मानवाधिकारों की भाषा का इस्तेमाल करते हैं और न्याय व सुधार के

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

लिए जनसमर्थन जुटाते हैं। अधिकारों के दावों ने विरोध का रूप लिया है और सत्ता को चुनौती दी है। जब तक अधिकारों का एक कार्य कमज़ोर वर्गों को अधिकार संपन्न बनाना है, इसके लिए जनसमर्थन जुटाना अत्यंत आवश्यक है। इससे उपेक्षित और वंचित लोगों को एक आवाज मिल जाती है और उनकी सहभागिता में बढ़ोतरी होती है। मानवाधिकारों ने उन्हें बदलाव का कारगर माध्यम बना दिया है। कारगर तरीके से जागरूकता बढ़ाने से मानवाधिकार आंदोलनकर्ताओं की संख्या भी कई गुना बढ़ जाती है और वास्तविक अर्थों में विकासमान एक ऐसे जनांदोलन को बढ़ावा मिलता है जिसके जरिये हमारे समाज में अधिकारों को गहरी जड़ें जमाने में मदद मिलती है।

विश्व स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर और विषयवस्तु के स्तर पर एक नेटवर्क तैयार करने में मानवाधिकार विशेष रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। अधिकारों की विश्वव्यापी भाषा विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले आंदोलनकर्ताओं के बीच संवाद के एक सामान्य माध्यम का सृजन करती है। इससे बहुत छोटे–छोटे समूह भी आंदोलनकर्ताओं की बड़ी दुनिया से जुड़ सकते हैं। महिलाएं और पर्यावरण के लिए आंदोलन करने वाले नेटवर्क बनाने में विशेष रूप से सफल रहे हैं।

नागरिक समाज के सरकार के साथ हमेशा अच्छे संबंध नहीं रहे हैं। कल्याण कार्यक्रमों को लागू करने में सहयोगी के रूप में तो सरकारें उनसे खुश रहती हैं, मगर अधिकारों की मांग करने वालों या उनका पक्ष समर्थन करने वाले संगठनों से हमेशा सतर्कता बरतते हुए उन पर पाबंदियां लगाने की फिराक में रहती हैं।

वे इन समूहों को तिरस्कारपूर्वक 'मानवाधिकार उद्योग' की संज्ञा देकर अक्सर उन पर अपने निहित स्वार्थों को बढ़ावा देने का आरोप लगाती रही हैं। उनका यह भी आरोप है कि ये समूह अधिकारों को लागू करने में उत्पादन और वितरण की तरह का व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाते हैं। इससे ऐसा लगता है कि उनकी वचनबद्धता अधिकारों के संरक्षण नहीं बल्कि अपने–अपने संगठनों और व्यवस्था में इन संगठनों का और अधिक दबदबा बनाने के प्रति है।[330] लेकिन इस तरह के निंदापूर्ण दृष्टिकोण की कोई आवश्यकता नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानवाधिकार आंदोलन संकुचित हुआ है और अफसरशाही तथा श्रेणीबद्धता जैसी दोषों से दूषित हो गया है।[331] इस दृष्टि से इसका दायरा सीमित हुआ है। इन संगठनों को स्थिति का जायजा लेना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके अपने ढांचे तथा उनकी संस्थागत प्रक्रिया में मानवाधिकारों का समावेश हो। अधिकतर संगठन मानवाधिकारों को लेकर बड़े पैमाने पर सामजिक जनांदोलन छेड़ने में कम दिलचस्पी ले रहे हैं और पैरवी तथा हिमायत करने पर ज़्यादा ध्यान दे रहे हैं। मानवाधिकारों के ढांचे के माध्यम से गरीबी उन्मूलन के लक्ष्य को तभी हासिल किया जा सकेगा जब इसे लोगों तक पहुंचाया जाए। लोगों को इस बात का अहसास कराया जाना चाहिए कि उनका दमन मानवाधिकारों के उल्लंघन से स्पष्ट रूप से जुड़ा हुआ है। संगठित होकर वे अपने अधिकारों का दावा कर सकते हैं और अपने संगठनों व कार्यसूची को उनपर आधारित कर सकते हैं।

वित्तीय विकास : मॉन्टेरे सहमति– संक्षेप में

वर्ष 2002 में संयुक्त राष्ट्र ने मैक्सिको के मॉन्टेरे में एक विशेष सम्मेलन आयोजित किया। इसमें राज्य व सरकार के प्रमुख, मंत्री, अंतर्राष्ट्रीय वित्त एवं व्यापार संस्थाओं के प्रतिनिधि, नागरिक समाज व निजी क्षेत्र के प्रमुख शामिल हुए। सम्मेलन में गरीब देशों में विकास के वित्तपोषण के बारे में भागीदारी द्वारा एक आम राय अपनायी गयी।[332] जबकि सुशासन व संस्थागत सुधार के साथ–साथ गरीबी को कम करने और विकास के लिए उपाय करने व रणनीतियों को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी विकासशील देशों पर होगी, अमीर देश और दानदाता ओ डी ए को अपने सकल घरेलु उत्पाद के 0.7 प्रतिशत के संस्तुत स्तर तक बढ़ायेंगे। और वे एक सुदृढ़ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार माहौल तैयार करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होंगे जहाँ विकसित देशों के बाज़ार तक पहुँचने के मार्ग में विकासशील देशों के निर्यातों में आने वाली बाधाओं को हटा दिया जायेगा। विकसित देश व प्रमुख बहुपक्षीय कर्ज़दाता संस्थान विकासशील देशों में आर्थिक व प्रशासनिक सुधार से संबंधित वित्तीय और तकनीकी सहयोग को बढ़ाने पर राज़ी हो गए। विकसित व विकासशील देशों की इस साझेदारी को 2000 में घोषित सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन के रूप में देखा जा रहा है।

सभी देशों ने गरीबी के उन्मूलन (न केवल उसके स्तर में कमी) को अपना प्रमुख लक्ष्य माना है तथा पूर्णतः मुक्त एवं न्यायसंगत वैश्विक आर्थिक प्रणाली के लिए संपोषणीय आर्थिक वृद्धि व विकास हासिल करने के लिए, वे एक साथ काम करने के लिए राज़ी हुए। यह सर्वानुमति दस्तावेज़ विकास के अधिकार, सुशासन, लिंग समानता सहित मानवाधिकारों के प्रति सम्मान और कानून के शासन को देश की नीति के माहौल के आवश्यक विशेषताओं के रूप में मानता है। संयुक्त राष्ट्र के सचिवालय में 'विकास–वित्तपोषण कार्यालय' (Financing for Development Office) स्थापित किया गया है जो मॉन्टेरे सहमति के कार्यान्वयन पर नज़र रखेगा।

अध्याय –6

राष्ट्रमंडल, मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन

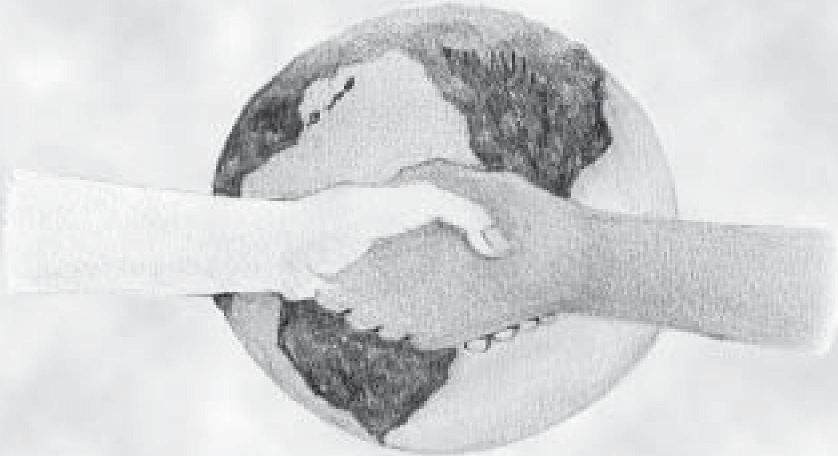

राष्ट्रमंडल के संकल्प और उत्तरदायित्व

विश्व समुदाय की तरह ही राष्ट्रमंडल ने मानवाधिकर और गरीबी उन्मूलन के बारे में अनंत संकल्प लिये हैं। फिर भी, जैसा कि हमने संकेत दिया है, उसके अधिकतर लक्ष्य पूरे नहीं हो पाये हैं।

राष्ट्रमंडल ने गरीबी के दूर न हो पाने से उत्पन्न चुनौती को स्वीकार किया है। सन् 1991 में हरारे में राष्ट्रमंडल ने नये जोश से गरीबी उन्मूलन का बीड़ा उठाया। सन् 1999 में डरबन में एक बार फिर राष्ट्रमंडल को यह स्वीकार करना पड़ा कि गरीबी अभी खत्म नहीं हुई है और करोड़ों लोग भीषण गरीबी में रह रहे हैं। इससे सामाजिक अलगाव और नैतिक उद्देश्य के विफल होने की जो भावना उत्पन्न हुई है उससे न्यायसंगत और स्थिर समाजों की आशा के धुंधलाने की आशंका है।

राष्ट्राध्यक्षों ने बार बार यह विश्वास व्यक्त किया है कि समानता, लोकतंत्र और कानून का शासन एक अच्छे समाज की नींव के पत्थर हैं। एक दशक पहले, उन्होंने ''कानून के तहत व्यक्ति की स्वतंत्रता; लिंग, नस्ल, रंग, धर्म या राजनीतिक मान्यता के आधार पर भेदभाव के बिना नागरिकों के समान अधिकार और अपने समाज के निर्माण में मुक्त साधनों और लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया के माध्यम से भाग लेने के व्यक्ति के अनन्य अधिकार के प्रति'' आस्था की घोषणा की थी । इसके साथ ही उन्होंने ''मानवीय गरिमा और समानता के सिद्धांत'' में भी अपना विश्वास व्यक्त किया था।[333] सन् 1999 में राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों की बैठक में ''शासनाध्यक्षों ने लोकतंत्र, मानवाधिकार, कानून के शासन, स्वतंत्रता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सुशासन जैसी राष्ट्रमंडल की मूल राजनीतिक मान्यताओं के प्रति अपनी वचनबद्धता दोहराई।''[334] उन्होंने एक बार फिर यह कहा था कि मौलिक राजनीतिक मान्यताएं और स्थायी विकास परस्पर निर्भर हैं और एक दूसरे को सुदृढ़ करते हैं साथ ही, आर्थिक और सामाजिक प्रगति लोकतंत्र के स्थायित्व में वृद्धि करती है। ''गरीबों

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

के कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लोकतांत्रिक देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने' का भी उन्होंने आह्वान किया।[335]

शासनाध्यक्षों ने कई अवसरों पर सदस्य राष्ट्रों से मानवाधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं और समझौतों पर हस्ताक्षर करने और उनका अनुसमर्थन करने का भी अनुरोध किया। वैसे राष्ट्रमंडल देशों के शासनाध्यक्षों की बैठकों (चोगम) की श्रृंखला में कई बैठकों के अंत में जारी विज्ञप्तियों में सदस्य देशों से अनुरोध किया जा चुका है कि वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (आई सी ई एस सी आर[336]); नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (आई सी सी पी आर); बच्चों के अधिकारों के बारे में समझौता (सी आर सी[337]); महिलाओं के विरुद्ध हर तरह के भेदभाव की रोकथाम का समझौता (सी ई डी ए डब्ल्यू[338]) और बालश्रम के सबसे बदतर तरीकों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के हाल ही के करार का (ILO Convention on the Worst Forms of Child Labour) अनुसमर्थन करें।[339] ऐसा करते हुए, राष्ट्रमंडल अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार कर रहा है कि ये उपाय गरीबी उल्मूलन के लिए ज़रूरी हैं और वह अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों के प्रति पूरी तरह वचनबद्ध है।

निश्चय ही शासनाध्यक्षों ने गरीबी के विस्तार और गंभीरता पर असंतोष व्यक्त किया है और राष्ट्रमंडल के सदस्य देशों के बीच असमानताओं को दूर करने के लिए कार्य करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। हरारे में उन्होंने ''सबसे कम विकसित देशों में बिगड़ती जा रही सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर गंभीर चिंता व्यक्त की थी।''[340] एडिनबरा राष्ट्रमंडल आर्थिक घोषणा में उन्होंने ''सन् 2015 तक अत्यधिक गरीबी में जीवन बिता रहे लोगों की दशा सुधार कर उनकी संख्या को आधा करने के लिए कार्य करने'' के प्रति सदस्य देशों की सरकारों की वचनबद्धता प्रकट की थी।[341] इसमें इस बात का अहसास भी शामिल था कि उन्हें संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्यों के अनुसार, दानदाता देशों से मिलने वाली सहायता राशि सकल घरेलू उत्पाद के 0.7 प्रतिशत के बराबर कर देनी चाहिए[342] और ''ऋण के भारी बोझ से दबे गरीब देशों'' में निर्धनता कम करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए'' इन देशों को ऋण–राहत के साथ सहायता उपलब्ध करायी जानी चाहिए।[343] और अंततः उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि ''भीषण गरीबी और बढ़ती असमानता के चलते विश्व शांति, सुरक्षा और सामाजिक स्थिरता नहीं आ सकती। इसे ठीक करने के लिए विशेष उपाय करने होंगे और देशों को एकजुट करने में खास तौर पर मदद देनी होगी।''[344] आखिर में एडिनबरा में उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि ''महत्वपूर्ण आर्थिक मंचों पर तमाम आर्थिक फैसले करने में सभी देशों की कारगर भागीदारी अवश्य होनी चाहिए।''[345]

शासनाध्यक्षों ने जनोन्मुख विकास के प्रति अपना विश्वास बार–बार व्यक्त किया है और कहा है कि भागीदारी को मानवाधिकारों को कारगर ढंग से बढ़ावा देने के कार्य से अलग नहीं किया जा सकता। लिमासोल में शासनाध्यक्षों ने फिर यह बात दोहरायी कि ''मानवाधिकारों को बढ़ावा देने में गैर–सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।''[346] जबकि डरबन में उन्होंने ''घोषणा की कि जन–केन्द्रित विकास का अर्थ है लोगों को निर्णय करने वाली प्रक्रिया में सीधे तौर पर शामिल किया जाना चाहिए।''[347]

उन्होंने राष्ट्रमंडल सचिवालय के अंतर्गत मानवाधिकारों के लिए और अधिक संसाधनों के आवंटन का अधिकार देकर इस संगठन के लिए मानवाधिकारों के महत्व को स्वीकार किया है। हरारे विज्ञप्ति में उन्होंने ''सचिवालय से आग्रह किया कि वह अपनी वर्तमान गतिविधियों को और बढ़ावा दे ताकि मानवाधिकारों के हर एक पहलू का विकास हो।''[348] बाद में साइप्रस में उन्होंने ''सचिवालय से कहा कि वह यथा संभव अधिक से अधिक संसाधन आवंटित करे।''[349]

आधी–अधूरी वचनबद्धता

ये बाते बड़ी अच्छी जान पड़ती हैं, लेकिन संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के मुकाबले जो अपनी संधि, रिपोर्टिंग व निगरानी प्रणालियों के ज़रिए मानवाधिकारों के प्रति अपनी वचनबद्धता प्रकट करता है, राष्ट्रमंडल के पास मानवाधिकारों को मूर्तिमान करने के साधन बहुत कम हैं। नाइजीरिया, फीजी या पाकिस्तान की तानाशाही के विरुद्ध की गई कार्रवाई जैसे अत्यंत नाटकीय कदमों और रंगभेद आधारित शासन को समाप्त करने में सम्मानजनक भूमिका जैसे गंभीर राजनीतिक हस्तक्षेपों के बावजूद, मानवाधिकारों के प्रति राष्ट्रमंडल की प्रतिबद्धताएं ढ़ीली–ढ़ाली ही प्रतीत होती हैं। इसके नेता नागरिकों के हितों को बढ़ावा देने की बजाय, अक्सर सहयोगी सरकारों की संवेदनशीलता का सम्मान करने के बारे में अधिक चिंतित दिखाई देते हैं। अतीत में, राष्ट्रमंडल ने सिर्फ ऐसी स्थितियों में

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

कार्रवाई की है जब नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है या जब इनके लिए गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है। मगर आर्थिक और सामाजिक अधिकारों तथा राष्ट्रमंडल नागरिकों की दशा को, चाहे वह कितनी ही दयनीय क्यों न हो, सदस्य देशों की मर्ज़ी पर ही छोड़ दिया गया है। इस तरह इस संबंध में सिर्फ जुबानी जमाखर्च के अलावा और कुछ नहीं हुआ है।

राष्ट्रमंडल में मानवाधिकारों के उल्लंघनों पर निगाह रखने के उद्‌देश्य से संगठन की निगरानी प्रणाली में नयी जान फूंकने के काम के प्रति सामान्यतः अनिच्छा दिखाई देती है। इसके लिए आम तौर पर जो सफाई दी जाती है, वह यह है कि ''संयुक्त राष्ट्र और इसके संगठन अधिकारों के उल्लंघन की जांच करने और इन्हें दुरस्त करने के लिए बड़ी अच्छी स्थिति में हैं, जबकि राष्ट्रमंडल इन क्षेत्रों में कोई तुलनात्मक लाभ न होने से अन्य संगठनों के काम को दोहरा कर विश्व–कार्यसूची को आगे बढ़ाने की बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है।''[350] लेकिन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के कार्यों के दोहराव के बिना आपसी तालमेल के साथ काम करने के लिए राष्ट्रमंडल को अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों के लीमासोल सम्मेलन में राष्ट्रमंडल के शासन प्रमुखों ने सभी सदस्य सरकारों से अनुरोध किया कि वे 1995 तक आई सी ई एस सी आर और आई सी सी पी आर पर हस्ताक्षर कर उन्हें अनुसमर्थित करें।[351] लेकिन 1995 में ऑकलैंड में प्रगति का जायज़ा लेने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। बाद के शिखर सम्मेलनों में तो इन पर हस्ताक्षर करने के लिए कहना भी बंद कर दिया गया। यह बात अभी स्पष्ट नहीं है कि क्या शासनाध्यक्षों ने इन अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के बारे में चिंता करना छोड़ दिया है और क्या उन्हें इस बात का अहसास हो गया है कि उनकी झिड़कियां बड़ी बेअसर साबित हुई हैं। या फिर उन्हें ऐसा लगने लगा है कि किसी भी सदस्य देश में मानवाधिकारों की वास्तविक स्थिति का समझौते पर हस्ताक्षर करने से कोई संबंध नहीं है। इसके बाद 1997 में एडिनबरा में राष्ट्रमंडल ने विकास के अंतर्राष्ट्रीय लक्ष्यों (international development targets) के प्रति वचनबद्धता व्यक्त की। इन लक्ष्यों को अब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में व्यापक रूप से मान्यता मिली हुई है। लेकिन 1999 की डरबन बैठक में हुई प्रगति का कोई जायज़ा नहीं लिया गया। ऐसा लगता है कि राष्ट्रमंडल इस बात का कोई ध्यान नहीं रखता कि उसके अपने ही नारों पर अमल हो रहा है या नहीं।

जहां तक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति वचनबद्धता का सवाल है, विगत वर्षों में राष्ट्रमंडल आम तौर पर निर्धनतम देशों और वहां के नागरिकों के विकास पर जोर देता रहा है। लेकिन राष्ट्रमंडल द्वारा निर्धारित लक्ष्यों में गरीबी उन्मूलन में मानवाधिकारों की भूमिका केन्द्रीय महत्व की नहीं रही है।

सन् 1999 में डरबन में हुए राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन में, जनोन्मुख विकास को केन्द्रीय विषय के रूप में लिया गया। सम्मेलन की फेनकोर्ट घोषणा में कहा गया कि ''गरीबी उन्मूलन संभव है।'' इसमें आग्रह किया गया कि निर्धनतम देशों पर कर्जों का बोझ घटाया जाना चाहिए, विकास सहायता में वृद्धि की जानी चाहिए और इसे ''मानव विकास, गरीबी में कमी और सामान व सेवाओं के लिए विश्व बाजारों के विस्तार के कार्य में भागीदारी हेतु क्षमताओं के सृजन'' पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। लेकिन ऐसा लगता है कि गरीबी उन्मूलन के मुकाबले प्रबंधित वैश्वीकरण के समर्थन को कहीं अधिक महत्व दिया गया है। और गरीबों के प्रति उसकी चिन्ता में अधिकारों का दृष्टिकोण या सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों के मूल्यों की समझ नज़र नहीं आती।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की 50 वीं जयंती के सिलसिले में राष्ट्रमंडल सचिवालय द्वारा एकमात्र समारोह दिसंबर 1998 में अकरा में आयोजित किया गया। इसके दो मुख्य विषय थे–आर्थिक और सामाजिक अधिकार तथा स्कूलों में मानवाधिकार शिक्षा। इसमें राष्ट्रमंडल के करीब आधे सदस्य देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के बारे में एक वक्तव्य सामने आया। लेकिन बाद में इसका बहुत कम प्रचार किया गया। एक प्रस्ताव किया गया था कि इस वक्तव्य को सन् 1999 के प्रारंभ में त्रिनिदाद में होने वाले राष्ट्रमंडल के विधिमंत्रियों की बैठक में पेश किया जाए। लेकिन सचिवालय ने इस प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि विधिमंत्रियों की आर्थिक और सामाजिक अधिकारों में कोई दिलचस्पी नहीं है।

राष्ट्रमंडल सचिवालय ने मानवाधिकारों को कुल मिलाकर कम ही महत्व दिया है। गरीबी दूर करने के इसके प्रयास छुटपुट कार्यक्रम बन कर रह गये हैं और गरीबी पर चौतरफा और भरपूर हमला नहीं हो पाया है।

cyan black

वास्तविकता और शब्दाडंबर में तालमेल

मुख्यतः गरीब राष्ट्रों के संगठन के रुप में राष्ट्रमंडल को अधिकारों के ढांचे की शक्ति के साथ अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर गरीबों की आवाज़ बुलंद कर गरीबी को कारगर तरीके से दूर करने के लक्ष्य के प्रति प्रत्यक्ष तरीकों से एकजुटता प्रकट करनी चाहिए। राष्ट्रमंडल ने पहले ही यह कार्य करने का संकल्प लिया हुआ है। मिलब्रूक राष्ट्रमंडल कार्य योजना[352] में ''शासनाध्यक्षों ने चिंता के प्रमुख विषयों पर आम राय कायम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की बैठकों में औपचारिक और अनौपचारिक विचार–विमर्श'' का अनुमोदन किया। जहां कहीं राष्ट्रमंडल ने एकजुटता के साथ काम करने का मन बनाया है उसे अच्छी सफलता मिली है। इसका एक शानदार उदाहरण वित्तमंत्रियों का रहा है जिन्होंने विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की बैठकों से पहले अपनी वार्षिक बैठकों में बेहद गरीब देशों के कर्जों को माफ करने के लिए अभियान चलाये हैं । राष्ट्रमंडल देशों में गैर–सरकारी संगठनों को एकजुट करने के एक ज़ोरदार प्रयास के तहत, इस अभियान को 2000 के अंत तक अच्छी सफलता मिली। हाल में जिनोआ के जी–8 शिखर सम्मेलन से पहले महासचिव ने प्रत्येक नेता से व्यक्तिगत रूप से बातचीत की और उनसे गरीबी के भारी बोझ से दबे देशों के बारे में ''मानवीय दृष्टिकोण'' अपनाने का आग्रह किया।

अब राष्ट्रमंडल को अपनी इस मान्यता को स्पष्ट कर देना चाहिए कि खुशहाल दुनिया में गरीबी का जारी रहना, सभी प्रकार के मानवाधिकारों – जैसे नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों – का गंभीर उल्लंघन है । उसे अपने आधिकारिक संगठनों, खास तौर पर सचिवालय, को ऐसा अधिकार देना चाहिए कि वह अधिकारों पर आधारित गरीबी उन्मूलन के एकमात्र लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सके; सदस्य देशों को अपने यहां गरीबी दूर करने के लिए अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण अपनाने की राह दिखा सके और मुख्यतः गरीब देशों का संगठन होने के नाते अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर गरीबों के दृष्टिकोण को बुलंद आवाज में प्रस्तुत कर सकें।

अपने संकल्प को अक्षरशः पूरा करने के लिए, राष्ट्रमंडल को अपनी प्रणाली और नीतियों में आमूल परिवर्तन करना चाहिए और इस बात का संकेत देना चाहिए कि गरीबी और मानवाधिकार जैसे मुद्दे उसके लिए केन्द्रीय महत्व के हैं।

मंत्रीस्तरीय राष्ट्रमंडल कार्यदल (सी एम ए जी)

सी एम ए जी, राष्ट्रमंडल की एकमात्र निगरानी प्रणाली है। इसकी स्थापना सन् 1995 में शासनाध्यक्षों द्वारा मिलब्रूक राष्ट्रमंडल कार्य–योजना के तहत की गयी थी। इस 'कार्य–योजना' में सी एम ए जी को इस बात के लिए प्राधिकृत किया गया है कि ''जब कोई सदस्य देश राष्ट्रमंडल की हरारे घोषणा का उल्लंघन कर रहा हो, खास तौर पर जब लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गयी सरकार का असंवैधानिक तरीके से तख्ता पलटा जा रहा हो'', तो वह उचित कार्रवाई करे। सी एम ए जी के काम के रिकार्ड से इस बात का संकेत मिलता है कि इसने अपनी अधिकृत अधिकारपत्र की व्याख्या इस सीमित अर्थ में की है कि वह सेना द्वारा लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गयी सरकार का तख्ता पलटने के मामलों में ही कार्य कर सकता है। जिन देशों में मूल लोकतांत्रिक सिद्धांतों को खतरा हो, उन पर भी वह कड़ी निगाह रखता है। लेकिन यह उसकी भूमिका की अनावश्यक रूप से संकीर्ण व्याख्या है। 'कार्य योजना' के अनुच्छेद सी–4 में सी एम ए जी से अपेक्षा की गयी है कि वह हरारे सिद्धांतों के ''लगातार होने वाले गंभीर उल्लंघनों से निपटेगा'' और उन सिद्धांतों में तमाम मानवाधिकार शामिल हैं। सी एच आर आई भी सी एम ए जी से अपेक्षा करता है कि वह न केवल राष्ट्रमंडल की मौलिक राजनीतिक मान्यताओं के संरक्षक के नाते, बल्कि राष्ट्रमंडल नागरिकों के सामाजिक–आर्थिक अधिकारों सहित तमाम मानवाधिकारों के अभिभावक और प्रवक्ता के रूप में अपने वास्तविक मैंडेट को पूरा करे। व्यावहारिक रूप में इसका अर्थ यह हुआ कि सी एम ए जी व्यापक रूप से गरीबी के बने रहने की वर्तमान स्थिति की छानबीन करेगा और अपने आप को इससे निपटने के लिए तैयार करेगा। वह इस काम में सदस्य देशों द्वारा कोई खास प्रगति न किये जाने को मानवाधिकारों का गंभीर और लगातार उल्लंघन मानेगा। किसी देश के बारे में इसकी धारणा, नागरिक समाज संबंधी रिपोर्टों पर आधारित हो सकती है और जब तक इस तरह के उल्लंघन समाप्त नहीं हो जाते, उसे ऐसे लोगों की पहचान का काम जारी रखना चाहिए जो अधिकारों के प्रति जवाबदेह हैं।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

मानवाधिकारों के लिए राष्ट्रमंडल उच्चायुक्त

दस साल से सी एच आर आई मानवाधिकारों के लिए राष्ट्रमंडल उच्चायुक्त (Commonwealth High Commissioner for Human Rights) की नियुक्ति की मांग करता आ रहा है। शासनाध्यक्षों को राष्ट्रमंडल में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों सहित तमाम मानवाधिकारों के अमल पर निगाह रखने के लिए राष्ट्रमंडल उच्चायुक्त की नियुक्ति करनी चाहिए। ऐसा करके वह अपने शब्दों को काफी हद तक कार्यरूप दे देगा। इस तरह का कार्यालय खुल जाने से, हरारे घोषणा को लागू करने की दिशा में राष्ट्रमंडल के कार्यों में और अधिक तालमेल कायम किया जा सकेगा और इन्हें नया बल तथा नया प्राधिकार प्राप्त होगा। इसके अलावा सी एम–ए जी मानवाधिकार इकाई (एच आर यू), महासचिव के मध्यस्थों के प्रयासों और चुनाव पर्यवेक्षक मिशनों आदि को भी इससे बढ़ावा मिलेगा। उच्चायुक्त के कार्यक्षेत्र में अन्य चीजों के अलावा ये बातें शामिल हैं : सदस्यता और निलंबन के मानदंडों को लागू करते समय पूरी पूछताछ करना, किसी क्षेत्र में मानवाधिकारों से संबंधित समस्याओं के बढ़ने पर सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप से चेतावनी देना, तथ्यों की जांच करनेवाले मिशन की नियुक्ति और इसकी रिपोर्ट को सार्वजनिक करना, आधिकारिक राष्ट्रमंडल के मानवाधिकारों संबंधी कार्य की वार्षिक प्रगति रिपोर्ट बनाना, अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर मौखिक प्रतिवेदन करना, अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर गरीबों को ध्यान में रखकर राष्ट्रमंडल का दृष्टिकोण प्रस्तुत करना और राष्ट्रमंडल के अंतर्गत मानवाधिकारों संबंधी मानदंडों व मानवाधिकारों की शिक्षा को बढ़ावा देना। स्वाभाविक है कि उच्चायुक्त का कार्य राष्ट्रमंडल में मानवाधिकार और राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर–सरकारी राष्ट्रमंडल संगठनों के ज्ञान और अनुभव पर निर्भर करेगा।

उच्चायुक्त संयुक्त राष्ट्र और अन्य क्षेत्रीय संस्थाओं के साथ सम्पर्क करके यह सुनिश्चित करेगा कि एक ही काम का दोहराव न हो और इन संगठनों के मानवाधिकार संबंधी कार्य में अच्छा तालमेल हो ताकि राष्ट्रमंडल सुदृढ़ हो।

मानवाधिकार इकाई (एच आर यू)

एच आर यू का गठन ''राष्ट्रमंडल के भीतर मानवाधिकारों को बढ़ावा देने'' और ''यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया था कि सचिवालय के अंदर मानवाधिकारों संबंधी मानदंडों का पूरा खयाल रखा जाए।'' जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सचिवालय के भीतर और बाहर मानवाधिकारों को बढ़ावा देने का इसका अधिकार क्षेत्र बड़ा सीमित है। लेकिन अपने वर्तमान रूप में इकाई का न तो इतना कद है और न उसके पास इतने संसाधन हैं कि वह अपने दायित्वों को पूरा कर सके। लेकिन मानवाधिकारों को मुख्यधारा में लाने के लिए इसे भूमिका निभानी है।

मानवाधिकारों और गरीबी उन्मूलन को मुख्यधारा में लाने का प्रयास

जो आधिकारिक राष्ट्रमंडल के भीतर हैं, उनके लिए मानवाधिकार पर आधारित दृष्टिकोण अपनाना खास तौर पर उपयोगी है क्योंकि वे परम्परागत रूप से अपने आप को सरकारों की सेवा करते देखने के आदी हैं। सरकारों को सेवाएं उपलब्ध कराने को आजकल थोड़े संकीर्ण अर्थों में देखा जाता है और इसे संप्रभुता–संपन्न देश की ओर से काम करना माना जाता है। मानवाधिकार पर आधारित दृष्टिकोण सरकारों को सेवाएं उपलब्ध कराने के कार्य को देखने का एक नया दृष्टिकोण उपलब्ध कराता है और इसे लोकतंत्र तथा मानवाधिकारों को सेवाएं उपलब्ध कराने के समतुल्य दर्जा देता है। उसके अनुसार सरकारें बनी ही इस उद्धेश्य के लिए हैं। सरकार को जनता के साथ सम्पर्क कायम करने में मदद करके सचिवालय राज्य में लोकतंत्र को सुदृढ़ करने और उसकी वैधता सिद्ध करने में योगदान करेगा। राज्य द्वारा मानवाधिकार संबंधी अपने दायित्वों का निर्वाह किया जा रहा है या नहीं, इस पर निगरानी रखने में मदद देकर सचिवालय सरकारों के साथ टकराव पैदा किये बिना उसे अपने खुद के काम और नीतियों के मूल्यांकन में सहायता प्रदान करेगा। इस से सचिवालय को अपने कार्य के राजनीतिक पहलुओं से सैद्धांतिक और नियमित तरीके से निपटने में मदद मिलेगी। इस तरह दोनों में अलगाव पैदा होने के खतरे की बजाय रचनात्मक संबंध कायम होंगे।

इस तरह के बदलाव को व्यवहार में संस्थागत रूप देने के लिए ज़रूरी है कि सचिवालय को शीर्षस्थ स्तर से मानवाधिकार–आधारित दृष्टिकोण व व्यवहार के आधार पर काम करने का संकेत मिले। इसके अलावा संस्था और व्यक्तियों से की गई उम्मीदों को परिभाषित करना ज़रूरी है।

व्यक्तियों को मानवाधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण के महत्व के बारे में अवगत कराने की आवश्यकता होगी। इसके लिए ज़रूरी है कि क्षमता निर्माण और मुख्यधारा से जुड़ने की प्रक्रिया में ही मानवाधिकारों और सुशासन के मूल्यों को समाहित किया जाए। इसके लिए, इसे विचार–विमर्श की ऐसी प्रक्रिया से विकसित करनी चाहिए जो पारदर्शी, समतापरक, स्वतंत्र और समावेशी हो। उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या से बहुस्तरीय पारस्परिक परामर्श और विचार–विमर्श का मौका मिलता है। इससे इस प्रक्रिया में दिलचस्पी और उसे अपनाने की भावना उत्पन्न होती है।

प्रशिक्षण देना, मुख्यधारा में शामिल करने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है। प्रशिक्षण का स्वरूप इस तरह का होना चाहिए कि लोग मानवाधिकार कानून और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के तकनीकी अर्थ को जान लेने भर से संतुष्ट होकर न रह जाएं। इसमें ऐसे तत्वों को शामिल करने की आवश्यकता है जिनसे आस्थाओं की परीक्षा हो, मान्य मूल्यों पर प्रश्न उठाए जा सकें और व्यक्तियों व विभागों के बीच एकजुटता विकसित हो सके। प्रशिक्षण का उद्देश्य सांस्थानिक संस्कृति में आए बदलावों से पैदा अशांति को कम करना होना चाहिए। इसे ज्ञान के स्थानांतरण और कौशल–निर्माण से आगे बढ़ना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सचिवालय के सभी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन व नीति–निर्माण के कार्य में इससे व्यावहारिक परिवर्तन आएं।

प्रशिक्षण में किसी खास अधिकार से शुरुआत करने या ज़रूरत से ज़्यादा कानूनी दृष्टिकोण अपनाने से बचना चाहिए। इसके बजाय, ऐसे मूल्यों पर जोर दिया जाना चाहिए जिनसे निष्पक्षता, समानता, भेदभाव न करने, सबको साथ लेकर चलने, असहमति के लिए गुंजाइश, सहभागिता और जवाबदेही के मूल्यों को बढ़ावा मिले।

इन सब लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ऐसे शीर्षस्थ केन्द्र की आवश्यकता होगी जिस पर प्रक्रिया की निगरानी की ज़िम्मेदारी हो। इससे मानवाधिकार इकाई और उच्चायुक्त में नयी चेतना का संचार होगा और यह सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी कि जो नया जोश पैदा हुआ है, वह बना रहे। इस प्रक्रिया से संस्थाओं की मानवाधिकार संबंधी क्षमता आंतरिक रूप से तो सुदृढ़ होगी ही, जब ये संस्थाएं अन्य संस्थाओं, जैसे राजनीतिक नेतृत्व, न्यायपालिका, देश के भीतर नौकरशाही और मुनाफे का ध्यान रखे बिना कार्य करने वाले व्यावसायिक क्षेत्र, से संपर्क करेंगी तो इस प्रक्रिया को और बल मिलेगा।

मुख्यधारा में शामिल करने के प्रयासों में सफलता के लिए ज़रूरी बातें

- मानवाधिकार संबंधी दिशानिर्देशों और आदेशों की व्याख्याएं आंतरिक जवाबदेही के मानदंड के रूप में कार्य करें और सरकार तथा संस्था से बाहर अन्य लोगों से बातचीत के लिए ढांचा उपलब्ध कराएं;
- सभी कार्यक्रमों के लिए मानवाधिकार और गरीबी उन्मूलन संबंधी लक्ष्यों का निर्धारण तथा परिणामों की निगरानी व मूल्यांकन के लिए संकेतकों व पैमानों का उपयोग;
- नीतियों के निर्माण और कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सहभागितापूर्ण प्रक्रिया का विकास;
- प्रोत्साहन देकर, समझा–बुझाकर और सकारात्मक व्यावसायिक सहायता से मानवाकिारों के उपयोग में जवाबदेही सुनिश्चित करना और
- उपरोक्त कार्यो को पूरा करने के लिए मानवाधिकारों को मुख्यधारा में लाकर अमन करने के तौर तरीकों के समय–समय पर मूल्यांकन सहित मानवाधिकारों के बारे में आंतरिक क्षमताओं का विकास।

भागीदारी

इस समय राष्ट्रमंडल अपनी स्वयं की वैधता और लोगों के लिए अपनी प्रासंगिकता की जांच कर रहा है।[353] एक ऐसी संस्था के रूप में .जो अधिकांशतः गरीब जनताओं से बनी है, राष्ट्रमंडल के समस्त कामकाज में गरीबों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को महत्व दिया जाना चाहिए। यह प्रदर्शित करके कि आधिकारिक राष्ट्रमंडल की प्रमुख चिंताएं अपने नागरिकों को लेकर हैं, राष्ट्रमंडल विश्व स्तर पर मानवाधिकारों को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली माध्यम बन सकता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, मानवाधिकारों के ढांचे का एक महत्वपूर्ण तत्व निर्णय लेने में भागीदारी का अधिकार है। राष्ट्रमंडल

शासनाध्यक्षों ने गैर–सरकारी राष्ट्रमंडल संगठनों से आग्रह किया है कि वे राष्ट्रमंडल के उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूरी भूमिका निभाएं। यह कार्य सहयोग और आपसी सहायता की भावना से किया जाना चाहिए ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया में सीधी भागीदारी सुनिश्चित हो सके। अगर राष्ट्रमंडल अपनी प्रणाली में सहभागिता को समाहित कर शासन में नागरिकों की भागीदारी के प्रति अपनी बचनबद्धता का सार्वजनिक रूप से संकेत दे सके तो इसे वैधता प्राप्त हो जाएगी। इतना ही नहीं भागीदारी से राष्ट्रमंडल नागरिकों में उसके उद्देश्यों को अपना लेने की भावना भी बढ़ेगी। इससे उनमें इसके प्रति विश्वसनीयता और सार्थकता का भाव भी बढ़ जाएगा। आधिकारिक राष्ट्रमंडल की प्रासंगिकता तभी बढ़ेगी जब राष्ट्रमंडल अपने अनौपचारिक संगठनों की भागीदारी का पूरा लाभ उठाए।

लेकिन अब तक आधिकारिक राष्ट्रमंडल भागीदारी को व्यवहार रूप में लागू करने में स्पष्ट रूप से अनिच्छुक रहा है। राष्ट्रमंडल नागरिकों के पास राष्ट्रमंडल प्रणाली में भाग लेने के लिए कई संभावित अवसर हैं, जिनमें मंत्रिस्तरीय बैठकें, राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों का सम्मेलन और सचिवालय की गतिविधियों में भागीदारी शामिल हैं।

गैर–सरकारी संगठनों को मान्यता

सन् 1993 में साइप्रस में हुई चोगम बैठक के बाद गैर–सरकारी संगठन चोगम में मान्यता के लिए आवेदन कर सकते हैं। मान्यताप्राप्त संगठनों को कामकाज संबंधी कुछ फायदे जैसे कि एन.जी.ओ. लाउन्ज का उपयोग, सरकारी शिष्टमंडलों को सामग्री के वितरण में सहायता और कुछ सामाजिक आयोजनों में आमंत्रण आदि प्राप्त होते हैं। मान्यता प्राप्त करने का मानदंड अपेक्षाकृत सरल है। इसके लिए सिर्फ दो शर्तें हैं: गैर–सरकारी संगठनों के नाम के साथ 'राष्ट्रमंडल' शब्द जुड़ा हो और वे अपने कार्यसंचालन और प्रणाली की दृष्टि से समूचे राष्ट्रमंडल के स्तर पर कार्य करते हों। लेकिन मान्यता प्रदान करने की प्रक्रिया अपने आप में पारदर्शी नहीं है और इसमें जवाबदेही भी नहीं है। इसे और खुला बनाने की आवश्यकता है। राष्ट्रमंडल के मान्यता प्राप्त गैर–सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों को शामिल कर बनाई गई एक समिति इस प्रक्रिया को अधिक आसान और अनुकूल बनाएगी। मान्यता न दिये जाने का कारण सार्वजनिक रूप से बताया जाना चाहिए।

राष्ट्रमंडल की मंत्रिस्तरीय बैठकों के मुकाबले, चोगम में नागरिक समाज को कुछ अधिक भागीदारी की इजाज़त होती है। ये बैठकें उद्देश्यपूर्ण भागीदारी के लिए नये तौर–तरीके तैयार करने के लिहाज से बड़ी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए, सन् 2000 में राष्ट्रमंडल के शिक्षामंत्रियों की बैठक में जनसंचार माध्यमों को मुक्त प्रवेश की पेशकश की गयी। सचिवालय का स्वास्थ्य विभाग राष्ट्रमंडल के स्वास्थ्य मंत्रियों की बैठक से पहले गैर–सरकारी संगठनों के लिए बैठक आयोजित करता है। स्वास्थ्य, शिक्षा और महिलाओं से संबंधित मामलों के मंत्रियों की बैठकों में गैर–सरकारी संगठन को प्रेक्षक का दर्जा दिया जाता है और वे पूर्ण सत्र में बैठ सकते हैं। ये सही दिशा में छोटे कदम भले ही हों, मगर सच्चे अर्थ में सहभागितापूर्ण संबंधों के विकास तथा नागरिकों और अधिकारियों में समानता के विचार को महत्व देने में इनसे बड़ी मदद मिल सकती है।

लेकिन शासनाध्यक्षों की बैठक में इस स्तर का औपचारिक मेलजोल भी नहीं हो पाता। चोगम की बैठकें इस बात के लिए बदनाम हैं कि राष्ट्रमंडल का नागरिक समाज इनमें भागीदार नहीं हो पाता।

वैसे मान्यता प्राप्त गैर–सरकारी संगठन भी शासनाध्यक्षों से कोई उद्देश्यपूर्ण विचार–विमर्श नहीं कर पाते। 'शानदार अलगाव' की नीति अपनाते हुए शासनाध्यक्षों और नागरिक समाज संगठनों की बैठकें एक दूसरे के समांतर अलग–अलग होती हैं और उनके एक मंच पर आने का कोई मौका नहीं आता। सन् 1997 में एडिनबरा में हुए चोगम से गैर–सरकारी संगठनों की गतिविधियां राष्ट्रमंडल जन केन्द्र (Commonwealth Peoples' Centre - सी पी सी) में आयोजित की जाती रही हैं और इनमें मान्यता प्राप्त और गैर–मान्यता प्राप्त दोनों तरह के संगठनों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। सी पी सी अक्सर शासनाध्यक्षों की बैठक के आयोजन स्थल के पास ही होते हैं, लेकिन गैर–सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि और सरकारी अधिकारियों को बड़ी सावधानी से एक दूसरे से अलग रखा जाता है।

दक्षिण अफ्रीका जैसे अपेक्षाकृत मुक्त समाज में, जो सहभागितापूर्ण प्रक्रिया की दिशा में पहल करने वाला देश होने में गौरव महसूस करता है और ऑस्ट्रेलिया में अगर शासनाध्यक्ष चोगम बैठक के दौरान एक बार रस्मी तौर पर 'पीपुल्स हाल' से गुजर सकते हैं तो कोई वजह नहीं कि नागरिकों और उनके प्रतिनिधियों के बीच लोकतांत्रिक आदान–प्रदान के अधिक अवसर आयोजित नहीं किए जा सकते। शिखर सम्मेलनों में नागरिक समाज और राष्ट्रमंडल के अधिकारियों, देशों के प्रतिनिधियों और शासनाध्यक्षों के बीच उद्देश्यपूर्ण संवाद का दुर्लभ

अवसर प्राप्त होता है। यह संवाद प्रश्नोत्तर सत्र, क्षेत्रीय व विषय आधारित बैठकों, पूर्ण सत्र में भाषण के अवसर या कार्यदल के समक्ष प्रतिवेदन का रूप भी ले सकता है। इससे शासनाध्यक्षों की बैठक के लोकतांत्रीकरण और इसमें नयी जान फूंकने में मदद मिल सकती है। शासनाध्यक्षों के एकांत और आपसी बातचीत पर इसका कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा।

राष्ट्रमंडल एन जी ओ फोरम नागरिक समाज के विविध लोगों का एक विशाल समागम है। इसका आयोजन हर चार साल बाद आम तौर पर चोगम से ठीक पहले विचारों और अनुभवों के आदान–प्रदान के लिए किया जाता है। राष्ट्रमंडल केवल राज्यों का संगठन ही नहीं है, बल्कि यह लोगों का भी संगठन है, इस बात को ध्यान में रखते हुए गैर–सरकारी संगठन फोरम के वक्तव्य और सिफारिशों का उद्‌देश्य बहुत से लोगों के विचारों से उन कुछ लोगों को अवगत कराना है जो उनपर शासन करते हैं, और जो शायद निर्णयों पर भी असर डालते हैं। राष्ट्रमंडल प्रतिष्ठान (Commonwealth Foundation) ''गैर–सरकारी संगठनों को राष्ट्रमंडल की परामर्श प्रक्रिया में योगदान करने योग्य बनाने के लिए'' फोरम की बैठक का आयोजन करता है।[354] डरबन में हुई चोगम बैठक के दौरान फोरम ने अपनी बैठक में 47 देशों में दो साल तक कराए गए सर्वेक्षण पर विचार किया। इस सर्वेक्षण में विभिन्न स्थितियों में रह रहे 10 हज़ार से अधिक आम लोगों से यह पूछताछ की गयी कि 'अच्छे समाज' से वे क्या समझते हैं। एअटियरोआ (माओरी भाषा में न्यूज़ीलैंड का नाम) से लेकर ज़िम्बाब्वे तक गरीब लोगों का यही कहना था कि सत्ता के वर्तमान ढांचे में वे अपने शासकों से अलग होने का अनुभव करते हैं और अपने ही जीवन को नियंत्रित वाले निर्णयों पर असर डालने में असहाय हैं। उत्तर देने वाले चाहे जितने गरीब या दूरदराज़ के इलाके के रहे हों, उन्होंने न्याय, समता और सामान्य समझ के आधार पर समाधान सुझाये। इसे ध्यान में रखते हुए फोरम ने इस 'जनोन्मुख' चोगम में अपनी अनेक सिफारिशों में से पहली में कहा है कि सभी संस्थाओं को ''यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिए कि राष्ट्रमंडल नागरिकों का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास व्यावहारिक स्तर पर हो और स्त्री–पुरुष समानता पर विशेष रूप से ज़ोर दिया जाए।''

अगर तर्क और लोकतंत्र का ही बोलबाला होता, तो सर्वेक्षण के निष्कर्ष और फोरम की सिफारिशें न केवल डरबन में ताकतवर शासनाध्यक्षों के विचार–विमर्श के आधार बने होते, बल्कि उनके लिए संवेदनात्मक मन्थन का कारण भी बनते। हुआ यह कि डरबन विज्ञप्ति में नागरिकों और शासन के बारे में राष्ट्रमंडल प्रतिष्ठान के अध्ययन को केवल 'दर्ज' भर किया गया और वरिष्ठ अधिकारियों से कहा गया कि वे ''अगले चोगम में फोरम द्वारा अपने विचार रखे जाने के मुद्‌दे का अध्ययन करें।''[355] इस तरह के अध्ययन को इतना कम महत्व मिलना, यह चिंता का विषय है और इससे राष्ट्रमंडलीय सहभागिता तथा सुशासन व गरीबी उन्मूलन के मुद्‌दे के बारे में वास्तविक वचनबद्धता पर सवालिया निशान लग जाता है। इस बात की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए कि एक बार शासनाध्यक्षों के समक्ष फोरम का दृष्टिकोण प्रस्तुत कर दिये जाने पर इसका असर उनके निर्णय लेने की प्रक्रिया पर पड़ेगा और विज्ञप्ति में इसकी उतनी ही तीव्रता से अभिव्यक्ति होगी।

राष्ट्रमंडल सचिवालय में संचालन के स्तर पर संपर्क और सहयोग के अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन अक्सर विचार–विमर्श का स्तर संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व या संपर्क की कोशिश कर रहे नागरिक अथवा समूह की लगन पर निर्भर करता है। भागीदारी के बारे में कोई संस्थागत दिशानिर्देश नहीं हैं, बल्कि इसकी जगह दूरी बनाए रखने और दूरी बरतते रहने की संस्कृति का बोलबाला है। राष्ट्रमंडल की कार्यप्रणाली में नागरिकों की भागीदारी को शामिल कर लेने से उसे कुछ और फायदे होंगे। गैर–सरकारी संगठनों की भागीदारी से राष्ट्रमंडल के संसाधनों और क्षमता में बढ़ोतरी होगी। राष्ट्रमंडल का भविष्य निर्धारित करने में गैर–सरकारी संगठनों के उत्साह और गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

सचिवालय के भीतर की विचार–विमर्श की धारणा 'विशेषज्ञों' या कुछ चुने हुए संगठनों से बातचीत तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। अगर राष्ट्रमंडल का सरोकार जनता पर आधारित विकास है तो इसे नागरिक समाज के समूहों के लिए एक ऐसा चुम्बक बनना होगा जो उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर सके और नागरिक समाज के हितसमूहों और संगठनों को व्यवस्थित रूप से भागीदार बना सके। यह सुनिश्चित करने का एक तरीका यही है कि प्रतिष्ठान की भूमिका बढ़ाई जाए। इसके पास पहले ही नागरिक समाज का नेटवर्क उपलब्ध है और इसे इस क्षेत्र की संवेदनशील समझ भी है।

राष्ट्रमंडल प्रतिष्ठान (Commonwealth Foundation) की स्थापना अनौपचारिक राष्ट्रमंडल के लिए की गयी थी। इस समय, इसे ऐसे गैर–सरकारी संगठनों के साथ काम करने और उन्हें 'सामाजिक क्षेत्र' में सहायता उपलब्ध कराने का जिम्मा मिला हुआ है जो कल्याणकारी संगठन माने जाते हैं। लेकिन मानवाधिकार संगठनों या 'राजनीतिक मुद्दों' पर कार्य कर रहे संगठनों के साथ यह कार्य नहीं कर सकता। असल में राष्ट्रमंडल प्रतिष्ठान निगरानी करने वाले और पैरवी करने वाले संगठनों के साथ विचार–विमर्श करता है। प्रतिष्ठान को कभी–कभार नागरिक समाज के जनमत का प्रवक्ता बनने के बदले उसको प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह सचिवालय को सर्वसंयोगी और सहभागितापूर्ण बनने में मदद करे। उदाहरण के लिए, वह इस बात की निगरानी कर सकता है कि सचिवालय राष्ट्रमंडल नागरिकों के भागीदारी के अधिकार को पूरा कर रहा है कि नहीं। एच आर यू के सहयोग से वह यह सुनिश्चित कर सकता है कि सचिवालय का प्रत्येक प्रभाग अपने कार्य तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में नागरिक समाज की भागीदारी की धारणा को समाहित करे। इसे ऐसे उपाय करने चाहिए जिससे नागरिक समाज के समूह आधिकारिक राष्ट्रमंडल के विभिन्न विभागों और संगठनों के काम–काज में भागीदार बन सकें। दूसरी और एच आर यू इन समूहों को अपने काम में अधिकारों पर आधारित ढांचा अपनाने और अपनी निगरानी तथा पैरवी संबंधी गतिविधियों में सुधार करने में मदद दे सकता है। शासनाध्यक्षों ने मौखिक तौर पर निगरानी रखने वाले गैर–सरकारी संगठनों की गतिविधियों का समर्थन किया है। साइप्रस विज्ञप्ति के अनुच्छेद–57 में उन्होंने ''मानवाधिकारों को बढ़ावा देने में गैर–सरकारी संगठनों की महत्वूपर्ण भूमिका'' पर ज़ोर दिया है। लेकिन वास्तविकता यह है कि 'निगरानी' करने वाले गैर–सरकारी संगठनों को राष्ट्रमंडल की नाममात्र सहायता मिलती है।

पर इस स्थिति के बने रहने की कोई वजह नहीं है। उदाहरण के लिए, 'राष्ट्रमंडल तकनीकी सहयोग कोष (Commonwealth Fund for Technical Cooperation - सी एफ टी सी) समझौतों पर निगरानी रखने वाले संगठनों को भेजी जाने वाली रिपोर्ट तैयार करने में राज्यों को मदद देता है।[356] गैर–सरकारी संगठनों को वैकल्पिक रिपोर्ट तैयार करने में इस तरह की कोई सहायता नहीं दी जाती। गैर–सरकारी संगठनों को तकनीकी सहायता भी दी जा सकती है। उदाहरण के लिए, बजट विश्लेषण और वैकल्पिक बजट बनाने में सहायता दी जा सकती है। सरकारी बजटों के लिंगसंबंधी विश्लेषण में अपनी उपलब्ध विशेषज्ञता का लाभ उठाते हुए राष्ट्रमंडल गैर–सरकारी संगठनों को अपनी–अपनी सरकारों के बजटों से मानवाधिकारों पर पड़ने वाले असर का विश्लेषण करने में मदद दे सकता है।[357] ये ऐसे मुद्दे हैं जिनके लिए काफी विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है और इसके लिए प्रतिष्ठान सी एफ टी सी के साथ तालमेल कर सकता है। यह प्रतिष्ठान को राष्ट्रमंडल सचिवालय के साथ समन्वित करने की उपयोगिता का एक और उदाहरण है। ऐसा करते समय इसकी अलग पहचान बनाए रखनी होगी, इसकी भूमिका का विस्तार करना होगा और साथ ही इसे स्वायत्तता और उच्च दर्ज़ा देना होगा ताकि यह विभिन्न प्रभागों के साथ सहयोग कर सके और उनके काम–काज की निगरानी कर सके।

राष्ट्रमंडल प्रणाली में भागीदारी के रास्ते में एक महत्वपूर्ण बाधा सूचनाओं के अभाव की है। प्रासंगिक सूचनाओं के पहुंच के भीतर न होने से ठीक से उद्देश्यपूर्ण भागीदारी नहीं हो सकती। राष्ट्रमंडल में अनावश्यक गोपनीयता और छिपा कर रखने की जो प्रवृत्ति बढ़ रही है, उसकी आलोचना हुई है। इस तरह के अनावश्यक छिपाव से राष्ट्रमंडल के विभिन्न विभागों के बीच सूचनाओं के निर्बाध प्रवाह पर बुरा असर पड़ता है। निश्चय ही, जनता से संपर्क के पहले बिन्दु यानी सूचना और सार्वजनिक मामलों के प्रभाग (Information & Public Affairs Division) को सचिवालय की सिंड्रेला माना जाता है। इसे आसानी से या नियमित रूप से दस्तावेज़ प्राप्त नहीं हो पाते। प्रतिष्ठान की तरह, इसे इस बात की जानकारी नहीं दी जाती और न इस बात के लिए भागीदार बनाया जाता है कि अन्य प्रभागों में या महासचिव के कार्यालय में क्या हो रहा है।[358] इसका अर्थ यह हुआ कि यह जनता को सूचना उपलब्ध नहीं करा सकता और न सचिवालय के कार्य के बारे में बाहरी दुनिया, खास तौर पर जनसंचार माध्यमों को जानकारी दे सकता है। राष्ट्रमंडल का वैब साइट, जो खुलेपन का एक और जरिया हो सकता था, सूचनाओं के बारे में संतुलित नहीं है और मानवाधिकारों के बारे में तो इसमें बहुत कम या कोई भी सूचना नहीं है। वैब साइट में एच आर यू के लिए कोई विशेष पेज या लिंक नहीं है जिससे यह पता चले कि इस तरह की कोई इकाई अस्तित्व में है।

नयी पहचान का निर्माण

तीसरी सहस्राब्दि के प्रारंभ में राष्ट्रमंडल को अपने समावेशी न बनने, गरीबी को मानवाधिकारों का उल्लंघन न मानने और गरीबी पर मानवाधिकारों के ढांचे के जरिए प्रहार न करने की कीमत चुकानी पड़ेगी। क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठन अब मानवाधिकारों को अधिकाधिक अपने संगठन और सहयोग का केन्द्रीय आधार मानने लगे हैं। उनकी सामूहिक नीतियों को मानवाधिकारों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। पर वैधता अर्जित करने के लिए उनके संस्थानों को अपने व्यवहारों में आधिकाधिक प्रदर्शित करना होगा कि वे मानवाधिकारों के मूल्यों को महत्व देते हैं। औपनिवेशिक अतीत से उत्पन्न किसी संस्था पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और इसकी नीतियों व कार्यक्रमों में नागरिकों की सुदृढ़ भागीदारी से अतीत उलट सकता है और उसे एक नयी पहचान मिल सकती है। हम कहते हैं राष्ट्रमंडल या तो मानवाधिकारों के बारे में है या फिर किसी के लिए भी नहीं है। प्रासंगिक बने रहने के लिए आधिकारिक राष्ट्रमंडल को अपने लोगों, खास तौर पर गरीबी में दिन गुज़ारने वाले लाखों लोगों के और करीब आना होगा। अगर राष्ट्रमंडल मानवाधिकारों को लागू करने के लिए एकसमान रूप से कार्य करता है तो इन लोगों को ज़बरदस्त फायदा होगा।

हाल में राष्ट्रमंडल के पहचान और उद्देश्य के संकट ने उसे अपनी प्राथमिकताओं, तौर–तरीकों और संबंधों के बारे में विचार करने को बाध्य किया है। 'जन–केन्द्रित' डरबन बैठक में उच्चस्तरीय समीक्षादल के नाम से जाने जाने वाले राष्ट्रमंडल के 10 शासनाध्यक्षों को नयी शताब्दी में सदस्य देशों में राष्ट्रमंडल की भूमिका की जांच का दायित्व सौंपा गया। मानवाधिकारों के बारे में राष्ट्रमंडल के आधिकारिक व्यवहार और नागरिक समाज के साथ इसके संबंधों के बारे में राष्ट्रमंडल द्वारा प्रायोजित जांच पड़ताल–जैसे सभी कदम इस बात का संकेत देते हैं कि यह संप्रभुतासंपन्न राष्ट्रों के नेताओं का क्लब हाने की अपनी पुरानी छवि से उबरने का प्रयास कर रहा है और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाले देशों और लोगों के संगठन के रूप में अपनी पहचान बना रहा है।

बहरहाल, किसी भी नये प्रयास का असर मूलभूत परिवर्तन के रूप में सामने आना चाहिए, न कि सिर्फ क्रमशः ऊपरी बदलाव के रूप में। राष्ट्रमंडल अगर गरीबी और इससे निपटने के सबसे प्रमुख उपाय – मानवाधिकारों – की ओर तत्काल और गंभीरता से गौर नहीं करेगा तो इसके सामने अपनी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता के खत्म होने का वास्तविक खतरा मंडराता रहेगा। अपनी अर्थवत्ता बनाए रखने के लिए राष्ट्रमंडल को शब्दों से नहीं, बल्कि ठोस कार्रवाई से न्यायसंगत सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को कायम करने के लिए वचनबद्ध बनना पड़ेगा। अगर उसने ऐसा नहीं किया तो लोग मानवाधिकारों के बारे में अपनी चिंताओं को प्रकट करने के लिए दूसरे अधिक उपयुक्त मंचों की तलाश कर लेंगे और इससे राष्ट्रमंडल अप्रासंगिक हो जाएगा।

मॉन्टेरे सहमति के कार्यान्वयन हेतु राष्ट्रमंडल कार्य–योजना

मार्च 2002 में मैक्सिको के मॉन्टेरे में हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने वालों ने गरीबी के उन्मूलन तथा संपोषणीय आर्थिक वृद्धि व विकास को सुनिश्चित करने के नज़रिये पर सर्वानुमति बनाई। ताकि एक अधिक न्यायसंगत वैश्विक आर्थिक प्रणाली बनाई जा सके। क्षेत्रीय स्तर पर नागरिक समाज के साथ राष्ट्रमंडल द्वारा आयोजित विचार–विमर्श के बाद, इस सहमति के कार्यान्वयन के लिए कार्य–योजना बनाने हेतु, सितम्बर 2002 में इस संगठन के सदस्य देशों के वित्त मंत्रियों की बैठक हुई।[359] तीन भागों में विभाजित इस कार्य योजना में सदस्यों पर व्यक्तिगत और समूहगत दोनों जिम्मेदारियाँ व वचनबद्धताएं डाली गई हैं। राष्ट्रमंडल का सचिवालय इन वचनबद्धताओं के कार्यान्वयन में सहायता देने वाला केंद्र बिंदु है।

विकासशील देशों की वचनबद्धताएँ

- पारदर्शिता और विचार–विमर्श पर आधारित राष्ट्रीय विकास तथा गरीबी उन्मूलन की ऐसी रणनीतियाँ बनाना जो संस्थागत सुधार को प्राथमिकता दें, आर्थिक व्यवस्था को स्थिर बनाएं, आमदनी तथा संपत्ति का वितरण न्यायसंगत तरीके से करें और आर्थिक उदारीकरण को अन्य ज़रूरी सुधारों के साथ क्रमबद्ध रूप से जोड़ें।
- प्रगति पर नज़र रखने के लिए उपयुक्त प्रणाली व उपायों का विकास व इस्तेमाल।
- सरकारी खर्चों और वित्त प्रबंधन की प्रक्रियाओं में सुधार ताकि उचित लेखा रिपोर्टिंग व लेखाकरण के आधार पर प्रमुख विकास

प्राथमिकताओं पर प्रभावी रूप से खर्चा किया जा सके।

- नीतिगत ढाँचा तैयार करना जिससे घरेलू व विदेशी निजी निवेश को बढ़ावा मिले और घरेलू बचत व निवेश में भी वृद्धि हो।

विकसित देशों की वचनबद्धताएँ

- विकासशील देशों की वस्तुओं व सेवाओं के लिए अपने बाज़ार खोलना तथा अपने उत्पाद की व्यापार सम्बंधी सहायता में कमी करना।
- विकासशील देशों को दिए जाने वाले ओडीए को जीएनपी के 0.7 प्रतिशत तक बढाकर संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कदम उठाना।
- अफ्रीका में गरीबी कम करने और विकास की रफ्तार को तेज़ करने के लिए 'अफ्रीकी विकास हेतु नई साझेदारी' (New African Partnership for Development- NEPAD) को सहायता देना।
- अत्याधिक गरीबी स्तरवाले उन देशों को सहायता देना जो संस्थागत व आर्थिक सुधार सुचारू रूप से कर रहे हैं।
- द्वि–पक्षीय कार्रवाई के माध्यम से सभी विकासात्मक सहायताओं को शर्त–विहीन बनाने के लिए काम करना।

योजना के दूसरे भाग में सभी देशों ने एकजुट हो कर काम करने में सहमति जताई ताकि विश्व स्तर पर राष्ट्रमंडल देशों का और अधिक प्रभाव पड़े। इसमें आईएमएफ, विश्व बैंक व अन्य दाता एजेंसियों जैसे यूएनडीपी की गतिविधियों के साथ उन प्रयासों का समन्वय शामिल है जिनका लक्ष्य सरकारी वित्त प्रबंधन में सुधार व विकास सहायता स्तरों को बढ़ाना है। इस सहमति के अनुसार उन्हें अंतराष्ट्रीय वित्त संस्थानों के साथ काम करना होगा ताकि राष्ट्रीय व विश्व स्तर पर वित्तीय संकट को कम किया जा सके। देशों ने राष्ट्रमंडल के अत्याधिक ऋणभार वाले देशों के ऋणभार को कम करने के लिए एक साथ काम करने की प्रतिज्ञा भी ली। मलेरिया, टी बी और एच आई वी जैसी बीमारियों से संघर्ष करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग (वित्तीय व तकनीकी दोनों में) बढ़ाने पर वे राज़ी हो गए। वे विश्व व्यापार संगठन (डबल्यू टी ओ) में एक साथ काम करने को तैयार हो गए हैं ताकि दोहा विकास एजेंडे की प्राप्ति हो सके तथा विकसित देशों द्वारा बनाई व्यापार सहायताओं को चरणबद्ध तरीके से हटाया जा सके।

योजना का तीसरा भाग राष्ट्रमंडल के सचिवालय के लिए एक कार्य–योजना की रूपरेखा बनाता है। सचिवालय को निम्नलिखित कार्य करने होगें–

- लोकतंत्र, शासन, कानूनी प्रणालियों व सामाजिक दायित्वों के क्षेत्र में सदस्य देशों के बीच ज्ञान व अनुभव के आदान–प्रदान को कायम करना।
- सरकारी सेवा सुधार, सरकार व्यय प्रबंधन व संबंधित लिंग मामलों पर सहायता उपलब्ध करवा कर राष्ट्रीय विकास व गरीबी उन्मूलन नीतियों को प्रभावी बनाने की प्रक्रिया में योगदान देना।
- सरकार, निजी क्षेत्र और नागरिक समाज के बीच बातचीत को आसान बनाना तथा मॉन्टेरे सहमति तक पहुँचने के लिए उन्हें विचार–विमर्श में संलग्न करना।
- विश्व बैंक, आईएमएफ और संयुक्त राष्ट्र के साथ काम करना जिससे सरकारी व्यय प्रबंधन में अच्छी पद्धतियों को जानने व मूल्यांकन करने के लिए एक अधिक समन्वित दृष्टिकोण को बढ़ावा मिले।
- ऋण प्रबंधन पर अपने परामर्श कार्य को मज़बूत बनाना।
- राष्ट्रमण्डल की व्यवसाय समिति (Commonwealth Business Council) के साथ काम करना ताकि निजी क्षेत्र विकासशील देशों में निवेश करें तथा बुनियादी ढांचे व सरकारी सेवाओं में निवेश के लिए सरकारी – निजी साझेदारी को सरल बनाने के मार्ग खोजना।
- व्यापार नीति के बारे में बातचीत, उनका सूत्रीकरण, व कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर क्षमता बढ़ाकर व्यापार सम्बंधी मामलों में सदस्य देशों की मदद करना।
- सदस्य देशों के लिए अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त सहायता को निरन्तर सुलभ बनाये रखना, उसके प्रभावों की निगरानी करना तथा विकासशील देशों को सहयोग देना जिससे वे अपनी क्षमता बढ़ाकर अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के नीतिनिर्माताओं को प्रभावित कर सकें।

cyan black

प्रमुख मानवाधिकार संधियों की पुष्टि की स्थिति[360]

देश	आई सी ई एस सी आर	आई सी सी पी आर	आई सी सी पी आर ओ पी–1	सी ई आर डी	सी ए टी	सी ई डी ए डब्ल्यू	सी ई डी ए डब्ल्यू ओ पी	सी आर सी	सी आर सी ओ पी–1	सी आर सी ओ पी–2
एंटीगुआ और बारबुडा	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✔
आस्ट्रेलिया	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	S	S
बहामास	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
बांगलादेश	✔	✔	✘	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔
बारबेडोस	✔	✔	✔	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
बेलीज़	S	✔	✘	✔	✔	✔	S	✔	S	S
बोत्स्वाना	✘	✔	✘	✔	✔	✔	✘	✔	S	✔
ब्रूनेई दारस्सलाम	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✘
कैमरून	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	S	S
कनाडा	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	S
कूक द्वीप	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✘
साइप्रस	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔
डोमिनिका	✔	✔	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✔	✔
फीजी द्वीप	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
गाम्बिया	✔	✔	✔	✔	S	✔	✘	✔	S	S
घाना	✔	✔	✔	✔	✔	✔	S	✔	✘	S
ग्रेनेडा	✔	✔	✘	S	✘	✔	✘	✔	✘	✘
गयाना	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	✘	✘
इंडिया	✔	✔	✘	✔	S	✔	✘	✔	✘	✘
जमैका	✔	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✔	S
केन्या	✔	✔	✘	✘	✔	✔	✘	✔	✔	S
किरिबास	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✘
लेसोथो	✔	✔	✔	✔	✔	✔	S	✔	S	✔
मलावी	✔	✔	✔	✔	✔	✔	S	✔	S	S
मलेशिया	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✘
मालदीव	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	S	✔
माल्टा	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	✔	S
मारीशस	✔	✔	✔	✔	✔	✔	S	✔	✘	✘
मोज़ाम्बिक	✘	✔	✘	✔	✔	✔	✘	✔	✘	✔
नामिबिया	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔
नौरू	✘	S	S	S	S	✘	✘	✔	S	S
न्यूज़ीलैंड	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

देश	आई सी ई एस सी आर	आई सी सी पी आर	आई सी सी पी आर ओ पी–1	सी ई आर डी	सी ए टी	सी ई डी ए डब्ल्यू	सी ई डी ए डब्ल्यू ओ पी	सी आर सी	सी आर सी ओ पी–1	सी आर सी ओ पी–2
नाइजीरिया	✔	✔	✘	✔	✔	✔	S	✔	S	S
नियूए	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✘
पाकिस्तान	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
पापुआ न्यू गिनी	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
सैमोआ	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✘
सेषल्स	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	S	S
सिएरा लियोन	✔	✔	✔	✔	✔	✔	S	✔	✔	✔
सिंगापुर	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✔	S	✘
सोलोमन द्वीप	✔	✘	✘	✔	✘	✔	✔	✔	✘	✘
दक्षिण अफ्रीका	S	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	S	✔
श्रीलंका	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘
सेन्ट किट्स और नेविस	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✘
सेन्ट लूसिया	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
सेन्ट विन्सेन्ट और ग्रेनेडीन्स	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	✘	✘
स्वाज़ीलैंड	✘	✘	✘	✔	✘	✘	✘	✔	✘	✘
तंज़ानिया	✔	✔	✘	✔	✔	✔	✘	✔	✘	✔
टौंगा	✘	✘	✘	✔	✘	✘	✘	✔	✘	✘
ट्रिनिडाड और टौबेगो	✔	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘
टुआलू	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✘
युगांडा	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	✔	✔
ब्रिटेन	✔	✔	✘	✔	✔	✔	✘	✔	✔	✔
वानुआतू	✘	✘	✘	✘	✘	✔	✘	✔	✘	✘
ज़ाम्बिया	✔	✔	✔	✔	✔	✔	✘	✔	✘	✘
ज़िम्बाब्वे	✔	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✔	✘	✘

संकेतक : ✘ = हस्ताक्षर नहीं किए हैं S = हस्ताक्षर कर दिए हैं ✔ = पुष्टि कर दी है

आई सी ई एस आर	इंटरनेशनल कॅविनॅन्ट ऑन इकोनोमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स
आई सी सी पी आर	इंटरनेशनल कॅविनॅन्ट ऑन सिविल एंड पॉलिटिकल राइट्स
आई सी सी पी आर – ओ पी–1	फर्स्ट ऑप्शनल प्रोटोकोल टू द सी सी पी आर ऑन द राइट ऑव इंडिविजुअल पिटिशॅन
सी ई आर डी	इंटरनेशनल कंवेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ आल फार्म्स ऑव रेसियल डिस्क्रिमिनेशन
सी ए टी	इंटरनेशनल कंवेंशन अगेन्स्ट टॉर्चर
सी ई डी ए डब्ल्यू	इंटरनेशनल कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑव ऑल फॉर्म्स ऑव डिस्क्रिमिनेशन अगेन्स्ट वूमैन
सी ई डी ए डब्ल्यू–ओ पी	ऑप्शनल प्रोटोकोल टू सी ई डी ए डब्ल्यू ऑन द राइट ऑफ इंडिविड्यअल पिटिशॅन
सी आर सी	कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑव द चाइल्ड
सी आर सी – ओ पी–1	ऑप्शनल प्रोटोकाल टू सी आर सी ऑन द इन्वोल्वमेंट ऑव चिल्ड्रन इन आर्मड कॉन्फ्लिक्ट
सी आर सी – ओ पी–2	ऑप्शनल प्रोटोकोल टू सी आर सी ऑन द सेल ऑव चिल्ड्रन, चाइल्ड प्रोस्टिट्यूशन एंड चाइल्ड पोर्नोग्रैफी

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

संदर्भ टिप्पणियां

1. एम. के. गांधी, राघवन अय्यर (सम्पा.) *मोरल एण्ड पॉलिटिकल राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी*, खण्ड 3, पृष्ठ 609 (1989 संस्करण) में।

2. वर्ल्ड बैंक, (2001) *वर्ल्ड डेवेलपमेंट रिपोर्ट, 2000/2001 : अटैकिंग पॉवर्टी*, न्यूयार्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

3. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू. एन. डी. पी.), (2001). *ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट 2001 : मेकिंग न्यू टेक्नोलोज़ीज़ वर्क फॉर ह्यूमन डेवेलपमेंट*, न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

4. विश्व बैंक, (2001) तत्रैव।

5. *साउथ एशिया डेवेलपमेंट कोआपरेशन रिपोर्ट 2001/02*, रिसर्च एण्ड इन्फोरमेशन सिस्टम्स फॉर द नॉन–अलाइन्ड एण्ड द अदर डेवेल्पिंग कंट्रीज़, नई दिल्ली, 2002, तालिका 11.4, पृष्ठ 143।

6. *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया–2002 : ऐग्रिकल्चर एण्ड रूरल डेवेलपमेंट*, मेहबूब उल हक मानव विकास केन्द्र, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, कराची, 2002, पृष्ठ 101।

7. http://www.acdi-cida.gc.ca/cida_ind.nsf/ और *ह्यूमन डिवेलपमेन्ट इन साउथ एशिया 2001 : ग्लोबलाइजेशन एण्ड ह्यूमन डेवेलपमेंट*, मेहबूब उल हक मानव विकास केन्द्र, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कराची, 2001, पृष्ठ 48।

8. *अफ्रीकी मलेरिया रिपोर्ट 2003* – देखें –

   http : //www.rbm.who.int/amd2003/amr2003/amr_toc.htm.

9. *लेप्रोसी फैक्ट शीट 2002* – देखें –

   http://www. who.int/mediacentre/factsheets/fs101/e

10. ये हैं– बोत्सवाना, लिसोथो, मोज़ाम्बिक, नामीबिया, दक्षिण अफ्रीका, ज़ाम्बिया, ज़िम्बाब्वे, स्वाज़िलैण्ड और कैमरून।

11. *एलिमिनेटिंग वर्ल्ड पावर्टी : मेकिंग ग्लोबलाइज़ेशन वर्क फॉर द पूअर*, अंतर्राष्ट्रीय विकास पर श्वेत–पत्र, डी. एफ. आई. डी., यू. के., 2000 तथा यू. एन. डी. पी. एचआईवी / एड्स स्टैटिस्टिकल फैक्ट शीट, 2002 – देखें – http://www.undp.org/hiv/docs/Barcelona-statistical-fact-sheet-2July02.doc

12. यू. एन. डी. पी., (2001) तत्रैव तथा एवं वर्ल्ड डेवेलपमेंट इंडिकेटर्स 2002, विश्व बैंक 2002, तालिका 2.16, पृष्ठ 109।

13. वही।

14. देखें – http://www.who.int/inf-fs/en/fact210.html

15. ''पम्पिंग आउट पॉइज़न'' *डाउन टू अर्थ*, अप्रैल 15, 2003, पृष्ठ 31।

16. संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या निधि द्वारा 41 देशों के हाल ही में किए सर्वेक्षण के परिणाम, *स्टेट ऑफ द वर्ल्ड पॉपुलेशन रिपोर्ट 2002 : पिपल, पावर्टी एण्ड पॉसिबिलिटीज़*, यू. एन. एफ. पी. ए., न्यूयार्क, 2002, पृष्ठ 33 । साथ ही दक्षिण एशिया में कुपोषण स्तर के लिए यू.एन.स्टेटिसटिक्स डिविजन मिलेनियम इंडिकेटर्स डाटाबेस : http://millenniumindicators.un.org/unsd/mi/mi_series_results.asp?rowID = 566 देखें।

17. *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया 2002* तत्रैव, पृष्ठ 16 और *वर्ल्ड डेवेलपमेंट इंडिकेटर्स 2002*, तत्रैव, तालिका 2.14, पृष्ठ 100।

18. *पावर्टी रिडक्शन स्ट्रैटजी पेपर*, जून 2001, केन्याई सरकार।

19. यू. एन. डी. पी., 2001, तत्रैव।

20. *द अदर साइड ऑफ द स्टोरी : ए फेमिनिस्ट क्रिटीक ऑफ कनाडा'ज़ नेशनल रैसपोंस टू द यू. एन. क्वेश्चनेयर ऑन द इम्पलिमेंटेशन ऑफ द बीजिंग प्लेटफार्म फॉर एक्शन*, कनेडियन फेमिनिस्ट एलायंस फॉर इन्टरनेशनल एक्शन, दिसम्बर, 1999। www.fafia.org/Bplus5/sideall_e.htm देखें।

21. यू.एन.डी.पी., 2001, तत्रैव।

22. 1995 के आँकडे : *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया*, तत्रैव पृष्ठ 101।

23. यू.एन.डी.पी., 1995, *ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट : जैंडर एण्ड ह्यूमन डेवेलपमेंट*, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

24. वर्ल्ड बैंक जैन्डर स्टेटिस्टिक्स पर आधारित –देखें : http://genderstats.worldbank.org; यू.एन.ई.एस.सी.ए.पी. डाटा–देखें : http://www.unescap. org/pop/publicat/apss157/chapter1.htm और यूनिसेफ डाटा देखें: http://www.childinfo.org/eddb/malnutrition/database1.htm., परन्तु कुछ अन्य स्रोत कुछ अलग ही आँकड़े दर्शाते हैं, उदाहरणार्थ :

    (क) विश्व स्वास्थ्य संगठन के आँकड़ों के अनुसार बांगलादेश में नवजात शिशु मृत्यु–दर प्रति हज़ार बालिकाओं में 84.2 और बालकों में 95.0 है।

    (ख) विश्व स्वास्थ्य संगठन के आँकड़ों के अनुसार श्रीलंका में नवजात शिशु मृत्यु–दर प्रति हज़ार बालिकाओं में 20.0 और बालकों में 30.8 है।

    (ग) यू.एन.ई. एस.सी.ए.पी. के आँकड़ों के अनुसार दक्षिण एशिया में नवजात शिशु मृत्यु दर प्रति हज़ार जन्म में 104 है।

    (घ) वर्ष 1995–2000 के दौरान एकत्रित यू.एन.आई.सी.ई.एफ. के आँकड़े।

    (ङ) लीला विसारिया के आँकड़े ''ऐजुकेशन एण्ड हेल्थ इन साउथ एशिया वाट डू वी नो?'' *एशिया पैसिफिक पॉपुलेशन जर्नल*, 2000, तालिका 3, पृष्ठ 89, देखें : http://www.unescap.org/pop/journal/2002/Jour17-4-p7.pdf.

25. वर्ल्ड बैंक जैंडर स्टेटिस्टिक्स पर आधारित, तत्रैव।

26. *रिपोर्ट ऑन लेबर वायलेशंस इन कैमरून*, इंटरनेशनल कन्फैडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियन्स, जुलाई 2001।

27. राष्ट्रीय महिला वकील संघ बांगलादेश द्वारा 2000 में आयोजित

अध्ययन– देखें : www.adb.org/Documents/Books/Combating_Trafficking/Regional_Synthesis_Paper.pdf

28. *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया*, 1997, यू.एन.डी.पी. न्यूयार्क 1998।

29. ये आँकड़े केवल रिपोर्ट किए जाने वाले मामलो पर आधारित हैं। इनकी वास्तविक संख्या कहीं अधिक है क्योंकि इस क्षेत्र में महिलाओं पर होने वाले अधिकांश मामलो की रिपोर्ट नहीं की जाती है। स्रोत : *क्राइम इन इंडिया 2000*, नेशनल क्राइम रिकार्ड्स ब्यूरो, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 196 से आगे।

30. *स्टेट ऑफ द वर्ल्ड पॉपुलेशन रिपोर्ट 2000, लैव्स टूगेदर, वर्ल्ड्स एपार्ट : मेन एण्ड विमेन इन ए टाइम ऑफ चेंज*, यू.एन.एफ.पी.ए. न्यूयार्क 2000 देखें – http://www. unfpa.org/swp/2000/english/ch03.html

31. डब्ल्यू.एच.ओ. एचआईवी/एड्स स्टेटिस्टिक्स– देखें : http://www.who.int/hiv/facts/regionalstats_m.jpg.

32. ''द टफ न्यू रेप ऐक्ट इन फोर्स,'' *द नामीबियन*, जून 19, 2000।

33 http://www.childinfo.org/eddb/malnutrition / index.html

34. *डाउन टू अर्थ – गोबर टाइम्स*, # 29, अप्रैल 15, 2003, पृष्ठ 62।

35. वर्ल्ड बैंक जैंडर स्टेटिस्टिक्स पर आधारित तत्रैव तथा यूनीसेफ डाटा – देखें : http://www.childinfo.org/cmr/cmrsri.html

36. 5 मार्च, 2001 को विल्टन पार्क में 'ह्यूमन राइट्स एण्ड द एलीविएशन ऑफ पावर्टी' पर हुए सम्मेलन में विन्स्टन कॉक्स, उप महासचिव (विकास सहकारिता), राष्ट्रमंडल सचिवालय, द्वारा दिया, गया भाषण '*द रोल ऑफ द कॉमनवेल्थ इन पावर्टी रिडक्शन*।

37. 1998 के आँकड़े : *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया 2001*, तत्रैव, पृष्ठ 167।

38. *वर्ल्ड डेवेलपमेंट इंडिकेटर्स*, 2002 तत्रैव, तालिका 2.9।

39. 'लॉज़ अलोन कैनॉट टैकल चाइल्ड लेबर', *द फाइनेन्शियल एक्सप्रेस*, फरवरी 5, 2000 देखें : http://www.financialexpress.com/fe/daily/20000205/fco30023.html

40. ये बच्चे असंगठित क्षेत्र में, कृषि, निर्माण उद्योग, होटल व चाय की दूकानो में, या अपने घरों में या दूसरों के घर में हाथ बंटाने का काम करते हैं– देखें : http://www.globalmarch.org/worstformsreport/world/india.html

41. आबू साईद खान, 'राइट टू वर्क एण्ड राइट्स ऐट वर्क', हामिद हुसैन (सम्पा.) *ह्यूमन राइट्स इन बांगलादेश 2001*, आइन ओ सलीश केन्द्रा ढाका, 2002, पृष्ठ 180।

42. संघीय सांख्यिकी ब्यूरो तथा आईएलओ बाल श्रम सर्वेक्षण, पाकिस्तान, 1996 – देखे : http://www.ilo.org/public/english/standards/ipec/ simpoc/pakistan/report/pakistan96.pdf पाकिस्तान के बाल–श्रमिकों पर इससे नवीन आँकडे उपलब्ध नहीं हैं।

43. *चाइल्ड कैमल जॉकीज़ इन युनाइटेड अरब एमीरेट्स (यू.ए.ई.) एण्ड अदर गल्फ स्टेट्स*, गुलामी के सामयिक रूपों के संबंध में युनाइटेड नेशन्स वर्किंग ग्रुप को एंटी स्लेवरी इंटरनेशनल की प्रस्तुति, 26वाँ सत्र, 2001।

44. यू.एस.स्टेट डिपार्टमेंट की वार्षिक मानवाधिकार रिपोर्ट – 2000।

45. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) 1999 रिपोर्ट (ई/सीएन. 4/1999/71); कन्वेन्शंस नं. 29 और नं. 182।

46. अली हसन, 'स्लेव नॉट पार्टनर्स', *इन्डेक्स ऑफ सेंसरशिप*, खण्ड 1, 2000, पृष्ठ 48।

47. अली एर्सलान तथा मोहम्मद नॉमन, 'बाँडेड लेबर इन पाकिस्तान : ऐन ओवरवियु', 2001 देखे : http://www.ilo.org/public/english/standards/decl/publ/papers/piler.pdf

48. संयुक्त राष्ट्र एकीकृत क्षेत्रीय सूचना तंत्र, (2001) 'चाइल्ड सोल्ज़र्स यूज्ड बाई ऑल फैक्शन्स', *फाइनेंसियल टाइम्स*, लंदन, 13 जून।

49. ऐम्नेस्टि इंटरनेशनल प्रेस प्रकाशन– देखें : http://www.amnestyusa.org/ news /2001/srilanka10112001.html

50. *राइट्स ऑफ पीस रिस्पोंडिंग टू द राइट्स ऑफ चिल्ड्रन इन आर्मड कानफ्लिक्ट 2000 : 2001* कैन्टिलिवर्स – पीसमीडिया एण्ड इंटरनेशनल ब्यूरो फॉर चिल्ड्रन्स राइट्स, मॉन्ट्रियल 2001।

51. द यू.एन. सब–कमीशन ऑन प्रिवेनशन ऑफ डिस्क्रिमिनेशन एण्ड प्रोटेक्शन ऑफ माइनोरिटीज़ (1984) – *द स्टडी ऑफ द प्रोब्लम ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेन्स्ट इन्डीजनस पापुलेशन्स*।

52. आस्ट्रेलियन ब्यूरो ऑफ स्टेटिस्टिक्स, 2000।

53. *एम्पलॉईमैंट एण्ड अनएम्पलाईमैंट सिचुएशन अमन्ग सोशल ग्रुप्स इन इंडिया*, 1999–2000, एनएसएस 55 राउंड सर्वे रिपोर्ट # 469, नई दिल्ली, 2001, तालिका 6.1 आर, पृष्ठ 53–60।

54. *नेशनल हेल्थ पॉलिसी 2002* – देखें : http://mohfw.nic.in/np2002.htm

55. यूएनएड्स (2000) *एपिडेमिओलोजिकल फैक्ट शीट ऑन एचआईवी/एड्स सेक्शुअली ट्रांसमिटेड इन्फेक्शंस*, आस्ट्रेलिया 2000 अपडेट, आस्ट्रेलिया।

56. कूम्ब, आर. (2001) ''इंटेलेक्चुअल प्रोपर्टी ह्यूमन राइट्स एण्ड सोवरेनिटी : न्यू डाइलेम्माज़ इन इंटरनेशनल लॉ पोज़्ड बाय द रिकग्निशन ऑफ इंडीजनस नोलेज एण्ड द कंज़र्वेशन ऑफ बायोडायवर्सिटी'', नं. 16, *इंडियाना जर्नल ऑफ ग्लोबलाइज़ेशन* (वैबसाइट पर भी : http://www.law.indiana.edu/glsj/vol16/no.1/coom

57. ग्लोबल इंटरनली डिस्प्लेस्ड पर्सन्स डाटाबेस : इंडिया देखें : http://www.db.idpproject.org/sites/idpsurvey.nsf/wViewCountries036F1FD1EF3D7FDAC1256A9400383D3D

58. *सोर्सेस ऑफ हाउसहोल्ड इनकम इन इंडिया 1999–2000*, रिपोर्ट # 463 (55/1.0/5), नेशनल स्टेटिस्टिक्स सर्वे 55 राउंड, एनएसएसओ, कोलकता, 2001।

59. सिद्दिकी, ए. (2001), 'बांगलादेश : ह्यूमन राइट्स इन एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग ज़ोन्स', *एशियन लेबर अपडेट,* अंक संख्या 38, जनवरी मार्च।

60. *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया– 2002* तत्रैव, पृष्ठ 107।

61. जिमोल उन्नी, ''जैंडर एण्ड इन्फोर्मेलिटी इन लेबर मार्केट इन साउथ एशिया,'' *इकोनोमिक एण्ड पॉलिटीकल वीक्ली,* खण्ड xxxvi, # 26, जून 30, 2001, तालिका 6, पृष्ठ 2368 से आगे।

62. वही।

63. वही।

64. वही।

65. http://citu.org.in/wclass_aug02_a6.htm

66. पी.साईनाथ, ''द बस टू मुम्बई,' *द हिन्दू* (मैगज़ीन स्पलीमैंट), जून 01, 2003 तथा ' द रॉन्ग रूट आउट', *द हिन्दू* (मैगज़ीन स्पलीमैंट), जून 08, 2003।

67. वैसबैंड, ई. (2000). ''डिस्कर्सिव मल्टीलेट्रलिज़्म : ग्लोबल बैंचमार्क्स, शेम एण्ड लार्निंग इन द आईएलओ लेबर स्टेंन्डर्ड्स मॉनिट्रिंग रेजीम'', #44, *इंटरनेशनल स्टडीज़ क्वार्टर्लि* पृष्ठ 664।

68. आईएलओएलईएक्स –इंटरनेशनल लेबर स्टैन्डर्ड्स का डाटाबेस देखें : http://www.ilo.org/ilolex/english/newratframeE.htm

69. डब्ल्यू, आर. वरदराजन, 'ऐमैंडमैंट ऑफ आईडी एक्ट, एनडीए गवरमैंट'स बार्बरिक ओफेनसिव अगेन्स्ट वार्किंग क्लास,'' *पीपल्स डेमोक्रेसी,* खण्ड xxvi सं.9, मार्च 03, 2002 देखें– http://pd.cpim.org/2002/march03/03032002_tu.htm

70. *ऐजिंग एण्ड डेवेलपमेंट रिपोर्ट : पावर्टी, इंडीपेंडेन्स एण्ड द वर्ल्डस ओल्डर पीपल,* अर्थस्कैन, हैल्पऐज इंटरनेशनल, (2000a)।

71. प्रवीण विसारिया, ''डेमोग्राफिक्स ऑफ ऐजिंग इन इंडिया'', *इकोनोमिक एण्ड पॉलिटीकल वीक्ली,* खण्ड xxxvi, # 22, जून 02, 2001 : पृष्ठ 1967।

72. वृद्धावस्था पर किए गए क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर यूएनईएससीएपी की रिपोर्ट, जून 2002 – देखे : http://www.globalaging.org/rural_aging/world/reporto.htm

73. इस्माइल, एस. एण्ड मनांधर एम, (1999) *बैटर न्यूट्रिशन एण्ड ओल्डर पीपुलः ऐसेस्मैंट एण्ड ऐक्शन,* लंदन : हैल्प ऐज इंटरनेशनल।

74. रोमा राणा, 'ट्रांससैन्डिंग मैडिकल लिमिटेशन्स,' *यूनाइटेड नेशन्स क्रॉनिकल* (ऑनलाइन ऐडिशन) खण्ड XL # 1, 2003 देखें : http : //www.un.org/Pubs/chronicle/2003issue1/0103p61.html तथा एशियाई विकास बैंक के अनुमान, देखें : http://www.adb.org/SocialProtection/disability.asp

75. वर्ष 1991 की जनगणना के आँकड़ें, देखें *: नेशनल ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट,* तत्रैव पृष्ठ 101।

76. कन्ट्री प्रोफाइल ऑन डिस्ऐबिलिटी : पीपल्स रिपब्लिक ऑफ बांगलादेश, जापान इंटरनेशनल कॉर्पेरेशन एजेंसी, 2002 देखें : www.jica.go.jp/english/global/dis/pdf/ban_eng.pdf

77. कन्ट्री प्रोफाइल ऑन डिसऐबिलिटीज़ : इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ पाकिस्तान, जापान इंटरनेशनल कॉर्पेरेशन एजेंसी, 2002 देखें : www.jica.go/jp/english/global/dis/pdf/pak_eng.pdf

78. साक्षी ब्रूता होसमने, 'डेवेलपिंग द जैंडर डिमेंशन इन इंडिया'स डिसएबिलिटी राइट्स मूवमैंट,' *विमेन इन एक्शन,* # 2, 2001 देखें : http://www.isiswoman.org/pub/wia/wia201/sakshi.htm

79. मैरी–जो डेल विचियो गुड, 'विमेन एण्ड मैंटल हैल्थ', यूएन डिवीजन फॉर द ऐडवांसमैंट ऑफ विमेन देखेः http://www.un.org/womenwatch/daw/ csw/mental.htm

80. बैकग्राउंड रीडिंग मैटीरियल फ्रॉम द इंटरनेशनल वर्कशॉप फॉर नेशनल ह्यूमन राइट्स इंस्टीट्यूशन्स फ्रॉम द कॉमनवैल्थ एण्ड एशिया–पैसिफिक रीजन फॉर प्रोमोटिंग द राइट्स ऑफ पीपुल विद डिसऐबिलिटीज़ : टूवर्ड्स ए न्यू यू.एन. कन्वेनशन, मई 2003, पृष्ठ 11।

81. एन्न अलवान, 'पॉवर्टी एण्ड डिसऐबिलिटी–ए सर्वे ऑफ द लिट्रेचर', वर्ल्ड बैंक सोशल प्रोटेक्शन डिस्कशन पेपर सीरिज़ # 9932, 1999, पृष्ठ iv।

82. साइरिल सिरीवर्दना, 'मोटर एण्ड अपर लिम्ब डिसऐब्लड पीपुल इन द ऐग्रीकलचर इंडस्ट्री इन श्रीलंका', *एसडी डाईमैंशन,* संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन का संपोषणीय विकास विभाग 1997, देखे : http://www.fao.org/sd/ PPdirect/PPre.0041.htm

83. *द पर्सन्स विद डिसऐबिलिटीज़ (ईक्वल ऑपर्चूनिटीज़, प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स एण्ड फुल पार्टिसिपेशन) 1995* का अधिनियम जो 1996 में लागू हुआ। 1992 में गठित भारतीय पुनर्वास समिति को अशक्तों के पुनर्वास हेतु मानवश्रम संसाधनो के विकास का कार्य सौंपा गया, देखें : http://www.rehabcouncil.nic.in/

84. नारायण डी, चेम्बर्स. आर.शाह, एम.के. एण्ड पेटेश पी. (2001) *वायसेज़ ऑफ द पूअर : क्राइंग आउट फॉर चेंज,* न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस फॉर द वर्ल्ड बैंक, पृष्ठ xvii।

85. सेन, ए. (2000). *डेवेलपमेंट एज़ फ्रीडम,* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

86. *रूरल पावर्टी रिपोर्ट 2001 – द चैलेंज ऑफ ऐन्डिंग रूरल पॉवर्टी,* आईएफएडी, 2001, पाठ 2–देखें : http://www.ifad.org/poverty/chapter2.pdf

87. अग्नेस आर. क्विसम्बिंग, लॉरेन्स हद्दाद एण्ड क्रिस्टिन पेन्या, 'जैंडर एण्ड पॉवर्टी न्यू ऐविडेंस फ्रॉम 10 डेवेलपिंग कंट्रीज़', एफएनसीडी डिस्कशन पेपर # 9, आईएफपीआरआई, वाशिंगटन 1995 – देखें : http://www.ifpri.org/divs/fcnd/dp/papers/dp09.pdf

88. *रूरल पावर्टी रिपोर्ट 2001,* तत्रैव, पाठ 2।

89. वकार मुस्तफा, 'सुईसाइड्स स्पाईरल इन पॉवर्टी स्ट्रिकन पाकिस्तान,' वन वर्ल्ड साउथ एशिया, 2003, देखें : http://southasia.oneworld.net/article/archive/1811/

90. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, अनुच्छेद 16।

91. ग्रेडर, डब्ल्यू. (1997) *वन वर्ल्ड रेडी और नॉट : द मेनिक लॉजिक ऑफ ग्लोबल कैपिटलिज़्म,* न्यूयार्क : साइमन एण्ड स्कुस्टर, पृष्ठ 359।

92. *ह्यूमन डेवेलपमेंट इन साउथ एशिया 2001,* तत्रैव पृष्ठ 47 से आगे।

93. वही, पृष्ठ 48–49, तालिका 3.1।

94. *नेशनल ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट 2001,* तत्रैव, पृष्ठ 38।

95. गौरव दत्त और मार्टिन रवालियो, 'इज़ इंडिया'स इक्नॉमिक ग्रॉथ लिविंग द पूअर बिहाइंड?' वर्ल्ड बैंक पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर सीरिज़, 2002 देखे : http://econ.worldbank.org/files/15265_wps2846.pdf; अंगस डीटन और ज़ॉन द्रेज़, 'पॉवर्टी एण्ड इन्इक्वैलिटी इन इंडिया ए रि–इग्ज़ामिनेशन,' *इक्नॉमिक एण्ड पॉलिटीकल वीकली,* खण्ड xxxvii, # 35, सितम्बर 7, 2002. पृष्ठ 3729–3748।

96. *नेशनल ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट 2001,* तत्रैव, पृष्ठ 38 तथा द टेन्थ फाइव ईयर प्लान डॉकूमेन्ट, खण्ड 2, तालिका 2.17, पृ.48, देखें :http://planningcommission.nic.in/plans/planrel/fiveyr/10th/volume1/v1-ch2.pdf

97. *वर्ल्ड डेवेलपमेंट इंडीकेटर्स 2002,* तत्रैव तालिका 6.5, पृष्ठ 346।

98. मैल्टज़र कमीशन रिपोर्ट के पूर्ण विवरण हेतु, देखें : http://www.house.gov/jec/ imf/meltzer.htm

99. एलन मैल्टज़र, *द वर्ल्ड बैंक वन ईयर आफ्टर द कमीशनर्स रिपोर्ट टू कांग्रेस,* देखें : http://www.house.gov/jec/hearings/03-08-01/meltzer.pdf

100. लाइनस, एम. (2000) 'लैटर फ्रोम जाम्बिया' द नेशन, लुसाका, 14 फरवरी, www.corpwatch.org.

101. मैल्टज़र कमीशन रिपोर्ट के पूर्ण विवरण हेतु, देखें : http://www.house.gov/jec/imf/meltzer.htm

102. एलन मैल्टज़र, तत्रैव।

103. जुबली 2000 डाटाबैंक देखें : http://www.jubilee2000uk.org/databank/debttables/debtdata99.htm

104. *साउथ एशिया डेवेलपमेंट कार्पोरेशन रिपोर्ट 2001/02,* तत्रैव, तालिका 4.4, पृष्ठ 37।

105. मैल्टज़र कमीशन रिपोर्ट, देखें : http://www.house.gov/jec/imf/ meltzer.htm

106. *साउथ एशिया डेवेलपमेंट कार्पोरेशन रिपोर्ट 2001/02,* तत्रैव, पृष्ठ 112।

107. *वर्ल्ड डेवेलपमेंट इंडीकेटर्स 2002,* तत्रैव, तालिका 4.17, पृष्ठ. 268 से आगे।

108. वही।

109. प्रेम शंकर झा, 'नो स्लूशन फॉर फिस्कल मेस इन इंडियन स्टेट्स,' *बिजनेस टाइम्स,* जुलाई 3, 2003, देखें : http://business-times.asia1.com/sub/views/story/0, 4574,86435,00. html.

110. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया, *स्टेट फाइनेन्स : ए स्टडी ऑफ बजट्स ऑफ 2002–2003,* ओकेज़न्ल पेपर्स, नई दिल्ली, 2003 देखें : http://www.rbi.org.in/sec7/34967/doc

111. एम. मेहरा, (2001), *बिजनेस एण्ड ह्यूमन राइट्स–टाइम टू मेक ए डिफरेन्स,* (अप्रकाशित)।

112. एक देश की जीडीपी या एक राज्य की एसडीपी की गणना एक निश्चित वित्तीय वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के आर्थिक मान को जोडकर की जाती है। एक एमएनसी की आय में पूर्व–कर आय, वेतन व कर्मचारियों को प्रदत्त हितलाभ तथा कम्पनी द्वारा प्राप्त अन्य लाभ शामिल हैं। बैस्ड ऑन यूएनसीटीएडी प्रेस रिलीज़ 'आर ट्रांसनेशनल्स बिगर दैन कंट्रीज़?' जुलाई, 2002, देखें : http://r0.unctad.org/en/press/pr0247en.htm तथा *इकनॉमिक सर्वे 2002–03,* खण्ड 1, भारत सरकार, नई दिल्ली देखें : http://indiabudget.nic.in/es/2002-03/chapt2003/tab17.pdf

113. *ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट* से संकलित आँकड़े, 2003, यूएनडीपी, ओयूपी, नई दिल्ली, 2003; *नेशनल ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट 2001,* तत्रैव, *द बिलिनियर क्लब,* बिजनेस स्टैन्डर्ड, नई दिल्ली, जनवरी 2004, देखें : http://www.business-standard.com/special/billion/2003/rich.htm तथा *द हिन्दुस्तान टाइम्स,* जून 13, 2003।

114. 'ग्लेक्सो स्मिथक्लाइन अंडर प्रैशर ओवर ड्रग्स फॉर पूअर', *फाइनेंनशियल टाइम्स,* फरवरी 12, 2000, देखें : http://www.FT.com

115. एम. मेहरा, (2001), तत्रैव।

116. डी.वैंकटेशवर्लू, *चाइल्ड लेबर एण्ड ट्रांसनेशनल सीड कम्पनीज़ इन हाईब्रिड कॉटन सीड प्रोडक्शन इन आंध्रप्रदेश,* नेदरलैंड की भारत कमेटी द्वारा अधिकृत अध्ययन, अप्रैल 2003, देखे : http://www.indianet.nl/cotseed.html

117. आधार : रिचर्ड महापात्रा, 'द लास्ट कॉमन प्रॉपर्टी,' *डाउन टू अर्थ,* मार्च 15, 2003, पृष्ठ 44–45 तथा ओस्कर ओलिवेरा फोरोंडा, 'द वार ओवर वाटर इन कोचाबम्बा, बोलिविया', नगर निगम सेवा परियोजना सम्मेलन को सम्बोधित, विट्स यूनिवर्सिटी, जोहानेसबर्ग, मई 2002, देखें : http://qsilver.queensu.ca/mspadmin/pages/Comferences/Service/Olivera.htm

118. टी.सी.ए. रामानुजम् तथा टी.सी.ए. संगीता, 'न्यू आईपीआर रेजीम–प्रोटैक्शन फॉर इंडियन पेटेंट्स,' *बिज़नेस लाइन* (इंटरनेट ऐडिशन), अप्रैल 24, 2001 देखें : http://www.blonnet.com/businessline/2001/04/24/stories/042420ma. htm

119. मुखर्जी ए. (2001) *द स्टेट ऑफ राइट्स इन साउथ एशिया* 2001 (अप्रकाशित)।

120. 'द हिस्ट्री ऑफ डब्ल्यू.जी.ग्रेस एण्ड कम्पनी' स्पेशल रिपोर्ट *सियाटल पोस्ट इन्टेलिजेंसर,* नवम्बर 18, 1999, देखें : http://seattlepi.nwsource.com/uncivi laction/grac19.shtml

121. भारत के रिसर्च फाउंडेशन फॉर साइंस टेक्नोलॉजी एण्ड इकोलॉजी के वंदना शिवा, इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ ऑर्गेनिक ऐग्रीकल्चर मूवमैंट्स के लिंडा बुलर्ड और मार्गेट ऐल्वोएट जो युरोपियन संसद के भूतपूर्व

सदस्य व ग्रीन ग्रुप नामक संगठन के प्रधान हैं, ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की अनुसंधान सहायता से इस पेटैंट को चुनौती दी है। वंदना शिवा, 'फ्री ट्री' *द हिन्दुस्तान टाइम्स,* जून 2000, देखें : http://www.gene.ch/ genet/2000/Jun/msg 00032.html तथा कीर्ति रेड्डी, 'हॉउ द बैटल फॉर नीम वाज़ वोन' *स्वोर्ड ऑफ ट्रूथ* 2001, देखें : http://www.swordoftruth. com/ swordoftruth/archives/byauthor/keerthireddy/ htbfnww.html

122. जॉर्ज लाइपे, ' द बैटल ऑफ हल्दी इज़ ओवर – द वार लाइज़ ऐहैड', अगस्त 1997, देखें : http://www.rediff.com/news/aug/ 27haldi.htm

123. उज़्मा जमील, 'बायोपाइरेसी द पेटेंटिंग ऑफ बासमती बाई राइसटेक' पब्लिकेशन ऑफ द कमिशन ऑन एंवॉयरमैंट, इकानॉमिक एण्ड सोशल पॉलिसी–साउथ एशिया एण्ड सस्टेनेबल पॉलिसी डेवेलपमेंट इंस्टीट्यूट, अक्टूबर 1998, देखें : http:/www.iucn.org/themes/ceesp/ Publications/ artmono/basmati.doc

124. बासमती अपडेट : इंटरनेशनल कैम्पेन अगेन्स्ट बायोपाइरेसी, मई 2001 देखें : http://www.gene.ch/genet/2001/May/msg 00010.html3

125. रणजीत देवराज, 'बायोडाईवर्सिटी या बायोपाइरेसी,' दिसम्बर 2002, देखें : http://indiatogether.org/environment/articles/ biodiv02.htm नये जैव विविधता कानून के विवरण हेतु, देखें : http://www.forests.tn.nic.in/biodiversity_ act.htm

126. रामानुजम और संगीता, 'न्यू आईपीआर रेजीम– ......' तत्रैव।

127. *ग्लोबलाइज़ेशन इन्क. कानसंट्रेशन इन कार्पोरेट पावर : द अनमेन्शन्ड एजेंडा, इटीसी ग्रुप* (पूर्वतः रूरल ऐडवांसमेंट फाउंडेशन इंटरनेशनल – आरएएफआई) कम्यूनिके # 71, जुलाई 2001 : http://www.etcgroup.org/documents/ com_globalization.pdf

128. सीएसआईआर पेटेन्ट्स अपडेट देखें : http:// www.patestate.com/progress.htm

129. *वर्ल्ड डेवेलपमेंट इंडीकेटर्स 2002,* तत्रैव तालिका 5.11 पृष्ठ 320–322।

130. टी'होन्, ई. ''डॉक्टर्स इन सीयाटल : द बैटल ऑफ एक्सेस टू एसेन्शियल ड्रग्स'' *डेवेलपमेंट* 43 (2): एसआईडी ऑन लाइन डायलॉग, 2001।

131. *ग्लोबलाइज़ेशन इन्क्. कॉन्सर्टेशन इन कॉर्पोरेट पॉवर : द अन्मेन्शन्ड एजेंडा,* तत्रैव तथा 'पेईंग द प्राइस', *इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीक्ली,* खण्ड xxxviii, # 25, जून 21, 2003, पृष्ठ 2443,– के आँकड़ों पर आधारित।

132. 'द 2001 टॉप टैन कम्पनीज़' *वॉलस्ट्रीट रिव्यू 2002,* देखें : http:// www.stacommunications. com/jourals/cpm/cpmpdf/ wsv.pdf

133. बम्बई स्टॉक एक्सचेंज के रिकार्ड से कम्पनी की घोषणाएँ, देखें : http://www.bseindia.com तथा डॉ रेड्डी'स लैब हेतु देखें : http://www.drreddys.com/site/pdfs/fy03results.xls

134. मुखर्जी. ए. (2001) तत्रैव।

135. अब्दुर्रहमान ए. (2000) ''नो कनेक्शन अडंर दिस नम्बर : अफ्रीका एण्ड द इंटरनेट'' *डेवेलपमेंट एण्ड चेंज,* नं. 5, पृष्ठ 24।

136. ओलोका– ओन्यांगो जे. एवं उदगामा, डी. (2001) *इकोनोमिक, सोशियल एंड कल्चरल राइट्स, ग्लोबलाइज़ेशन एण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन द फुल इंजॉयमेंट ऑफ ह्यूमन राइट्स,* मानवाधिकारों के संवर्धन और संरक्षण पर यू.एन. सब–कमीशन को प्रस्तुत प्रगति रिपोर्ट–तिरेपनवां सत्र– पृष्ठ 5।

137. रोबिन होड्रेस, तानिया इनोलॉकी तथा टोबी वुल्फ (सम्पा.), *ग्लोबल करप्शन रिपोर्ट 2003 स्पेशल फोकस : ऐक्सेस टू इंफोरमेशन,* ट्रांसपरेन्सि इंटरनेशनल एण्ड प्रोफाइल बुक्स, लंदन, 2003, पृष्ठ 264–65।

138. सर्वेक्षण बंगलौर स्थित पब्लिक एफेयर्स सैन्टर (www.pacindia.org.) द्वारा किया गया था– देखें : गोपकुमार कृष्णन, 'पेयिंग टू सी यूअर ओन बेबी', इन रोबिन होड्रेस, तानिया इनोलॉकी तथा टॉबी वुल्फ (सम्पा), *ग्लोबल करप्शन रिपोर्ट 2003* तत्रैव पृष्ठ 157।

139. *करप्शन इन इंडिया ऐन एम्पिरिकल स्टडी–ऐन ओवरव्यू,* ट्रांसपरेन्सि इंटरनेशनल इंडिया एंड ओआरजी–एमएआरजी रिसर्च प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2002।

140. रोबिन होडेस (सम्पा.) *ग्लोबल करप्शन रिपोर्ट 2003,* तत्रैव, पृष्ठ 265।

141. पियर्सन जेड. (2001) 'एन इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स अप्रोच टू करप्शन' इन पी लारमौर एण्ड एन वोलानिन (सम्पादित) *करप्शन एण्ड एंटी–करपशन,* केनबेरा : एशिया पेसिफिक प्रैस, पृष्ठ 31।

142. पेट्टीफार ए. (2001) *फाइनांसिंग करप्शन एण्ड रिप्रेशन : द केस ऑफ केन्या एण्ड आईएफ आई'ज* (अप्रकाशित)।

143. वर्ष 1999–2000 के आँकड़े – *दसवीं पंचवर्षीय योजना का प्रलेखन,* पाठ 4.1, तालिका 4.1.8, तत्रैव।

144. गुलामी के सामयिक रूपों के सम्बंध में वर्किंग ग्रुप की प्रस्तुति, मानवाधिकार के संवर्धन एवं संरक्षण पर यू.एन. सब–कमीशन, जनीवा, मई 2002–देखें : http://www.antislavery.org/archive/ submission/submission2002-scavenging.htm

145. वर्ष 1999–2000 के ऑकडे–*दसवीं पंचवर्षीय योजना का प्रलेखन,* तत्रैव, पृष्ठ 426।

146. *राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, पांचवीं रिपोर्ट, 1998–99,* खण्ड I, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 63 व 69।

147. वर्ष 1998–1999 के आँकडे–*दसवीं पंचवर्षीय योजना का प्रलेखन, पाठ 4.1,* तालिका 4.1.7, पृष्ठ 421, तत्रैव।

148. *राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, पांचवीं रिपोर्ट,* तत्रैव पृष्ठ 70।

149. *राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002,* देखें : http://mohfw.nic.in/ np2002.htm

150. *एम्पलॉईमैंट एंड अनएम्पलाईमैंट सिचुएशन अमंग सोशियल ग्रुप्स इन इंडिया, 1999–2000,* तत्रैव, तालिका 6.1 आर, पृष्ठ 53–60।

151. *क्राइम इन इंडिया,* तत्रैव, पृष्ठ 227।

152. प्रैस रिपोर्ट के आधार पर संग्रहीत आँकड़े देखें : *डाइजेस्ट ऑफ*

cyan black

ऐट्रोसिटीस/वॉयलैंस/ किलिंग्स अगेन्स्ट दलित्स्, इंडिया कमेटी ऑफ द नैदरलैंड्स, 2003 देखें : http://www.indianet.nl /atroc2.html

153. *वॉयलैंस एंड ऐट्रोसिटीस अगेन्स्ट दलित्स* – एक्शन अलर्ट, इंटरनेशनल मूवमैंट अगेन्स्ट ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन एंड रेसिसम्, 2002 देखें : http://www.imadr.org/project/dalit/alert.2002.no.1.html

154. अल्बर्टिन. सी. गोल्डब्लैट बी. एंड मिल्स एस. (2001) *विमेन एंड इकोनॉमिक एंड सोशियल राइट्स इन द कॉमनवेल्थ* (अप्रकाशित)।

155. 'ऐक्सेस टू लैंड' इनोवेटिव ऐग्रेरियन रिफॉर्म्स फॉर सस्टेनेबिलिटी एंड पॉवर्टी रिडक्शन पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत 'बांगलादेश रिपोर्ट एवं डिस्कशन पेपर', बोन्न, 2001 देखें http://www.dse.de/zel/access-to-land/dateien/ALRD-EZE.pdf

156. *विमेन्स राइट्स सिचुएशन इन पाकिस्तान*, देखें : http://www.onlinewomeninpolitics.org/womensit/paks.pdf

157. *विमेन इन ऐग्रीकल्चर, इन्वायरमैंट एंड रूरल प्रोडक्शन : इंडिया फेक्ट शीट*, एफएओ, देखें : http://www.fao.org/sd/WPdirect/WPre0108. htm तथा नित्या राव व कुमार राणा, 'लैंड राइट्स एंड विमेन : ए केस स्टडी ऑफ द संथाल्स', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीक्ली*, खण्ड xxxii, # 23, जून 7–13, पृष्ठ 228 से आगे।

158. *विमेन्स राइट्स सिचुएशन इन पाकिस्तान*, तत्रैव।

159. *कमेटी ऑन द एलिमिनेशन ऑफ डिस्क्रिमेशन अगेन्स्ट विमेन, कॉन्क्लूडिंग ऑबर्ज़्वेशन्स : श्रीलंका 2002*, देखें : http://www1.umn.edu/humanrts/cedaw/ srilanka 2002.html

160. *एम्पलाइमेंट एंड अनएम्प्लाइमेंट सिचुएशन अमन्ग रिलिजियस ग्रुप्स इन इंडिया – 1999–2000*, एनएसएस 55 वां राउंड सर्वे, रिपोर्ट # 468, पृष्ठ 22 से आगे।

161. यह पूर्वानुमान एड्स के प्रभाव पर विश्व बैंक के नवीन अध्ययन पर आधारित हैं। क्लाइव बैल, शांतायन देवराज और हांस गर्सबाख, *द लॉंग रन इकोनॉमिक कॉस्ट ऑफ एड्सः थियोरी एण्ड ऐन ऐप्लीकेशन टू साउथ अफ्रीका*, 2003 देखें : http://www1.worldbank.org/hiv_aids/docs/BeDeGe_BP_total2.pdf

162. वर्ल्ड बैंक, 2001, तत्रैव।

163. वाटकिंस, के. *द ऑक्सफैम पावर्टी रिपोर्ट*, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफैम, 1995।

164. कॉट्रेल, जे. (2001) *एनवॉयरमैंटल जस्टिस, वल्नरबिलिटी एण्ड राइट्स*, (अप्रकाशित)।

165. हेमंत वितनागा,'फॉरेस्ट्स वन्स सेक्रेड बट? *बुद्धिज़म वर्सेज़ बिज़नेस इन श्रीलंका*, दिसम्बर 2000, देखें : http://www.rio-plus10_org./en/info/ biodiversity/68.php

166. डब्ल्यूडब्ल्यूएफ फैक्टशीट, देखे : http://www.wwfindia.org/programs/for-bio/index. jsp?prm=35

167. *ग्लोबल एनवॉयरमैंट आउटलुक (जीईओ) 2000*, यूएनईपी देखें : http://www.unep.org/geo2000/english/0064.htm

168. मार्टिन खोर, 'लैंड डिग्रेडेशन कॉज़ेज़ यूएस डॉलर 10 बिलियन लॉस टू साउथ एशिया ऐनुवली' देखें : http://www.twnside.org.sg/title/land-ch.htm

169. *अर्बन एयर पॉलुशन मैनेजमेंट साउथ एशिया अर्बन एयर क्वालिटी मैनेजमेंट, ब्रीफिंग नोट # 11*, वर्ल्ड बैंक, फरवरी 2003, देखें : http://1nweb18.worldbank.org/SAR/sa.nsf/Attachments/Briefing11/$file/Briefing_Note_ No_11.pdf तथा सिनिया ल्वोव्स्की, 'इकनॉमिक कॉस्ट ऑफ एयर पॉलूशन विद स्पेशल रेफरेंस टू इंडिया' स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत अध्ययन, दिल्ली 1998, देखें : http://1nweb18.worldbank.org/SAR/Sa.nsf/Attachments/EconomicCost/$File/Economic+costs+of+air+pollution+KL.pdf

170. रोमीर चटर्जी, मीता मेहरा तथा शिल्पी बैनर्जी, 'इन्वॉयरमैंटल सिक्योरिटी इन साउथ एशिया,' फरवरी 2000, देखें : http:www.teriin.org/energy/envsec.htm

171. *थ्रेट्स टू इंडियन बायोडाइवर्सिटी*, देखें : http://www.teriin.org/biodiv/threats.htm तथा *लॉस ऑफ बायोडाइवर्सिटी थ्रेट्न्स फाइव केटेगरीज़ ऑफ फौना,'* देखें : www/iucn.org/news/december02/independentbang27dec.doc

172. जून, 2001 में श्रीलंका के शहरी विकास मंत्री माननीय मंगला समरवीरा द्वारा मानव बस्तियों (हैबिटेट II) के लिए यू.एन. सम्मेलन के सार के कार्यान्वयन के पूर्ण पुनरीक्षण एवं मूल्यांकन हेतु विशेष 25 वें अधिवेशन में दिया गया वक्तव्य, देखें : http://www.un.org/ga/habitat/statements/docs/srilankaE.html

173. *एनवॉयरमैंट– डेवेलपमेंट चैलेंजस*, यूएसएआईडी, भारत, देखें : http://www.usaid.gov/in/programares/environm.htm

174. *ऐनवॉयरमैंटल एण्ड नेचुरल रिसोर्सेस मैनेजमेंट इन साउथ एशिया : ऐन ऐसेस्मेंट ऑफ इशुज़ एंड ऑपर्चुनिटीज़*, देखें : http://www.irgltd.com/irgltd/Pubs/SA%20Env.%20Profile/india.html

175. रोमीर चटर्जी (सम्पादक) 'ऐनवॉयरमेंटल सिक्योरिटी इन साउथ एशिया' तत्रैव तथा मुद्दसर रिज़्वी, 'पाकिस्तानः न्यू फंडस बूस्ट ग्रीन एक्शन प्लान्स,' नवम्बर 2001, देखेंः http://forests.org/archive/asia/paknewfu.htm

176. *दसवीं पंचवर्षीय योजना का प्रलेखन*, देखें : http://planningcommission.nic.in/plans/planrel/fiveyr/10th/volume3/v3_ch3.pdf तथा *उत्तरपूर्व क्षेत्र के विकास विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 2002–03*, देखें : http://northeast.nic.in/AnnualReport-02-03.PDF

177. मुखर्जी, (2001), तत्रैव।

178. *रीसेंट ट्रेन्डस इन मिलिट्री एक्सपेन्डिचर*, एसआईपीआरआई, जून 2003, देखें http://projects.sipri.org/milex/mex_trends.html

179. *आर्मामेंट्स, डिसार्मामेंट एण्ड इंटरनेशनल सेक्यूरिटी*, सिप्री इयर बुक

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

2001, देखें : www.sipri.se

180. *वर्ल्ड एण्ड रीजनल मिलिट्री एक्सपेंडीचर ऐस्टीमेट : 1993–2002* , देखें : http://projects.sipri.org/milex/mex_wnr_table.html

181. मुखर्जी, (2001) तत्रैव।

182. http://disarmament.un.org/cab/smallarms/

183. इंटरनेशनल एक्शन नेटवर्क ऑन स्मॉल आर्म्स (आईएएनएसए) फैक्ट शीट– साउथ एंड सैंट्रल एशिया, देखें : http://www.iansa.org/regions/scasia/scasia.htm

184. 'एंटी गन रैली इन बांग्लादेश', आइएएनएसए प्रेस रिलीज, जून 2003, देखें : http:/www.iansa./org/action/enhanced_awareness.htm तथा *स्मॉल आर्म्स सर्वे 2002 : काउंटिंग द ह्यूमन कॉस्ट*, ग्रेजुऐट इंस्टीटयूट ऑफ इंटरनेशनल स्टडिज़, जिनीवा और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002, पृष्ठ 102।

185. *स्मॉल आर्म्स सर्वे 2003 : डेवेलपमेंट डिनाइड*, ग्रेजुऐट इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़, जिनीवा तथा ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003, देखें पाठ 4 : http://www.smallarmssurvey.org/Yearbook/ch4_ Yearbk2003_en.pdf

186. यूएनडीपी, (2001) तत्रैव।

187. *सिटिज़न्स इन गवर्नेन्स सिविल सोसायटी इन द न्यू मिलेनियम*, द कॉमनवेल्थ फाउंडेशन, (1999)।

188. सेन, ए. (1990) इंडिविजुअल फ्रीडम इज़ ए सोशल कमिटमेंट' *न्यूयार्क रिव्यू ऑफ बुक्स*, जून 14।

189. यू.एन.डी.पी., (2001), तत्रैव, पृष्ठ 20।

190. पैरा 4।

191. पैरा 7।

192. पैरा 25।

193. पैरा 26 (एफ)।

194. पैरा 26 (जे) और (आई)।

195. पैरा 26 (के)।

196. पैरा 26 (एम)।

197. ई/सी.12.1 ऐड 31, 4 दिसम्बर 1998।

198. प्रसंविदा के पूर्ण पाठ के लिए देखें : http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/a_cescr.htm

199. अनुच्छेद 13–यू.एन.चार्टर।

200. अनुच्छेद 55–यू.एन.चार्टर।

201. अनुच्छेद 22–यू.डी.एच.आर.।

202. अनुच्छेद 23–यू.डी.एच.आर.।

203. अनुच्छेद 26–यू.डी.एच.आर.।

204. अनुच्छेद 27–यू.डी.एच.आर.।

205. अनुच्छेद 16–यू.डी.एच.आर.।

206. अनुच्छेद 28–यू.डी.एच.आर.।

207. अनुच्छेद 1–आई.सी.ई.एस.सी.आर.।

208. अनुच्छेद 1.1, विकास के अधिकार पर घोषणा, 1986 देखें : http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/74.htm

209. अनुच्छेद 2.1 – वही।

210. अनुच्छेद 2.3 – वही।

211. विकास के अधिकार हेतु मानवाधिकार पर यू.एन. कमीशन के स्वतंत्र विशेषज्ञ की रिपोर्ट (1–4) देखें : http://www.unhchr.ch/development/right-01.html

212.प्रीऐम्बल – सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

213. अनुच्छेद 3 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

214. अनुच्छेद 4 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

215. अनुच्छेद 5 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

216. अनुच्छेद 6 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

217. अनुच्छेद 7, 8 तथा 9 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

218. अनुच्छेद 10 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

219. अनुच्छेद 11 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

220. अनुच्छेद 12 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

221. अनुच्छेद 13 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

222. अनुच्छेद 15 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

223. अनुच्छेद 16 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

224. अनुच्छेद 14 –सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू।

225. प्रीऐम्बल – सी.आर.सी।

226. अनुच्छेद 6 – सी.आर.सी।

227. अनुच्छेद 7 तथा 8 – सी.आर.सी।

228. विशेषकर अनुच्छेद 9, 10 और 11 – सी.आर.सी।

229. अनुच्छेद 19 – सी.आर.सी।

230. अनुच्छेद 24 – सी.आर.सी।

231. अनुच्छेद 32 – सी.आर.सी।

232. अनुच्छेद 34 – सी.आर.सी।

233. अनुच्छेद 34 और 35 – सी.आर.सी।

234. अनुच्छेद 20 और 30 – सी.आर.सी।

235. अनुच्छेद 27 – सी.आर.सी।

236. उदाहरण के लिए देखें : *आई.एल.ओ. कन्वेंशन कंसर्निंग इंडीजनस एंड ट्राइबल पीपल इन इंडिपिंडेंट कन्ट्रीज* (1991), आई.एल.ओ. कन्वेंशन (1957)

237. *सभी प्रकार के जातीय भेदभाव के उन्मूलन के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझौता* (*International Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination*, 1965)।

238. देखें : आईएलओ समझौते जिसमें बाल अधिकार से संबंधित अधिकार शामिल हैं। 1998 में आईएलओ ने कार्य के स्थल से सम्बंधित सिद्धान्तों और मौलिक अधिकारों की घोषणा को अपनाया।

239. *प्रवासियों तथा उनके परिवारों के अधिकारों पर समझौता* (*International Convention on the Rights of Migrants and their Families*)।

240. अफ्रीकी चार्टर – अनुच्छेद 15।

241. तत्रैव – अनुच्छेद 17।

242. तत्रैव – अनुच्छेद 16।

243. तत्रैव – अनुच्छेद 22।

244. तत्रैव – अनुच्छेद 27।

245. अगस्त 2001 की स्थिति।

246. अनुच्छेद 26 – *चार्टर ऑफ द आर्गनाइज़ेशन ऑफ अमेरिकन स्टेट्स* (1967)।

247. परिशिष्ट की अनुच्छेद III –*यूरोपियन सोशल चार्टर* (1965–1996 में संशोधित)।

248. अनुच्छेद 29 – *यूरोपियन सोशल चार्टर*।

249. अनुच्छेद 28 – *यूरोपियन सोशल चार्टर*।

250. *एयरी केस–सीरिज* ए न. 32 अक्टूबर 1979।

251. *मेल्लाशर बनाम आस्ट्रिया* सीरिज़ ए नं. 169, 19 दिसम्बर 1989.

252. चार्टर के पूर्ण विवरण के लिए देखें : http://www.saarc-sec.org/

253. अनुच्छेद III.3, *सार्क कन्वेंशन ऑन रीजनल अरेंजमेंट्स फॉर द प्रोमोशन ऑफ चाइल्ड वैल्फेयर इन साउथ एशिया*। समझौते के पूर्णः पाठ के लिए देखें : http://www.saarc-sec.org/publication/conv_children.pdf

254. अनुच्छेद IV. 2।

255. अनुच्छेद IV. 3 (ए) व (बी)।

256. अनुच्छेद IV. 4 (ए) व (बी)।

257. अनुच्छेद III. 6।

258. अनुच्छेद X।

259. प्रीऐम्बल टू द *सार्क कन्वेनशन ऑन प्रिवेंटिंग एंड कम्बैटिंग ट्रैफिकिंग इन विमेन एंड चिल्ड्रन फॉर प्रोस्टिट्यूशन*, देखें : http://www.saarc-sec.org/publication/conv-traffiking.pdf

260. अनुच्छेद III।

261. अनुच्छेद VII।

262. अनुच्छेद VIII।

263. अनुच्छेद IX.5।

264. अनुच्छेद VIII.3।

265. अनुच्छेद 37 - भारतीय संविधान।

266. *बलवंत राय बनाम भारत संघ*, एआईआर, 1968 ऑल. 14।

267. *मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ*, एआईआर, 1980 एस.सी. 803।

268. *महाराष्ट्र बनाम चन्द्रभान ए.* 1983 एस.सी. 803।

269. न्यायाधीश भगवती, *फ्रांसिस कोरली मल्लिन बनाम भारत संघ* मामले में – देखें एआईआर 1981 एससी 746।

270. *बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ*, एआईआर, 1984 एससी 802।

271. *पश्चिम बंगाल खेत मज़दूर समिति बनाम पश्चिम बंगाल*, एआईआर 1996 एससी 2426।

272. *मोइनुद्दीन फारुक बनाम बांगलादेश*, 1986।

273. कनाडा के लिए, *क्लार्क बनाम पीटरबोरो युटिलिटीज़ कमीशन* (1995) 24 3डी. OR 7 (ओंटारियो); न्यूजीलैंड के लिए, *लासन बनाम हाउसिंग न्यूजीलैंड* (1996)2 एनज़ेडएलआर 474।

274. अनुच्छेद 2(1)(डी)।

275. *पी.जी. गुप्ता बनाम गुजरात राज्य व अन्य*, (1995) सप्लिमेंट (2) एससीसी 182; *भारतीय डाक–तार मज़दूर मंच के माध्यम डाक–तार विभाग के तहत नियोजित अनिश्चित दिहाड़ी मज़दूर बनाम भारत संघ* (1988) 001 एससीसी 0122; *एलआईसी भारत बनाम ग्राहक अनुसंधान एवं शिक्षा केन्द्र* (1995) 055 एससीसी 0482; *समता बनाम आंध्रप्रदेश राज्य* 1997 (008) एससीसी 0191; *बंधुआ मुक्ति मोर्चा इत्यादि बनाम भारत संघ व अन्य*, एआईआर 1997 एससी 2218; *सी. मसिलमणी मुदलीयार व अन्य बनाम श्री स्वामीनाथास्वामी की मूर्ति, स्वामीनाथास्वामी तिरूक्कोइल व अन्य* 1996–(008) एससीसी 0525।

276. *उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य*, एआईआर, एससी 645।

277. अनुच्छेद 34 (1)।

278. अनुच्छेद 34 (2)।

279. *एल्ड्रिज बनाम एजी ऑफ ब्रिटिश कोलम्बिया* (1997)3 बीएचआरसी 137।

280. वही पृष्ठ 166 बी।

281. वही पृष्ठ 166 ई।

282. 1997 : एस. 44।

283. लीबेनबर्ग, एस. ''द प्रोटेक्शन ऑफ इकोनॉमिक एण्ड सोशल राइट्स इन डोमिस्टिक लीगल सिस्टम्स'' इन सी क्राउस व अन्य, (सम्पा.) *इकोनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स : ए टैक्स्ट बुक* (दूसरा

संस्करण) (हैग : मार्टिनस नैहोफ) में।

284. मिलेनियम प्रोजेक्ट, देखें : http://www.unmillennium project.org/html/dev_goals.shtm

285. अनुच्छेद 2., (बल हमारा)।

286. सामान्य टिप्पणी, 3।

287. *लिम्बर्ग सिद्धांत,* पैरा 25 और 28।

288. स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट से सूचना, www.sipri.se और यू एन डी पी की 2001 रिपोर्ट।

289. वही (पैरा 21–24)।

290. यू.एन.डी.पी. (2000), *ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट 2000 : ह्यूमन डेवेलपमेंट एंड ह्यूमन राइट्स,* न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 99।

291. *राज्य बनाम रेयरसी* (सी.ए.न. एचएए 0027.2000)

292. सामान्य टिप्पणी, 12।

293. अख्तर यू अहमद, 'फीडिंग माइन्ड्स व्हाइल फाइटिंग पॉवर्टी: फूड फॉर एजुकेशन इन बांगलादेश'– पेपर प्रिजेन्टेड एट द आईसीआर आईईआर–आईसीएआर–आईएफपीआरआई कॉन्फ्रेंस ऑन ''इकोनोमिक रिफार्मस एण्ड फूड सिक्योरिटी– द रोल ऑफ ट्रेड एंड टेक्नोलॉजी,'' नई दिल्ली 2002। पेपर के सार के लिए देखें : http://www.ifpri.org/ themes/sai/conf042402/ahmed.pdf

294. सामान्य टिप्पणी, 15 देखें : http:/www.unhchr.ch./html/ menu2/6/gc15.doc

295. *द राइट टु वाटर,* डब्ल्यूएचओ, 2003, पाठ 2, पृष्ठ 13।

296. वही।

297. *कर्नाटक राज्य बनाम अप्पा बालु इंगळे व अन्य* (1995) (स्पलीमेन्ट 4) एससीसी 0469

298. *वर्ल्ड हेल्थ रिपोर्ट 2002,* डब्ल्यू.एच.ओ. पृष्ठ 9–10 देखें : http:// www.who.int./whr/2002/en/

299.सामान्य टिप्पणी, 14, देखें : http://www.unhchr.ch/tbs/doc.nsf (Symbol)E.C.12.2000.4,+CESCR+General+ comment+14.En?Open Document

300. *कन्स्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर व अन्य बनाम भारत संघ* 1995 (003) एससीसी 0042; *राजगोपाल बनाम तमिलनाडू राज्य* (1995) 006 एससीसी 632; *चमेली सिंह व अन्य बनाम उत्तरप्रदेश राज्य* (1996) 002 एससीसी 0549; *कर्नाटक राज्य बनाम अप्पा बालु इंगळे व अन्य* 1995 (स्पलीमेंट 4) एससीसी 0469।

301. *विन्सेंट पनिकुलन्गारा बनाम भारत संघ* (1987) 002 एससीसी 165।

302. सामान्य टिप्पणी, 13, देखें : http://www.cesr.org/ESCR/ gencomment13.htm

303. *संविधान (86 वां संशोधन) अधिनियम,* 2002, देखें : http:// indiacode.nic. in/coiweb/main.htm

304. सामान्य टिप्पणी, 4, देखें : http://www.cesr.org/ESCR/ gencomment4.htm

305. *पी.जी.गुप्ता बनाम गुजरात सरकार व अन्य* (1995) सप्ली (2) एससीसी 182।

306. विश्व स्वास्थ्य संगठन प्रेस प्रकाशनी दिनांक 22 मार्च, 2002, देखें : http://www.who.int/inf-fs/en/feature206.html

307. निर्णय की अनुमोदित प्रति हेतु देखें : http://groups.yahoo.com/ group/arsenic-crisis/files/judgement-NERC-application-strike-out-Sutradar-As-case.pdf

308. इस कहानी की न्यूज़पेपर कवरेज हेतु देखें : 'बांगलादेश आर्सेनिक केस : फार रीचिंग वर्डिक्ट' *डाउन टू अर्थ,* जून 15, 2003, पृष्ठ 9 तथा 'टू बांगलादेशीस फाइल केस अगेंस्ट ब्रिटिश अर्गनाइज़ेशन इन लंदन : आर्सेनिक केस हियरिंग बिगिन्स' *द न्यू नेशन* (बांगलादेश) जून 26, 2003 देखें : http://nation.ittefaq.com/artman/ exec/view.cgi/4/ 1128

309. ओलोका– ओनयांगो और उदगामा, तत्रैव, पृष्ठ 31।

310. वही, पृष्ठ 31, पैरा 63–64।

311. उदाहरण हैं :– आईएलओ के काम से जुडे मौलिक अधिकार; बहुराष्ट्रीय उद्यम एवं सामाजिक नीति के सम्बंध में आईएलओ के सिद्धान्तों का त्रिपक्षीय घोषणा–पत्र; निगमित सामाजिक दायित्व पर संपोषणीय विकास संहिता हेतु विश्व व्यवसाय परिषद; पर्यावरणीय रूप से ज़िम्मेदार आर्थिक सिद्धान्त के लिए गठबंधन; बहुराष्ट्रीय उद्यमों के लिए ओईसीडी दिशा–निर्देश; तथा मानवाधिकारों के संवर्धन एवं संरक्षण पर यू.एन. सब–कमीशन जो कम्पनियों के लिए एक मानवाधिकार संहिता पर काम कर रहा है।

312. अनुच्छेद 2 (ई)।

313. सामान्य टिप्पणी 12, 1999।

314. द मार्क ऑफ ए नोबल सोसायटी : ह्यूमन राइट्स एण्ड ओल्डर पीपल (ब्रीफिंग पेपर) हेल्पएज इंटरनेशनल (2000 बी), नवम्बर देखें : http:// www.helpage.org/publications ।

315. नेथम, जी.(1992) ''इंटरनेशनल लॉ एंड इंडीजेनस पोलिटिकल राइट्स'' इन एच. रेनोल्ड्स एंड आर. नाइल (संपादन) *इंडीजेनस राइट्स इन द पेसिफिक एंड नार्थ अमेरिका : रेस एंड नेशन इन द लेट ट्वेंटिएथ सेन्चुरी,* (सर रोबर्ट मेन्जीज़ सैंटर फॉर आस्ट्रेलियन स्टडीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ लंडन, 1992) पृष्ठ 13–27।

316. अल्पसंख्यकों पर यू. एन. सब–कमिशन द्वारा प्रस्तुत, अगस्त 1994।

317. अनुच्छेद 3।

318. अनुच्छेद 31।

319. अनुच्छेद 7।

320. अनुच्छेद 4।

321. देखें : http://www.unhchr.ch/pdf/report.pdf.

322. जातिवाद के विरूद्ध संयुक्त राष्ट्र विश्व सम्मेलन में शामिल राष्ट्रमंडल सरकारी प्रतिनिधियों को कॉमनवेल्थ पालिसी स्टडीज़ युनिट का मेमोरेंडम, डरबन, 2001।

323. *स्टेट सपोर्ट फॉर सीईआरडी,* (2001), डब्ल्यू.सी.ए.आर थिंक टेंक पेपर X, दक्षिण एशिया मानवाधिकार प्रलेखन केन्द्र, नई दिल्ली।

324. भाग II, पैरा 75।

325. लीबेनबर्ग, एस. (2001) *ज्यूडिशियल एंड सिविल सोसायटी इनिशिएटिव्स इन द डेवेलपमेंट ऑफ इकोनॉमिक्स एंड सोशियल राइट्स इन द कॉमनवेल्थ,* (अप्रकाशित)।
326. अनुच्छेद 184 (3) दक्षिण अफ्रीकी संविधान।
327. नोरोजी.बी (2001) *प्रोटेक्टर्स ऑर प्रिटेंडर्स? गवर्नमेंट ह्यूमन राइट्स कमीशंस इन अफ्रीका'ज कॉमनवेल्थ स्टेट्स* (अप्रकाशित)
328. *यूएनडीपी पावर्टी रिपोर्ट 2000 : ओवरकमिंग ह्यूमन पावर्टी, कंट्री प्रोफाइल्स,* न्यूयार्क, यूएनडीपी।
329. मैक्चेज़्नी ए. (2001) तत्रैव।
330. बक्शी यू. (1999) ''वायसिस ऑफ सफरिंग, फ्रेगमेंटिड यूनिवर्सेलिटी द फ्यूचर ऑफ ह्यूमन राइट्स'' इन डब्ल्यू बर्न्स एंड एस. मार्क्स (सम्पादित) *द फ्यूचर ऑफ इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स* (आर्ड्स्ले, न्यूयार्क : ट्रांसनेशनल पब्लिशर्स)।
331. कॉक्स एल. (2000) 'रिफ्लेक्शंस ऑन ह्यूमन राइट्स एट द सेन्चुरी'ज ऐंड', *हयमून राइट्स डायलॉग,* सीरीज़, 2 नं. 1 (न्यूयार्क, कार्नेगी कौंसिल ऑन एथिक्स एंड इंटरनेशनल अफेयर्स)
332. मॉन्टेरे आर्थिक सहमति प्रलेखन निम्नलिखित वेबसाइट पर उपलब्ध है : http://www.un.org/esa/ffd/
333. पैरा 4, *द हरारे डिक्लेरेशन,* 1991।
334. पैरा 10, *द डर्बन कम्यूनिके,* 1999।
335. वही।
336. पैरा 17, *द हरारे कम्यूनिके,* 1991, पैरा 8, *द लिमास्सोल कम्यूनिके,* 1993; तथा पैरा 6, *द ऑकलैंड कम्यूनिके,* 1995।
337. पैरा 76, *द हरारे कम्यूनिके,* 1991 तथा पैरा 7, *द ऑकलैंड कम्यूनिके,* 1995।
338. पैरा 9, *द लिमास्सोल कम्यूनिके,* 1993 तथा पैरा 6, *द ऑकलैंड कम्यूनिके,* 1995।
339. पैरा 35, *द डर्बन कम्यूनिके,* 1999।
340. पैरा 63, *द हरारे कम्यूनिके,* 1991।
341. पैरा 7, *द एडिनबरा कॉमनवेल्थ कम्यूनिके,* 1997।
342. पैरा 58, *द हरारे कम्यूनिके,* 1991।
343. पैरा 38, *द डर्बन कम्यूनिके,* 1999।
344. पैरा 2, *द एडिनबरा कॉमनवेल्थ डिक्लेरेशन,* 1997।
345. पैरा 2, *द एडिनबरा कॉमनवेलथ डिक्लेरेशन,* 1997।
346. पैरा 57, *द लिमास्सोल कम्यूनिके,* 1993।
347. पैरा 42, *द डर्बन कम्यूनिके,* 1999।
348. पैरा 16, *द हरारे कम्यूनिके,* 1991।
349. पैरा 56, *द लिमास्सोल कम्यूनिके,* 1993।
350. सी एच आर आई की 1999 रिपोर्ट '*राइट्स मस्ट कम फर्स्ट* के संबंध में डैयान्न स्टेफोर्ड (लीगल एंड कांस्टिट्यूशनल अफेयर्स डिविज़न कॉमनवेल्थ सेक्रेटेरिएट के निर्देशक) द्वारा 23 मार्च 2000 की प्रतिक्रिया।
351. पैरा 8, द लिमास्सोल कम्यूनिके, 1993।
352. *मिलब्रूक कॉमनवेल्थ एक्शन प्रोग्राम,* पैरा 7 (iii) ।
353. 1999 में डर्बन चोगम में, सरकारों के प्रमुखों ने 21वीं सदी में राष्ट्रमंडल की भूमिका' की परख करने के लिए उच्च स्तरीय पुनरीक्षण समूह की स्थापना की।
354. शाह ए. (2001) *एनजीओ एक्सैस इन द कॉमनवेल्थ* (अप्रकाशित)।
355. पैरा 42, *द डर्बन कम्यूनिके*।
356. उदाहरण के लिए देखें, *असेसिंग द स्टेटस ऑफ विमेनः ए गाइड टू रिपोर्टिंग अंडर द कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ आल फार्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेंस्ट विमेन,* कामनवेल्थ सचिवालय, यूनाइटेड नेशन्स एंड इंटरनेशनल विमेन्ज़ राइट्स ऐक्शन वॉच।
357. उदाहरण के लिए देखें : *इम्प्रूविंग द इफेक्टिवनेस ऑफ अप्लाइंग ए जेंडर एनेलिसिस टू गवर्मेंट बजट्स,* कॉमनवेल्थ सचिवालय, इंटरनेशनल डेवेलपमेंट रिसर्च सेन्टर एंड द युनाइटेड नेशन्स डेवेलपमेंट फंड फॉर विमेन।
358. देखें – डेरेक इंग्राम के *रिव्यू ऑफ द इन्फामेंशन प्रोग्राम,* पैरा 3.19 और 3.23।
359. कार्य योजना के पूर्ण विवरण हेतु देखें : http://www.cfmm2002.org/policy/action_plan.html
360. तालिका में उपलब्ध करायी गई जानकारी 14 जून, 2001 तक की है। ताज़ा स्थिति के लिए देखें :http://www.unhchr.ch/pdf/report.pdf

cyan black

संदर्भ ग्रंथसूची

इस रिपोर्ट में विशेष योगदान

Albertyn, Cathi and Heywood, Mark (2001). *Human Rights and HIV/AIDS in the Commonwealth*, (unpublished).

Albertyn, Cathi, Goldblatt, Beth and Mills, Shereen (2001). *Women And Economic And Social Rights in the Commonwealth*, (unpublished).

Arambulo, Kitty (2001). *The International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights and the Practice of the Committee on Economic, Social and Cultural Rights*, (unpublished).

Bales, Kevin (2001). *Slavery and Globalisation - Challenges for the Commonwealth*, (unpublished).

Bourne, Richard (2001). *Commonwealth Overview*, (unpublished).

Cottrell, Jill (2001). *Environmental Justice, Vulnerability and Rights* (unpublished).

Duxbury, Alison (2001). *The Role of Democracy and Human Rights in Determining the Participation of States in the Commonwealt*h, (unpublished).

Earle, Patrick (2001). *Realising Human Rights for all, Putting Human Rights on the Development Agenda*, (unpublished)

Goonesekere, Savitri (2001). *Children and their Socio Economic Rights*, (unpublished).

Gundara, Jagdish S. (2001). *Issues of Cultural Rights: Human Rights and Intercultural Education*, (unpublished).

Hunt, Paul (2001). *Some Reflections on the Non-Judicial Enforcement of Economic, Social and Cultural Rights*, (unpublished).

Jochnick, Chris (2001). *Human Rights and External Debt*, (unpublished).

Larmour, Peter (2001). *Corruption and Corruption Prevention*, (unpublished).

Liebenberg, Sandra (2001). *Judicial and Civil Society Initiatives in the Development of Economic and Social Rights in the Commonwealth*, (unpublished).

Linton, Neville (2001). *Corruption-its Nature and Remedies: a Commonwealth Dimension*, (unpublished)

McCandless, Erin (2001). *Changing Macroeconomic Rules and Redefining Development: Civic Society in Economic Policy-making*, (unpublished).

McChesney, Allan (2001). *Advancing and Defending Economic, Social and Cultural Rights Through Civil Society Advocacy and Action*, (unpublished).

Mehra, Malini (2001). *Business and Human Rights - Time to Make a Difference*, (unpublished).

Mukherjee, Amitava (2001). *The State of Rights in South Asia*, (unpublished).

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

Nowrojee, Binaifer (2001). *Protectors or Pretenders? Government Human Rights Commissions in Africa's Commonwealth States*, (unpublished).

Pettifor, Ann (2001). *Financing Corruption and Repression: the Case of Kenya and the IFIs*, (unpublished)

Reynolds, Margaret (2001). *When will the Commonwealth Finally Accept Responsibility for Indigenous Peoples?* (unpublished).

Ross, Lindsay (2001). *The Alleviation of Poverty - The Role of a Free Press*, (unpublished).

Sait, Siraj, (2001). *Refugee Rights in the Commonwealth*, (unpublished)

Shah, Amanda (2001). *NGO Access in the Commonwealth*, (unpublished).

Tilton, Doug and Calland, Richard (2001). *In Pursuit of an Open Democracy: A South African Campaign Case Study*, (unpublished).

Udagama, Deepika (2001). *Review of Comparative Law on the Right to Know*, (unpublished).

किताबें, लेख और डाटाबेस

Abdurahman, Aden, (2000). 'No connection under this number: Africa and the Internet', *Development and Change*, No. 5.

Akhter U Ahmed, (2002). 'Feeding Minds while Fighting Poverty: Food for Education in Bangladesh' - paper presented at the ICRIER-ICAR- IFPRI Conference on "Economic Reforms and Food Security- The Role of Trade and Technology," New Delhi. Summary: http://www.ifpri.org/themes/sai/conf042402/ahmed.pdf

Arsenic Poisoning- http://www.who.int/inf-fs/en/fact210.html

Asian Development Bank Disability Estimates : http://www.adb.org/SocialProtection/disability.asp

Assessing the Status of Women: A Guide to Reporting Under the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women, (1999). Commonwealth Secretariat, United Nations and International Women's Rights Action Watch.

Australian Bureau of Statistics, 2000.

B S Research Bureau (2004). *The Richest Indians*, http://www.business-standard.com/special/billion/2003/rich.htm

Background Reading Material from the International Workshop for National Human Rights Institutions from the Commonwealth and Asia-Pacific Region for Promoting the Rights of People with Disabilities: Towards a New UN Convention, (2003). May, p. 11.

'Bangladesh Arsenic Case: Far Reaching Verdict' *Down to Earth*, June 15, 2003, p. 9.

Bangladesh Report and Discussion Paper (2001). Presented to the International Conference on 'Access to Land' Innovative Agrarian Reforms for Sustainability and Poverty Reduction, Bonn, See: http://www.dse.de/zel/access-to-land/dateien/ALRD-EZE.pdf

Basmati Update: International Campaign against Biopiracy, May 2001: http://www.gene.ch/genet/2001/May/msg00010.html3

Baxi, Upendra (1999). 'Voices of Suffering, Fragmented Universality, the Future of Human Rights' in W. Burns and S. Marks (eds), *The Future of International Human Rights*, (Ardsley, New York: Transnational Publishers).

Bell, Clive. Shantayan Devaraj and Hans Gersbach, (2003). *The Long Run Economic Cost of AIDS: Theory and an Application to South Africa*: http://www1.worldbank.org/hiv_aids/docs/BeDeGe_BP_total2.pdf

Bombay Stock Exchange Records: http://www.bseindia.com

Chatterjee, Romir. Meeta Mehra and Shilpi Banerjee, (2000). 'Environmental Security in South Asia,' February, See: http://www.teriin.org/energy/envsec.htm

Child Camel Jockeys in United Arab Emirates (UAE) and other Gulf States, (2001). Submission from Anti Slavery International to the United Nations Working Group on Contemporary Forms of Slavery, 26th session, 11 - 16 June 2001.

Citizens and Governance: Civil Society in the New Millennium, (1999). The Commonwealth Foundation.

Committee on the Elimination of Discrimination Against Women, Concluding Observations: Sri Lanka 2002: http://www1.umn.edu/humanrts/cedaw/srilanka2002.html

Coombe, Rosemary J, (2001). 'Intellectual Property, Human Rights and Sovereignty: New Dilemmas in International Law Posed by the Recognition of Indigenous Knowledge and the Conservation of Biodiversity' No. 16, *Indiana Journal of Globalization*
(also on website: http://www.law.indiana.edu/glsj/vol16/no.1/coom.html)

Corruption in India An Empirical Study - An Overview, (2002).Transparency International India and ORG-MARG Research Pvt. Ltd., Delhi.

Country Profile on Disabilities: Islamic Republic of Pakistan, (2002). Japan International Cooperation Agency, See: www.jica.go.jp/english/global/dis/pdf/pak_eng.pdf

Country Profile on Disabilities: People's Republic of Bangladesh, (2002). Japan International Cooperation Agency,: www.jica.go.jp/english/global/dis/pdf/ban_eng.pdf

Cox, Larry (2000). 'Reflections on Human Rights at the Century's End', *Human Rights Dialogue*, Series 2 No. 1 (New York: Carnegie Council on Ethics and International Affairs).

CSIR Patents Update: http://www.patestate.com/progress.htm

Datt, Gaurav and Martin Ravallion, (2002). 'Is India's Economic Growth leaving the Poor Behind?' World Bank Policy Research Working Paper Series: http://econ.worldbank.org/files/15265_wps2846.pdf

Deaton, Angus and Jean Dreze, (2002). 'Poverty and Inequality in India A Re-Examination', *Economic and Political Weekly*, vol. xxxvii, #35, September 7, pp. 3729-3748.

Devaraj, Ranjit (2002). 'Biodiversity or Biopiracy', December: http://indiatogether.org/environment/articles/biodiv02.htm

Digest of Atrocities/Violence/Killings Against Dalits, (2003). India Committee of the Netherlands,: http://www.indianet.nl/atroc2.html

Down to Earth- Gobar Times, #29, April 15, 2003.

Dr. Reddy's Labs website: http://www.drreddys.com/site/pdfs/fy03results.xls

Elwan, Ann,(1999). 'Poverty and Disability- A Survey of the Literature', World Bank Social Protection Discussion Paper Series #9932, p. iv.

Environment- Development Challenges, USAID, India: http://www.usaid.gov/in/programareas/environm.htm

Environmental and Natural Resource Management in South Asia: An Assessment of Issues and Opportunities: http://www.irgltd.com/irgltd/Pubs/SA%20Env.%20Profile/india.html

Ercelawn, Aly and Muhamad Nauman, (2001). 'Bonded Labour in Paksitan: An Overview': http://www.ilo.org/public/english/standards/decl/publ/papers/piler.pdf

Federal Bureau of Statistics and ILO Child Labour Survey in Pakistan 1996: http://www.ilo.org/public/english/standards/ipec/simpoc/pakistan/report/pakistan96.pdf

Foronda, Oscar Olivera, (2002). "The War over Water in Cochabamba, Bolivia" address to the Municipal Services Project Conference, Wits University, Johannesburg, May: http://qsilver.queensu.ca/~mspadmin/pages/Conferences/Services/Olivera.htm

Global Internally Displaced Persons Database: India- http://www.db.idpproject.org/Sites/idpSurvey.nsf/wViewCountries/036F1FD1EF3D7FDAC1256A9400383D3D

Globalization Inc. Concentration in Corporate Power: The Unmentioned Agenda, (2001). ETC Group (formerly known as Rural Advancement Foundation International - RAFI) Communiqué #71, July: http://www.etcgroup.org/documents/com_globilization.pdf

Greider, William (1997). One World Ready or Not: The Manic Logic of Global Capitalism (New York: Simon and Schuster).

Hanlon, Joseph (2000). "How much debt must be cancelled", *Journal of International Development*, 12, p. 877-901.

Hasan, Ali, (2000). 'Slave not Partners', *Index of Censorship*, vol. 1, pp. 46-48.

Hodess, Robin Tania Inowlocki and Toby Wolfe (eds.), *Global Corruption Report 2003 Special Focus: Access to Information*, Transparency International and Profile Books, London, 2003.

Hosmane, Sakshi Broota (2001). 'Developing the Gender Dimension in India's Disability Rights Movement', *Women in Action*, #2, See: http://www.isiswomen.org/pub/wia/wia201/sakshi.htm and

http://www.globalmarch.org/worstformsreport/world/india.html

ILOLEX- Database of International Labour Standards: http://www.ilo.org/ilolex/english/newratframeE.htm

Improving the Effectiveness of Applying a Gender Analysis to Government Budgets, Commonwealth Secretariat, International Development Research Centre and the United Nations Development Fund for Women.

International Action Network on Small Arms (IANSA) Factsheet- South and Central Asia, See: http://www.iansa.org/regions/scasia/scasia.htm

Ismail, S and Manandhar, M, (1999). *Better Nutrition and Older People: Assessment and Action*, London: Help Age International.

Iyer, Raghavan (ed.) (1989). *Moral and Political Writings of Mahatma Gandhi*, Vol.3, p.609.

Jamil, Uzma, (1998). 'Biopiracy, the Patenting of Basmati by Ricetec' Publication of the Commission on Environmental, Economic and Social Policy- South Asia & Sustainable Policy Development Institute, October: http://www.iucn.org/themes/ceesp/Publications/art-mono/basmati.doc

Jha, Prem Shankar, (2003). 'No solution for Fiscal Mess in Indian States', *Business Times*, July 3 : http://business-times.asia1.com/sub/views/story/0,4574,86435,00.html

Jubilee 2000 Databank: http://www.jubilee2000uk.org/databank/debttables/debtdata99.htm

Khan, Abu Sayeed, (2002). 'Right to Work and Rights at Work' in Hameeda Hossain (ed.) *Human Rights in Bangladesh* 2001, Ain o Salish Kendra, Dhaka, pp. 177-83.

Khor, Martin 'Land Degradation Causes US$ 10 billion Loss to South Asia Annually': http://www.twnside.org.sg/title/land-ch.htm

Krishnan, Gopakumar, (2003). 'Paying to see your own baby', in Robin Hodess, Tania Inowlocki and Toby Wolfe (eds.), *Global Corruption Report 2003 Special Focus: Access to Information*, Transparency International and Profile Books, London, p. 157.

Leprosy Fact Sheet 2002- http://www.who.int/mediacentre/factsheets/fs101/en/

Liebenberg, Sandra (2001), 'The Protection of Economic and Social Rights in Domestic Legal Systems' in C. Krause et al. (eds), *Economic, Social and Cultural Rights: A Textbook* (2nd ed.) (Hague: Martinus Nijhoff).

Loxley, J (2001). *The Alternative Federal Budget in Canada: A New Approach to Fiscal Democracy*. National Anti-Poverty Organisation, Canada.

Lvovsky, Kseniya, (1998). 'Economic Costs of Air Pollution with Special Reference to India', Paper presented at the National Conference on Health and Environment, Delhi,: http://lnweb18.worldbank.org/SAR/sa.nsf/Attachments/EconomicCost/$File/Economic+costs+of+air+pollution+KL.pdf

Lynas, M. (2000). 'Letter from Zambia,' *The Nation*, Lusaka Feb 14.

Lype, George, (1997). 'The Battle of Haldi is Over- the War Lies Ahead', August: http://www.rediff.com/news/aug/27haldi.htm

Meltzer, Allan, (2001). *The World Bank One Year After the Commission's Report to Congress*, March: http://www.house.gov/jec/hearings/03-08-01/meltzer.pdf

cyan black

Memorandum to Commonwealth Government Delegations Attending the UN World Conference Against Racism, Commonwealth Policy Studies Unit, Durban, 2001.

Millennium Development Goals, Millennium Project: http://www.unmillenniumproject.org/html/dev_goals.shtm

Mohapatra, Richard, (2003). 'The Last Common Property,' *Down to Earth*, March 15, pp. 44-45.

Mustafa, Waqar (2003). 'Suicides Spiral in Poverty Stricken Pakistan', *One World South Asia* : http://southasia.oneworld.net/article/archive/1811/

Narayan D, R.Chambers, M.K.Shah & P.Petesch, (2000). *Voices of the Poor: Crying Out for Change*, New York: Oxford University Press for the World Bank, p.xvii.

National Health Policy 2002 : http://mohfw.nic.in/np2002.htm

Nettheim, G. (1992). 'International Law and Indigenous Political Rights' in H.Reynolds and R.Nile (eds.), *Indigenous Rights in the Pacific and North America: Race and Nation in the Late Twentieth Century*, (Sir Robert Menzies Centre for Australian Studies, University of London, 1992) p.13-27.

Oloka-Onyango, J. and Udagama, D. (2001). *Economic, Social and Cultural Rights. Globalisation and its Impact on the full Enjoyment of Human Rights*, Progress report submitted to the UN Sub-Commission on the Promotion and Protection of Human Rights Fifty-third Session, August 2001.

'Paying the Price', *Economic and Political Weekly*, vol. xxxviii, #25, June 21, 2003, p. 2443.

Pearson, Zoe (2001). 'An International Human Rights Approach to Corruption' in P. Larmour, and N. Wolanin, (eds.) *Corruption and Anti-Corruption* (Canberra: Asia Pacific Press).

'Pumping out Poison' *Down to Earth***,** April 15, 2003, pp. 27-41.

Quisumbing, Agnes R., Lawrence Haddad and Christine Pena, (1995). 'Gender and Poverty New Evidence from 10 Developing Countries', FNCD Discussion Paper #9, IFPRI, Washington: http://www.ifpri.org/ divs/fcnd/dp/papers/dp09.pdf

Rajan, W R Varada, (2002). 'Amendment of ID Act, NDA Government's Barbaric Offensive Against Working Class', *People's Democracy*, vol. xxvi No.9, March 03: http://pd.cpim.org/2002/march03/03032002_tu.htm

Ramanujam, T.C.A. and T.C.A. Sangeeta, (2001). 'New IPR Regime- Protection for Indian Patents', *Business Line* (Internet Edition), April, 24, See: http://www.blonnet.com/businessline/2001/04/24/stories/042420ma.htm

Rana, Roma, (2003). 'Transcending Medical Limitations', *United Nations Chronicle* (online edition) vol. XL, #1: http://www.un.org/Pubs/chronicle/2003/issue1/0103p61.html

Rao, Nitya and Kumar Rana, (1997). 'Land Rights and Women: A Case Study of the Santhals', *Economic and Political Weekly*, vol. xxxii, # 23, June 7-13, pp. 2286ff.

Recent Trends in Military Expenditure, (2003). SIPRI, June : http://projects.sipri.org/milex/ mex_trends.html

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

Reddy, Keerthi (2001). 'How the Battle for Neem was Won' *Sword of Truth*: http://www.swordoftruth.com/swordoftruth/archives/byauthor/keerthireddy/htbfnww.html

Reported, (2001). ' Australia: Aboriginals to Protest Racism at Olympics', *Inter Press Service*, 4 April.

Reported, (2001). ' GlaxoSmithKline under Pressure over Drugs for Poor', *Financial Times*, Feb 12,

Reported, (2000). 'Tough New Rape Act in Force', *The Namibian*, June 19.

Reserve Bank of India, (2003). *State Finances: A Study of Budgets of 2002-2003*, Occasional Papers, New Delhi : http://www.rbi.org.in/sec7/34967.doc

Rizvi, Muddassir (2001). 'Pakistan: New Funds Boost Green Action Plans,' November: http://forests.org/archive/asia/paknewfu.htm

Sainath, P. (2003). 'The Bus to Mumbai', *The Hindu* (Magazine supplement), June 01.

Sainath, P. (2003). 'The Wrong Route Out', *The Hindu* (Magazine supplement), June 08.

Sen, Amartya (2000). *Development as Freedom*, Oxford: Oxford University Press.

Sen, Amartya, (1990). 'Individual Freedom as a Social Commitment' *New York Review of Books*, June 14.

Shiva, Vandana. (2000). 'Free Tree', *The Hindustan Times*, June: http://www.gene.ch/genet/2000/Jun/`msg00032.html

Siddique, A (2001). 'Bangladesh: Human rights in Export Processing Zones', *Asian Labour Update*, Issue No. 38, January-March.

Siriwardane, Cyril, (1997). 'Motor and Upper Limb Disabled People in the Agricultural Industry in Sri Lanka', *SD Dimensions*, Sustainable Development Department of the Food and Agricultural Organisation of the United Nations : http://www.fao.org/sd/PPdirect/PPre0041.htm

Special Report 'The History of W.G. Grace & Co.', *Seattle Post Intelligencer*, November 18, 1999 : http://seattlepi.nwsource.com/uncivilaction/grac19.shtml

State Support for CERD, (2001). WCAR Think Tank Paper X, South Asia Human Rights Documentation Centre, New Delhi.

Statement by Hon. Mangala Samaraweera, Minister of Urban Development, Sri Lanka to the 25th Special Session of the UNGA for Overall Review and Appraisal of the Implementation of the Outcome Of the UN Conference on Human Settlements (Habitat II), June, 2001: http://www.un.org/ga/habitat/statements/docs/srilankaE.html

Submission to the Working Group on Contemporary Forms of Slavery, UN Sub-commission on the Promotion and Protection of Human Rights, Geneva, May 2002: http://www.antislavery.org/archive/submission/submission2002-scavenging.htm

T'Hoen, Ellen, (2000). 'Doctors in Seattle: The Battle for Access to Essential Drugs', *Development*, 43(2): SID On Line Dialogue.

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

'The 2001 top Ten Companies' *Wall Street View* 2002 : http://www.stacommunications.com/journals/cpm/cpmpdf/wsv.pdf

The Billionaire Club, (2003). Business Standard, New Delhi, January.

The Mark of a Noble Society: *Human Rights and Older People* (Briefing Paper). HelpAge International, November (2000b). (http://www.helpage.org/publications).

The other side of the story: A feminist critique of Canada's National Response to the United Nations Questionnaire on the Implementation of the Beijing Platform for Action, Canadian Feminist Alliance for International Action, December, 1999 : www.fafia.org/Bplus5/sideall_e.htm

The Right to Water, (2003) WHO : http://www.who.int/water_sanitation_health/en/rtwrev.pdf

The Tenth Five Year Plan Document : http://planningcommission.nic.in/

Threats to Indian Biodiversity : http://www.teriin.org/biodiv/threats.htm and Loss of Biodiversity Threatens Five Categories of Fauna': www.iucn.org/news/december02/independentbang27dec.doc

'Two Bangladeshis file case against British organization in London: Arsenic case hearing begins' (2003). *The New Nation* (Bangladesh) June, 26, : http://nation.ittefaq.com/artman/exec/view.cgi/4/1128

UN Conference on The Illicit Trade in Small Arms and Light Weapons in all its Aspects, 9-11 July 2001 : http://disarmament.un.org/cab/smallarms/

UN Integrated Regional Information Network (2001). 'Child Soldiers Used by all Factions' *Financial Times*, London, 13 June.

UN Statistics Division Millennium Indicators Database: http://millenniumindicators.un.org/unsd/mi/mi_series_results.asp?rowID=566

UN Subcommission on Prevention & Discrimination & Protection of Minorities (1984). *The Problem of Discrimination against Indigenous Populations*, UN:Geneva.

UNAIDS/WHO (2000). Epidemiological Fact Sheet on HIV/AIDS and Sexually Transmitted Infections, Australia 2000 Update, Australia.

UNCTAD Press Release 'Are Transnationals Bigger than Countries?' July, 2002: http://r0.unctad.org/en/press/pr0247en.htm

UNESCAP database : http://www.unescap.org/pop/publicat/apss157/chapter1.htm

UNICEF database : http://www.childinfo.org/eddb/malnutrition/database1.htm

Unni, Jeemol (2001). 'Gender and Informality in Labour Market in South Asia,' *Economic and Political Weekly*, vol. xxxvi, # 26, June 30, Table 6, p. 2368.

Urban Air Pollution Management South Asia Urban Air Quality Management, Briefing Note #11, World Bank, February 2003: http://lnweb18.worldbank.org/SAR/sa.nsf/Attachments/Briefing11/$File/Briefing_Note_No_11.pdf

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

Venkateswarlu, D. (2003). *Child Labour and TransNational Seed Companies in Hybrid Cotton Seed Production in Andhra Pradesh*, Study Commissioned by the India Committee of the Netherlands, April: http://www.indianet.nl/cotseed.html

Violence and Atrocities Against Dalits- Action Alert, (2002). International Movement Against All forms of Discrimination and Racism : http://www.imadr.org/project/dalit/alert.2002.no.1.html

Visaria, Leela (2000). 'Education and Health in South Asia What Do We Know?,' *Asia Pacific Population* Journal, pp. 83-97. (http://www.unescap.org/pop/journal/2002/Jour17-4-p7.pdf)

Watkins, Kevin (1995). *The Oxfam Poverty Report*, Oxford: Oxfam.

Weisband, Edward (2000). 'Discursive Multilateralism: Global Benchmarks, Shame and Learning in the ILO Labour Standards Monitoring Regime' No. 44, *International Studies* Q 643 at 663.

WHO HIV/AIDS statistics : http://www.who.int/hiv/facts/regionalstats_m.jpg

Women in Agriculture, Environment and Rural Production: India Fact Sheet, FAO: http://www.fao.org/sd/WPdirect/WPre0108.htm

Women's Rights Situation in Pakistan: http://www.onlinewomeninpolitics.org/womensit/paks.pdf

World and Regional Military Expenditure Estimates: 1993-2002: http://projects.sipri.org/milex/mex_wnr_table.html

World Bank Gender statistics : http://genderstats.worldbank.org

Worst Forms of Child Labour Data : http://www.globalmarch.org/worstformsreport/world/india.html

रिपोर्ट

Africa Malaria Report (2003)- http://www.rbm.who.int/amd2003/amr2003/amr_toc.htm

Ageing and Development Report: Poverty, Independence and the World's Older People, (2000a) Earthscan, HelpAge International, .

Annual Report of the Department of Development of Northeastern Region 2002-2003: http://northeast.nic.in/AnnualReport-02-03.PDF

Armaments, Disarmament, and International Security, (2001) SIPRI Year Book : www.sipri.se

Crime in India - 2000, (2002). National Crime Records Bureau, New Delhi.

Economic Survey 2002-2003, (2003). vol. 1, Government of India, New Delhi: http://indiabudget.nic.in/es2002-03/chapt2003/tab17.pdf

Eliminating World Poverty: Making Globalisation Work for the Poor, (2000). White Paper on International Development, DFID, U.K.

Employment and Unemployment Situation among Religious Groups in India- 1999-2000, (2001). NSS 55th

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

Round Survey, Report #468, pp. 22ff.

Employment and Unemployment Situation Among Social Groups in India, 1999-2000, (2001). NSS 55th Round Survey Report # 469, New Delhi, 2001.

Global Environment Outlook (GEO) (2000). UNEP : http://www.unep.org/geo2000/english/0064.htm

Human Development in South Asia 2001: Globalisation and Human Development, (2001). The Mahbubul Haq Human Development Centre, Oxford University Press, Karachi.

Human Development in South Asia- 2002: Agriculture and Rural Development, (2002.) The Mahbubul Haq Human Development Centre, Oxford University Press, Karachi.

Human Development in South Asia, 1997 (1998). UNDP, New York .

Human Development Report, (2003). UNDP, Oxford University Press, New Delhi.

Human Development Report 2001: *Making New Technologies Work for Human Development*, (2001). UNDP, New York: Oxford University Press.

Human Development Report 2000: *Human Development and Human Rights*, (2000). UNDP, New York: Oxford University Press.

Human Development Report 1997: *Eradicating Poverty*, (1997). UNDP, New York: Oxford University Press.

Human Development Report 1995: Gender and Human Development, (1995). UNDP , New Delhi: Oxford University Press.

India National Human Development Report 2001, (2002). Planning Commission, Government of India, New Delhi.

National Commission for Scheduled Castes and Scheduled Tribes, Fifth Report 1998-99, (2001). Volume I, New Delhi.

Poverty Reduction Strategy Paper, (2001). Government of Kenya, June.

Poverty Report 2000: Overcoming Human Poverty, (2000). UNDP, New York.

Reports of the Independent Expert of the UN Commission on Human Rights on the Right to Development : http://www.unhchr.ch/development/

Report of The International Financial Institution Advisory Commission (Meltzer Commission) (2000). Submitted to the US Congress : http://www.house.gov/jec/imf/meltzer.htm

Report of the UN Sub-Commission on Prevention of Discrimination and Protection of Minorities, (1995). on its 47th session, August 1994.U.N.Docs E/CN.4/Sub.2/1995/51

Report on Labour Violations in Cameroon, (2001). International Confederation of Free Trade Unions, July.

Report on the Regional Survey on Ageing, (2002). UNESCAP, June : http://www.globalaging.org/ rural_aging/ world/reporto.htm

Rural Poverty Report 2001- The Challenge of Ending Rural Poverty, (2001). IFAD : http:// www.ifad.org/

cyan black

poverty/index.htm

Small Arms Survey 2003: Development Denied, (2003). Graduate Institute of International Studies, Geneva and Oxford University Press : http://www.smallarmssurvey.org/publications/yb_2003.htm

Sources of Household Income in India 1999-2000, (2001). Report # 463(55/1.0/5), National Statistical Survey 55th Round, NSSO, Calcutta.

South Asia Development Cooperation Report 2001/02, (2002). Research and Information System for the Non-Aligned and the Other Developing Countries, New Delhi.

State of the World Population Report 2000- Lives Together, Worlds Apart: Men and Women in a Time of Change, (2000). UNFPA, New York.

State of the World Population Report 2002: People, Poverty and Possibilities, (2002). UNFPA, New York.

US State Department's Annual Human Rights Report for 2000.

World Development Report 2000/2001: Attacking Poverty, (2001). World Bank, New York: Oxford University Press.

World Health Report 2002, WHO: http://www.who.int/whr/2002/en/

कानून, अंतर्राष्ट्रीय समझौते, घोषणा पत्र एवं टिप्पणी

Declaration on the Right to Development, 1986: http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/74.htm

Delivering the Monterrey Consensus: A Commonwealth Action Plan: http://www.cfmm2002.org/ policy/action_plan.html

European Social Charter, 1965 (revised 1996): http://conventions.coe.int/Treaty/EN/Treaties/Html/163.htm

ILO Convention (169) Concerning Indigenous and Tribal People in Independent Countries, 1991: http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/62.htm

International Convention Against Torture, (CAT)1984 : http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/h_cat39.htm

International Covenant on Civil and Political Rights, (ICCPR)1966 : http:// www.unhchr.ch/html/menu3/b/a_ccpr.htm

International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, (ICESCR)1966 : http:// www.unhchr.ch/html/menu3/b/a_cescr.htm

International Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women,(CEDAW) 1979 : http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/e1cedaw.htm

International Convention on the Elimination of All Forms of Racial Discrimination,(CERD) 1965 : http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/d_icerd.htm

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

cyan black

International Convention on the Rights of the Child, (CRC)1989 : http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/k2crc.htm

Limburg Principles on the Implementation of the ICESCR, 1986 : http://www.uu.nl/content/20-10.pdf

Monterrey Consensus on Financing for Development, 2002 : http://www.un.org/esa/ffd/

SAARC Convention on Regional Arrangements for the Promotion of Child Welfare in South Asia, 2003 : http://www.saarc-sec.org/publication/conv-children.pdf

SAARC Convention on Preventing and Combating Trafficking in Women and Children for Prostitution, 2003 : http://www.saarc-sec.org/publication/conv-traffiking.pdf

Substantive Issues Arising in the Implementation of the ICESCR, *General Comment # 15 (2002)*, *The Right to Water (Arts. 11& 12 of the ICESCR)*, 29th Session of the CESCR, Geneva, 2002: http://www.unhchr.ch/html/menu2/6/gc15.doc

Substantive Issues Arising in the Implementation of the ICESCR, *General Comment # 14 (2002)*, *The Right to the Highest Attainable Standard of Health (Article 12 of the ICESCR)*, 22nd Session of the CESCR, Geneva, 2000: http://www.unhchr.ch/tbs/doc.nsf/(symbol)/E.C.12.2000.4,+CESCR+General+comment+14.En?OpenDocument

Substantive Issues Arising in the Implementation of the ICESCR, *General Comment # 13 (2002)*, *The Right to Education (Article 13 of the ICESCR)*, 21st Session of the CESCR, Geneva, 1999: http://www.cesr.org/ESCR/gencomment13.htm

Substantive Issues Arising in the Implementation of the ICESCR, *General Comment # 4 (1991)*, *The Right to Education [Article 11 (1) of the ICESCR]*, 6th Session of the CESCR, Geneva, 1991: http://www.cesr.org/ESCR/gencomment4.htm

The Biological Diversity Act, *2002* (India): http://www.forests.tn.nic.in/biodiversity_act.htm

The Constitution (86th Amendment) Act, 2002 (India) : http://indiacode.nic.in/coiweb/main.htm

The Edinburgh Commonwealth Declaration, 1997, *The Commonwealth Yearbook*, *2002*, The Commonwealth Secretariat, London, pp. 36-39.

The Harare Declaration, 1991, *The Commonwealth Yearbook*, *2002*, The Commonwealth Secretariat, London, pp. 32-34.

The Millbrook Commonwealth Programme of Action, 1995, *The Commonwealth Yearbook*, 2002, The Commonwealth Secretariat, London, pp. 34-36.

The Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act 1995 (India).

UN Charter, 1945 : http://www.un.org/aboutun/charter/

Universal Declaration of Human Rights, 1948: http://www.unhchr.ch/udhr/lang/eng.htm and for the Hindi version - http://www.unhchr.ch/udhr/lang/hnd.htm

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

अदालतों के महत्वपूर्ण फैसले

Balwant Rai v. Union of India, AIR, 1968 All. 14.

Bandhua Mukti Morcha v Union of India, AIR, 1984 SC 802.

Bandhua Mukti Morcha etc. v. Union of India and Others AIR 1997 SC 2218.

C. Masilamani Mudaliar and Others v. Idol of Sri Swaminathaswami, Swaminathaswami Thirukoil and Others, 1996-(008)-SCC -0525.

Chameli Singh and Others v. State of Uttar Pradesh, 1996 (002) SCC 0549.

Consumer Education and Research Centre and Others v. Union of India, 1995 (003) SCC 0042.

Daily Rated Casual Labour Employed Under P&T Department through Bharatiya Dak Tar Mazdoor Manch v. Union of India, 1988 (001) SCC 0122.

Francis Coralie Mullin v Union of India , AIR, 1981 SC 746.

LIC of India v. Consumer Research and Education Centre, 1995 (005) SCC 0482.

Minerva Mills v Union of India, AIR, 1980 SC 1789.

P.G. Gupta v. State of Gujarat and Others, 1995 Supp (2) SCC 182.

Paschim Banga Khet Mazdoor Samity v West Bengal, AIR, 1996 SC 2426.

Rajagopal v. State of Tamil Nadu, 1995 (006) SCC 632.

Samatha v. State of Andhra Pradesh, 1997 (008) SCC 0191.

State of Karnataka v. Appa Balu Ingale and Others, 1995 (Supplement 4) SCC 0469.

State of Maharashtra vs Chandrabhan, A. 1983 SCC 803.

UnniKrishnan v. State of AP, AIR, 19 , SC 645.

Vincent Panikulangara v. Union of India, 1987 (002) SCC 165.

cyan black

चोगम के लिए सी एच आर आई की पिछली रिपोर्ट

पुट अवर वर्ल्ड टू राइट्स (1991) : पुट अवर वर्ल्ड टू राइट्स, राष्ट्रमंडल में मानवाधिकारों की स्थिति पर पहला स्वतंत्र अवलोकन था। इसमें इसके निराकरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय तंत्र को कैसे प्रयोग में लाया जाए, इसका व्यावहारिक मार्गदर्शन है।

एक्ट राइट नाऊ (1993) : 'एक्ट राइट नाऊ', वियेना में जून 1993 में मानवाधिकारों पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र विश्व सम्मेलन के संदर्भ में की गई हरारे घोषणा के बाद राष्ट्रमंडल देशों में मानव अधिकारों की प्रगति का मूल्यांकन था। इसमें राष्ट्रमंडल के लिए नए लोकतांत्रिक देशों में वास्तविक लोकतंत्र कायम करने की दिशा में दीर्घ और जटिल प्रक्रिया के समर्थन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने का आह्वान किया गया है।

राइट्स डू मैटर (1995) : 'राइट्स डू मैटर' में दो विषय प्रतिपादित हैं :अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और जेलों में व्यापक सुधारों की आवश्यकता। इस रिपोर्ट में एक तो प्राधिकरण से लोकतांत्रिक राजनितिक आदेशों में संक्रमण और दूसरे नियोजित अर्थव्यवस्था से बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में संक्रमण के प्ररिप्रेक्ष्य में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

दि राइट टू ए कल्चर ऑफ टोलरैन्स (1997) : रिपोर्ट में दो विषयों पर प्रकाश डाला गया है। एक तो इसमें राष्ट्रमंडल के सभी देशों में जातीय और धार्मिक असहिष्णुता की गम्भीर समस्या का विवेचन है और दूसरे इसमें अभिव्यक्ति/सूचना की स्वतंत्रता को लोकतंत्र का मुख्य तत्व माना गया है। रिपोर्ट में दर्शाया गया है कि राष्ट्रमंडल के मानदण्डों और राजनितिक मूल्यों ने सदस्य देशों में कार्यरत संगठनों को सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाने को बाध्य किया है तथा रिपोर्ट में इस उद्देश्य को हासिल करने की सिफारिश भी की गई है।

ओवर ए बैरल–लाइट वेपन्स एण्ड ह्यूमन राइट्स इन दि कॉमनवेल्थ (1999) : 'ओवर ए बैरल' में आधुनिक राष्ट्रमंडल में मौजूद इस दुःखद अन्तर्विरोध को उद्घाटित किया गया है कि एक ओर तो राष्ट्रमंडल ने मानवाधिकारों को अपना मुख्य उद्देश्य माना है और दूसरी तरफ लाखों घातक हथियार आसानी से उपलब्ध हैं जो कि विकास और लोकतंत्र के लिए खतरा हैं। रिपोर्ट में सभी राष्ट्रमंडल देशों में ऐसे हथियारों पर तत्काल नियंत्रण लगाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

ओपन सेसमी : लुकिंग फॉर द राइट टू इन्फॉर्मेशन इन द कॉमनवेल्थ (2003) : रपट इस बात को मान्यता देती है कि सूचना 'शक्ति' है और इस बात की भी पक्षधर है कि लोकतंत्र, समानता व सुशासन की भावनाओं के तहत इसमें सभी का खुला साझा होना चाहिए। रपट सरकारी गोपनीयता की अरसे से चलती आई संस्कृति को समाप्त करने में राजनीतिक इच्छाशक्ति के महत्व को प्रमुखता से सामने लाती है। यह पारदर्शी व खुली सरकार के लिए एक व्यापक अभियान का आह्वान करती है। रपट कानून बनाने वालों, अधिवक्ताओं और सामान्य जनता को सूचना के अधिकार कानून के मसौदे तैयार करने व उनके कार्यान्वयन के संदर्भ में मार्गदर्शन प्रदान करती है। यह इस अधिकार के महत्व के बारे में जागरुकता बढ़ाने में नागरिक समाज द्वारा किए गए योगदान को स्वीकार करती है। यह अनेक उपयोगी पैरवी रणनीतियों व तकनीकों को रेखांकित करती है और भारत, दक्षिण अफ्रीका तथा ब्रिटेन के सफल अभियानों के प्रकरण अध्ययनों को समूचे राष्ट्रमंडल के अन्य समूहों के लिए प्रेरणा स्रोत के रुप में प्रस्तुत करती है।

e:\chri-talisman report\final files\p89 to end.pmd

सूचना तक पहुंच

सूचना का अधिकार : सी एच आर आई का मानना है कि सूचना का अधिकार अन्य मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है और अक्सर अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। प्रत्येक राष्ट्र को यह सुनिश्चित करना होगा कि उसके यहां लोगों की भागीदारी की गारंटी के लिए कारगर कानून और उपयुक्त माहौल है। चार वर्ष की अवधि में सी एच आर आई ने सामुदायिक स्तर के समूहों को सूचना के अधिकार का महत्व समझाने की दिशा में काम किया और नीति–निर्माताओं से सीधे वकालत की कि वे यह सुनिश्चित करें कि कानून व्यापक सामुदायिक स्तर पर लोगों की वास्तविक सूचना आवश्यकताओं को पूरा कर सके। चोगम 2003 की हमारी रिपोर्ट सूचना के अधिकार से संबंधित है।

संविधानवाद : सी एच आर आई का मानना है कि संविधान का निर्माण और उसकी समीक्षा में अधिकतम लोगों से परामर्श किया जाना चाहिए। 1999 में हरारे, ज़िम्बाब्वे में आयोजित ''अफ्रीका में मानवाधिकारों, शांति और बेहतर शासन के लिए पैन–राष्ट्रमंडल समर्थन संबंधी सम्मेलन में सी एच आर आई को ऐसे दिशा–निर्देश जारी करने का काम सौंपा गया, जो विचार–विमर्श की प्रक्रिया के ज़रिए संविधानों के निर्माण में सहायक हो। सी एच आर आई इस बात का पक्षधर रहा है कि श्रीलंका में नए संविधान के विकास और भारत में संविधान की समीक्षा में परामर्श प्रक्रिया अपनायी जाये। इस कार्यक्रम के तहत सी एच आर आई भारत में निर्वाचन व्यवस्था में सुधार लाने तथा सीमान्त वर्गों को सामाजिक न्याय दिलाने के पक्षधर है।

मानवाधिकारों के लिए पैरवी : राष्ट्रमंडल में नागरिक समाज के अनेक ऐसे समूह हैं, जो सामाजिक न्याय और समानता के लिए अथक प्रयास कर रहे हैं। वे अक्सर अकेले काम करते हैं, ऐसे वातावरण में जहां न तो समान विचार वाले प्रयासों की पर्याप्त जानकारी होती है और न मानवाधिकारों के ढांचे का इस्तेमाल अपने सरोकारों के लिए करने का अवसर मिलता है। सी एच आर आई पूरे राष्ट्रमंडल के गैर–सरकारी संगठनों, खासकर उन स ंगठनों के लिए, जो विकास और गरीबी संबंधी मुद्दों पर कार्य कर रहे हैं, के लिए एक पाठ्यक्रम का विकास कर रहा है ताकि वे अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण को अपने कार्यक्रमों का केन्द्र बिन्दु बना सकें।

न्याय तक पहुंच

पुलिस सुधार : अनेक राष्ट्रमंडल देशों में पुलिस दमनकारियों की एजेंट नज़र आती है। पुलिस कमज़ोर होने से मानवाधिकारों का व्यापक उल्लंघन होता है और अन्याय को बढ़ावा मिलता है। सी एच आर आई का मानना है कि पुलिस सुधारों की तत्काल आवश्यकता है और ये सुधार नागरिक अधिकारों को बनाए रखने तथा आर्थिक प्रगति और बेहतर शासन के लिए ज़रूरी हैं। इस कार्यक्रम का लक्ष्य पुलिस सुधारों के लिए जनसमर्थन जुटाना है। सी एच आर आई के कार्यक्रम भारत में केन्द्रित रहे हैं, लेकिन इनका विस्तार करके इनमें अफ्रीका में पुलिसबलों की निगरानी और नियंत्रण व्यवस्था की जांच–पड़ताल को भी शामिल किया जायेगा।

कारागार सुधार : कारागारों के बंद वातावरण को देखते हुए, वहां मानवाधिकारों के उल्लंघन की प्रबल आशंका रहती है। सबसे कमज़ोर के मानवाधिकारों की रक्षा की आवश्यकता महसूस करते हुए, सी एच आर आई ने भारत में चुनी हुई जेलों का सर्वेक्षण कराया और कारागार–कर्मियों को दायित्व पूरा करने में सहायता के लिए एक नियमावली विकसित की।

मानवाधिकार आयोग : मानवाधिकार आयोग हाल की अवधारणा है और अधिकतर राष्ट्रमंडल देशों में अधिक प्रचलित नहीं है। सी एच आर आई मानवाधिकार आयोगों को लोकप्रिय बनाने के प्रति वचनबद्ध है। इसके लिए वह लोगों को इन संगठनों के कार्य की जानकारी देने और उन्हें लिंग के प्रति अधिक संवेदनशील बनाने की दिशा में कार्यरत है।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा

10 दिसम्बर 1948 को यूनाइटेड नेशन्स की जनरल असेम्बली ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत और घोषित किया। इसका पूर्ण पाठ आगे के पृष्ठों में दिया गया है। इस ऐतिहासिक कार्य के बाद ही असेम्बली ने सभी सदस्य देशों से अपील की कि वे इस घोषणा का प्रचार करें और देशों अथवा प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति पर आधारित भेदभाव का विचार किए बिना, विशेषतः स्कूलों और अन्य शिक्षा संस्थाओं में इसके प्रचार, प्रदर्शन, पठन और व्याख्या का प्रबन्ध करें।

इसी घोषणा का सरकारी पाठ संयुक्त राष्ट्र की इन पांच भाषाओं में प्राप्य है:–अंग्रेजी, चीनी, फ्रांसीसी, रूसी और स्पेनिश। अनुवाद का जो पाठ यहां दिया गया है, वह भारत सरकार द्वारा स्वीकृत है।

प्रस्तावना

चूंकि मानव परिवार के सभी सदस्यों की जन्मजात गौरव और समान तथा अविच्छिन्न अधिकार की स्वीकृति ही विश्वशान्ति, न्याय और स्वतंत्रता की बुनियाद है,

चूंकि मानव अधिकारों के प्रति उपेक्षा और घृणा के फलस्वरूप ही ऐसे बर्बर कार्य हुए जिनसे मनुष्य की आत्मा पर अत्याचार किया गया, चूंकि एक ऐसी विश्व–व्यवस्था की उस स्थापना को (जिसमें लोगों को भाषण और धर्म की आज़ादी तथा भय और अभाव से मुक्ति मिलेगी) सर्वसाधारण के लिए सर्वोच्च आकांक्षा घोषित किया गया है,

चूंकि अगर अन्याययुक्त शासन और जुल्म के विरुद्ध लोगों को विद्रोह करने के लिए– उसे ही अन्तिम उपाय समझ कर–मजबूर नहीं हो जाना है, तो कानून द्वारा नियम बनाकर मानवाधिकारों की रक्षा करना अनिवार्य है,

चूंकि राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ाना ज़रूरी है,

चूंकि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों की जनताओं ने बुनियादी मानवाधिकारों में, मानव व्यक्तित्व के गौरव और योग्यता में और नर–नारियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास को अधिकार–पत्र में दुहराया है और यह निश्चय किया है कि अधिक व्यापक स्वतंत्रता के अन्तर्गत सामाजिक प्रगति एवं जीवन के बेहतर स्तर को ऊँचा किया जाये,

चूंकि सदस्य देशों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानव अधिकारों और बुनियादी आज़ादियों के प्रति सार्वभौम सम्मान की वृद्धि करेंगे,

चूंकि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह से निभाने के लिए इन अधिकारों और आज़ादियों का स्वरूप ठीक–ठाक समझना सबसे अधिक ज़रूरी है इसलिए, अब,

सामान्य सभा घोषित करती है कि

मानव अधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा सभी देशों और सभी लोगों की समान सफलता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक भाग इस घोषणा को लगातार दृष्टि में रखते हुए अध्यापन और शिक्षा के द्वारा यह प्रत्यन करेगा कि इन अधिकारों और आज़ादियों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो, और उत्तरोत्तर ऐसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपाय किये जाएं जिनसे सदस्य देशों की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशों की जनता इन अधिकारों की सार्वभौम और प्रभावोत्पादक स्वीकृत दे और उनका पालन करावे।

अनुच्छेद–1 सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है। उन्हें बुद्धि और अन्तरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।

अनुच्छेद–2 सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों और आज़ादियों को प्राप्त करने का हक़ है और इस मामले में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार–प्रणाली, किसी देश या समाज विशेष में जन्म, सम्पत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जायेगा। इसके अतिरिक्त, चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतंत्र हो, संरक्षित हो, या स्वशासन रहित हो या परिमित प्रभुसत्ता वाला, उस देश या प्रदेश को राजनीतिक, क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहां के निवासियों के प्रति कोई फर्क न रखा जाएगा।

अनुच्छेद–3 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद–4 कोई भी गुलामी या दासता की हालत में न रखा जाएगा, गुलामी–प्रथा और गुलामों का व्यापार अपने सभी रूपों में निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद–5 किसी को भी शारीरिक यातना न दी जाएगी और न किसी के भी प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा।

अनुच्छेद–6 हर किसी को हर जगह क़ानून की निग़ाह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति–प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद–7 कानून की निगाह में सभी समान हैं और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी हैं। यदि इस घोषणा का अतिक्रमण करके कोई भी भेदभाव किया जाये या उस प्रकार के भेदभाव को किसी प्रकार के उकसाया जाय, तो उसके विरूद्ध समान संरक्षण का अधिकार सभी को प्राप्त है।

अनुच्छेद–8 सभी को संविधान या क़ानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के विरूद्ध समुचित राष्ट्रीय अदालतों की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद–9 किसी को भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नज़रबन्द या देश–निष्कासित न किया जाएगा।

अनुच्छेद–10 सभी को पूर्णतः समान रूप से हक है कि उनके अधिकारों और कर्तव्यों का निश्चय करने के मामले में और उन पर आरोपित फौज़दारी के किसी मामले में उनकी सुनवाई न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष एवं निष्पक्ष अदालत द्वारा हो।

अनुच्छेद–11 (1) प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तब तक निरपराध माना जाएगा, जब तक उसे ऐसी खुली अदालत में, जहां उसे अपनी सफ़ाई की सभी आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया जाये। (2) कोई भी व्यक्ति किसी भी कृत या अकृत (अपराध) के कारण उस दण्डनीय अपराध का अपराधी न माना जाएगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना जाए और न उससे अधिक भारी दण्ड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता जिस समय वह दण्डनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद–12 किसी व्यक्ति के एकान्त, परिवार, घर या पत्रव्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जायेगा, न किसी के सम्मान में हस्तक्षेप न किया जायेगा, न किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरूद्ध प्रत्येक को कानूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद–13 (1) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओं के अन्दर स्वतंत्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है। (2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने या पराये किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश को वापस आने का अधिकार है। (3) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैर–राजनीतिक अपराधों से सम्बन्धित हैं, या जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरूद्ध हैं।

अनुच्छेद–14 (1) प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार है। (2) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैर–राजनीतिक अपराधों से सम्बन्धित हैं, या जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरूद्ध हैं।